पातञ्जल योग दर्शन के विशेष परिप्रेक्ष्य में आधुनिक योगाचार्यों के मतों की समीक्षा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
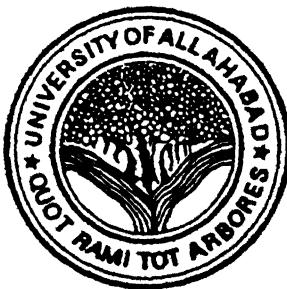
निर्देशिका

डॉ० (श्रीमती) ज्ञानदेवी श्रीवास्तव

एम०ए० (गोल्ड मेडलिस्ट) डी० फिल्०

प्रो० तथा भू० पू० अध्यक्ष संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्त्ता:

कौशल किशोर

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2003

प्रमाणपत्र

मै यह प्रमाणित करती हूँ कि श्री कौशल किशोर ने मेरे निर्देशन में 'पातञ्जल योग-दर्शन के विशेष परिप्रेक्ष्य में आधुनिक योगाचार्यों के मतों की समीक्षा' विषय पर यह शोध प्रबन्ध पूरा किया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है यह शोध प्रबन्ध उनके द्वारा किया गया सर्वथा स्वतन्त्र तथा मौलिक शोध-कार्य है। इस विषय पर कोई भी शोध इलाहाबाद विश्वविद्यालय या अन्य विश्वविद्यालय में नहीं हुआ है।

ज्ञान देवी श्रीवास्तव

डॉ० ज्ञान देवी श्रीवास्तव
(निर्देशिका)
प्रोफेसर तथा भूतपूर्व
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

स्वस्वीकारोक्ति

मै कौशल किशोर, शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रमाणित करता हूँ कि मैने "पातञ्जल योगदर्शन के विशेष परिप्रेक्ष्य में आधुनिक योगाचार्यों के मतों की समीक्षा" विषय पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी.फिल. उपाधि के लिए प्रो. ज्ञान देवी श्रीवास्तव, भूतपूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निर्देशन में यह शोध-प्रबन्ध पूरा किया है। मैने यह शोध-प्रबन्ध स्वतन्त्र रूप से पूरा किया है और जहॉ तक मुझे ज्ञात है इस विषय पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में शोध कार्य नहीं किया गया है।

कौशल किशोर 30.6.03

कौशल किशोर
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

'पुरोवाक'

आज के युग में समाजिक व्यवस्था में अराजकता, द्वेष घृणा, हिंसा आदि विश्वस्तर पर देखने को मिल रही है। चारो ओर अशान्ति का बोलबाला है। विश्व शान्ति बनाये रखने के लिए राष्ट्रो के स्तर पर प्रयत्न किये जा रहे हैं। मैने भी इस समस्या से आज के समाज को निवृत्त करने के लिए तप:पूत महर्षि पतञ्जलि को अपना आदर्श बनाया जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से आज के इस भौतिकवादी विलासिता पूर्ण समाज की विकृति को हजारो वर्ष पूर्व देखा था। व्यक्ति अनेक असाध्य रोगों का दिन प्रतिदिन शिकार होता जा रहा है। आज का चिकित्सा विज्ञान भी इतना उन्नत होने के बावजूद भी लाचार और विवश दिखाई पड़ रहा है। ऐसे समय में महर्षि पतञ्जलि ने जो साधन अपने योगसूत्र के साधनपाद के 29वें सूत्र में बतायें है वह आज के समाज को पूर्ण सात्विक शुद्ध एवं सुन्दर समाज का ढाचा देने मे समर्थ है तथा शरीर के समस्त विकारों को दूर करने के साधनों से मनुष्य अपने को पूर्ण स्वस्थ बनायें रख सकता है। मेरे शोध का विषय है पातञ्जल योगदर्शन के विशेष परिप्रेक्ष्य में आधुनिक योगाचार्यो के मतों की समीक्षा" जिस पर शोध प्रबन्ध लिखने का अवसर मिला और इस निष्कर्ष पर पहुचा कि महर्षि पतञ्जलि ने जो मार्ग दिखाया है। उसका अनुसरण करके हम अपने को समाजिक रूप से मानसिक रूप से आध्यात्मिक रूप से भावनात्मक रूप एवं शारीरिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ रख सकते है। महर्षि पतञ्जलि का सबसे बड़ा योगदान मेरी दृष्टि से स्वस्थ समाज का निर्माण करके स्वस्थ व्यक्तितत्व का विकास करना है।

शोध के समय विषय सामग्री के चयन एव सकलन की समस्यायें उठी, जिसके समाधान में विभिन्न पुस्तकालयों यथा- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आर्य समाज (कटरा), स्वामी विवेकानन्द पुस्तकालय मुठटीगंज इलाहाबाद, ए.एच.व्हीलर्स कम्पनी लि0 इलाहाबाद। महर्षि महेशयोगी सस्थान, अरैल, ओशो भावातीत ध्यान केन्द्र दरभंगा कालोनी इलाहाबाद, सरगंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ- इलाहाबाद विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी के साथ ही पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय, विश्वनाथ ललिताघाट, सम्पूर्णानन्द विश्व विद्यालय काशी विद्यापीठ आदि पुस्तकालयों तथा चोखम्भा प्रकाशन वाराणसी से अध्यात्मिक सहायता मिली। तमन्ना योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र टैगोर टाउन के पुस्तकालय ने भी सराहनीय योगदान किया। इसके लिए मै इन पुस्तकालयों एवं संचालकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

डा. ज्ञान देवी श्रीवास्तव ने जिस प्रकार से मेरे शोध प्रबन्ध को सुधारा एवं संवारा तथा जिस उत्साह से मेरा मार्गदर्शन किया. उसके लिए मै आजन्म ऋणी रहूंगा उनके सम्मान मे महात्मा तुलसीदास जी की यह चौपाई प्रस्तुत है -

वन्दहु गुरूपद पदुम परागा। सुरूचि सुवास सुभग अनुरागा।।

इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन में मुझे अनेक विद्वानो और मनीषियों के सामीप्य का सौभाग्य मिला। मै संस्कृत विभाग की अध्यक्षा डा0 मृदुला त्रिपाठी अर्थशास्त्र विभाग के प्रो0 एस.एन. लाल, सस्कृत विभाग के डा0 रामकिशोर शास्त्री दर्शन शास्त्र विभाग के डा0 जटाशंकरः बायोटेक्नालाजी के डा0 डी के गुप्ता, डा0 शान्ती सुन्दरम के प्रति आभार प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य में सहाय्य प्रदान किया।

इसी सन्दर्भ में इलाहाबाद आरोग्यमन्दिर योगकेन्द्र के डा. राजाराम आनन्द, देवअन्तर्राष्ट्रीय योग कानपुर के डा0 ओम प्रकाश आनन्द, डा0 वी0के0 तिवारी (निदेशक चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण इलाहाबाद मण्डल इलाहाबाद) डा0 एस.जी.राम मुख्य चिकित्साधिकारी इलाहाबाद, डा0 एच.रहमान (प्रो0 मोती लाल नेहरू मेडिकल कालेज इलाहाबाद, डा0 वन्दना बसल, डा0 नजमी रहमान (निदेशक तमन्ना योग एव प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र) डा0 कृष्णा मुखर्जी, डा0 गंगेश बहादुर श्रीवास्तव का मै हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य को पूर्णता प्रदान करने में सहायता प्रदान की।

तत्पश्चात मै अपने पूजनीय माता-पिता के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने वात्सल्य तथा संरक्षण से मुझे इस योग्य बनाया कि मै शिक्षा के इस उच्चतर शिखर पर स्वयं को आरूढ़ करने में समर्थ हो सका। इस कार्य में ज्येष्ठ भ्राताश्री अशोक कुमार एवं भाभी के कृतज्ञताभार से मेरा मस्तक सदैव उनके प्रति नत रहेगा और मै उनका सर्वदा ऋणी रहूंगा।

मेरे इस प्रयत्न को साकार रूप देने में मेरे मित्रगण डा0 उत्तम सिंह, एँडवोकेट रामकुमार सिंह, विन्ध्यवासिनी प्रसाद तिवारी, विनोद प्रकाश राकेश कुमार ने भरपुर सहयोग दिया और समय-समय पर मेरा उत्साह वर्धन कियां मेरी पत्नी श्रीमती सर्वेश कुमारी, अनुज सुरेश कुमार एवं ब्रजेश कुमार का योगदान सराहनीय रहा, जिनसे शोध कार्य करने की सतत प्रेरणा मिलती रही। अन्तत: अपने पुत्र दीपक उमराव और पुत्री दीपिका उमराव के सहयोग का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है क्योंकि उनके सहयोग के बिना इस कृति का पूरा होना कठिन अवश्य होता।

इसके साथ मै उन सभी विद्वानों एव ग्रन्थकारों का आभारी हूँ जिनके विचारों से मुझे प्रत्यक्ष एव परोक्ष किसी भी रूप में सहायता मिली अन्तत: मै राजीव मिश्रा एवं उनके सहयोगी शफीक अख्तर को धन्यवाद देना अपना पावन कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने बड़ी तत्परता से टंकण कार्य द्वारा शोध प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत किया।

मुझे आशा है कि विद्वज्जन एव मेधावीगण मेरे इस शोध विषय की सामम्य त्रुटियों पर ध्यान न देगे। विविध प्रयासों के बाद भी त्रूटिया स्वाभाविक है, अतएव विद्वज्जनों से निवेदन है कि परिहार्य एवं अपरिहार्य त्रुटियोंको क्षमा करते हुये शोध प्रबन्ध का मूल्याकन करेंगे।

इलाहाबाद **भवदीय**

कौशल किशोर

दिनांक : ३० ५ ०३ **कौशल किशोर**

विषय सूची

प्रथम अध्याय - प्रस्ताविक - पृष्ठ 1 से 22

1. भारतीय दर्शन तथा योग
2. महर्षि पतञ्जलि का परिचय
3. पतञ्जलि का समय
4. पतञ्जलि का स्थान
5. पातञ्जल योग दर्शन की परिवर्ती रचनाएं
6. योगदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त
7. योग का स्वरूप
8. सम्प्रज्ञात समाधि
9. असम्प्रज्ञात समाधि
10. योगसाधना के उपाय
11. योगदर्शन के तत्वमीमांसीय सिद्धान्त
12. परिणाम सिद्धान्त
13. कर्म सिद्धान्त
14. ईश्वर
15. कैवल्य

द्वितीय अध्याय - पृष्ठ 23 से 52

1. समाधिपाद

2. साधनपाद

3. विभूतिपाद

4. कैवल्यपाद

तृतीय अध्याय - आधुनिक योगाचार्य - पृष्ठ 53 से 76

1 स्वामी विवेकानन्द

2. महर्षि अरविन्द

3. महर्षि महेशयोगी

4. आचार्य रजनीश

चतुर्थ अध्याय

योगसाधना तथा उसका मानवीय कल्याण में प्रयोग - पृष्ठ 77-271

पंचम अध्याय -

निष्कर्ष पृष्ठ 272-275

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची - 276-279

प्रथम अध्याय

प्रास्ताविक

भारतीय दर्शन तथा योग

तप:पूत तथा प्रज्ञाचक्षु ऋपि महार्पियों न सस्कृत वाड्गमय की उस विद्या को दर्शन सज्ञा प्रदान की जिसका विपय था 'परम तत्व ' अथवा परमार्थ। दृश दर्शने धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगाने मे निष्पन्न ' दर्शन शब्द का अर्थ होता है ' देखने का माधन ' अत· दर्शन शब्द का अर्थ हुआ देखन का साधनभूत चक्षुरूप ज्ञानेन्द्रिय। लोक में चक्षु (दर्शन) नामक ज्ञानेन्द्रिय का विषय सम्पूर्ण दृश्यमान जगत है। दूसरे शब्दों मे सम्पूर्ण दृश्यमान जगत का प्रत्यक्ष ज्ञान जिसके द्वारा हो उसे 'दर्शन कहेंगे। इसी तरह जिस शास्त्र का विषय है।' परम तत्व ' या 'परमार्थ ' अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा परम तत्व का दर्शन अथवा ज्ञान कराया जाये उसे भी दर्शन कहेंगें। अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इन्द्रियार्थसन्निकर्यजन्य ज्ञान को भी प्रत्यक्ष ज्ञान ही कहते है या पाचों प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान में दर्शनेन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान सर्वाधिक प्रामाणिक और प्रभावोत्पादक जान पडता है। सम्भवत: इसलिए परमतत्व की प्रत्यक्ष अनुभूति कराने वाले शास्त्र का नाम दर्शन शास्त्र ही रखा गया है।

भारतीय दर्शन को दो भागो मे विभक्त किया गया 1 नास्तिक दर्शन 2. अस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शन उनको कहा गया है। जो वेद की प्रामाणिकता को नहीं मानते । इसके अन्तर्ग चार्वाक बौद्ध तथा जैन दर्शन आते है। इनके विपरीत आस्तिक दर्शन वे है जो वेदों की प्रामाणिकता पर विश्वास रखते है। इनके अन्तर्गत न्याय आदि छ: दर्शन आते है जो इस प्रकार है।

1. न्याय दर्शन
2. वैशेषिक दर्शन
3 पूर्व मीमासा दर्शन
4 साख्य दर्शन
5. योग दर्शन
6 वेदान्त दर्शन (उत्तर मीसासा)

महर्षि पतञ्जलि का परिचय

समस्त भारतीय दर्शनों का चरमलक्ष्य है प्राणियों को त्रिविध दु.खों से सदा के लिए छुटकारा दिलाना। दु:खों की यह इस शाश्वतिक निवृत्ति को अलग-अलग दर्शनों में मुक्ति मोक्ष, कैवल्प, अपवर्ग, नि: श्रेयस , निर्वाण और परमपद इत्यादि पदों से अभिहित किया गया है।

उपर्युक्त षड्दर्शनों की परम्परा में योग दर्शन अन्यतम हैं। भारतीय दर्शनों में योग दर्शन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महाभारत में श्री शुक्रदेव जी ने उचित ही कहा है कि " न तु योगमृते प्राप्तु शक्या सा परमा गति:।" तत्व

साक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार के लिए योग साधना की आवश्यकता प्रायः सभी दर्शनों तथा भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार की है। वैदिक एव अवैदिक (जैन तथा बौद्ध) दर्शनों में योग की उपादेयता निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। सहिता , आरण्यक और उपनिषद के योग की महनीयता का वर्णन उपलब्ध होता है।'

किन्तु योग दर्शन का व्यवस्थित रूप में विवेचन पजज्जलि विरचित योग सूत्र में ही उपलब्ध होता है। इसीलिए योगदर्शन का दूसरा नाम पातञ्जल योग दर्शन भी है जिसमें पातञ्जल शब्द का अर्थ है। महर्षि पंतज्जलि से सम्बद्ध । यहां यह उल्लेखनीय है कि महर्षि पजज्जलि ने योगदर्शन को सुव्यवस्थित दार्शनिक रूप अवश्य दिया है किन्तु ये योगदर्शन के आदि प्रवर्तक नहीं है। योगियाज्ञवल्क्य में हिरण्यगर्भ को योग दर्शन का प्रथम वक्ता या उपदेष्टा स्वीकार किया गया है। पंतज्जलि ने स्वय इस बात का सकेत प्रथम योग सूत्र ' अथयोगानुशासनम् ' में प्रयुक्त अनुशासन शब्द द्वारा किया है। ' अनुशासन ' और ' शास्त्रशब्द पर्यायवाची है। फिर भी बहुप्रचलित 'शास्त्र ' शब्द का प्रयोग न करके महर्षि पजज्जलि ने अनुशासन शब्द को जो प्रयोग किया है उसका प्रयोजन यह है कि वे अनुशासन शब्द की इस व्यजना से 'शिष्टस्य शासनम् इत्यनुशासनम् ' अर्थात पहले से सिखाये गये विषय को सिखाने वाला शास्त्र अनुशासन है। यह प्रकट करना चाहते है कि वे योग शास्त्र के आदिवक्ता नही है। तो प्रश्न उठता है कि योगशास्त्र का आदि वक्ता कौन है ?

योगियाज्ञावल्क्य स्मृति से ज्ञात होता है कि योगशास्त्र के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ है। योगसूत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय तक योग के

---

1 क '' यस्माद‍ृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।

स धीना योगमिन्वति ।। '' ऋक्सहिता प्रथम मण्डल सूक्त 18 मन्त्र 7

ख '' योग योग तवस्तर वाजे वाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूर्तये ।। '' ऋक्सहिता 1,30,7 शुक्ल यजु0 1,14

साममेव सहिता उत्तरार्चिक 1,2,।1,1 पूर्वाचिक 1,2,7,9

अर्थवेदसहिता 20,26,1

ग '' युक्तेन मनसा वय देवस्य सवितु सवे ।'' यजुर्वेदसहिता 11,2

घ '' अध्यात्मयोगेधिगमेन देव मत्वा धीरो हर्षशोकौजहाति'' काठकोपनिषद् 1,2,21

ड '' योगप्रवृत्ति प्रथमा वदन्ति ।'' श्वेता उप 2,13

च ' न तस्य रोगो न जरा न मृत्यू प्राप्तस्य योगग्निमय शरीरम् । '' श्वेता. उप 2,12

अनेक सिद्धान्त विद्वतजनों के बीच प्रचलित थे। योग सबधी पूर्ववर्ती ग्रन्थो का यद्यपि पजज्जलि ने न तो कही उल्लेख किया है और न ही किसी प्राचीन योगाचार्य का कहीं पर नाम लिया है। फिर भी अधिकाश प्रतिपाद्य विषयों को तर्को और प्रमाणों से सिद्ध करने का उनका प्रयास इस बात का प्रमाण है कि उन विषयों और सज्ञाओं का सामान्य बोध विद्वानों को पहले से रहा होगा । इन बातों से योगशास्त्र के आदि उपदेष्टा हिरण्यगर्भ नामक कोई ऋषि ठहरते है।

उपनिषद और महाभारत में स्पष्ट शब्दों में यह प्रतिपादित किया गया है कि यह हिरण्यगर्भ आदि विद्वान परमर्षि कपिल से अभिन्न थे

1. कपिलोऽग्रज इतिपुराणवचनात कपिलोहिरण्यगर्मो वा व्यपदिश्यते-श्वे0 उप0 शाकरभाष्य

2 '' कपिलोनाम विष्णोरवतार विशेष: प्रसिद्ध:
स्वयम्भूर्हिरण्यगर्भस्तरयापि शांख्ययोगप्राप्तिवेर्द श्रूयते सएवेश्वर आदि
विद्वान कपिलो : विष्णु: स्वयम्भूरिति भाव: ।'' त0 वै0 1,25

3. विद्यासहायवन्तभादित्यस्थ समाहितम्।
कपिल प्राहुरार्चो सांख्यनिश्चितनिश्चिता:।।
हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि सुस्तुत:।
सोउहं योगरिर्तिब्रहान्[1] योगशास्त्रेषु शब्दित:।। महा0 11/339/68-69

उल्लेखनीय है कि इन्ही महर्षि कपिल ने सर्वप्रथम सांख्ययोग का उपदेश किया था। साख्य तथा योग एक ही दर्शन के सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक पहलू थे। दोनों पृथक दर्शन नहीं थे। गीता में साख्या और योग की एकता सुस्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित की गयी है -

'' सांख्य योगौ पृथग्बाला: प्रवदन्ति न पण्डिता:।

एकमप्यास्थित: सम्युगुभयोर्विन्देते फलम् ।। श्रीमद्भगवद्गीता ।5।4।
यत्सांख्यै· प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च य: पश्यपि स पश्यति। । श्रीमद्भगवद्गीता ।5।5।

---

1 ''ननुहिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य पुरातन '' इति योगियाज्ञवल्क्यस्मृते कथ पतज्जलेयोगशास्त्र वक्तृत्वमित्याशाडक्य सूत्रकोरेणीक्तम् अनुशासनमिति शिष्टस्य शासनमनुशासनमित्यर्थ।'' तत्व वैशारदी पृष्ठ 6

2 क महाभारत 11,349,65

ख मनुस्मृति 1,88-89 ग भामती 2,1,3

श्रीमद्भागवतपुराण में महर्षि कपिल को साख्योपदेष्टा तथा सिद्धेश कहा गया है।
'' पंचमों कपिलो नाम सिद्धेश: कालविप्लुतम्।
प्रोवाचारसुरये साख्य तत्वग्रमविनिश्चयम्। '' श्रीमद्भागवतपुराण 1,3,11

सिद्धेश का अर्थ है योगिश्रेष्ठ अत: स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार भी महर्षि कपिल सांख्य और योग दोनो के प्रवर्तक थे। महाभारत में तो स्पष्ट कहा गया है-

'' कपिल परमर्षि च य प्राहुर्यतय: सदा।
अग्नि: स कपिलो नाम साख्ययोग प्रवर्तक .। '' 11/3/65

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कपिल अथवा हिरण्यगर्भ वैदिक काल के ऋषि थे क्योंकि संहिताओं तक में जिस योग की प्रशंसा की गयी है उसके आदि उपदेष्टा कपिल है। '' हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य: पुरातन: '' पक्ति भी इनसे पर्ववर्ती किसी अन्य योगशास्त्र व्याख्याता का स्पष्ट निषेध कहती है। कपिल तथा पजञ्जलि के बीच कतिपय योगाचार्यो के केवल नाममात्र मिलते है, उनकी कोई कृति उपलब्ध नहीं होती।

पंतञ्जलि का समय :

पाश्चात्य विद्वान जे. एच. वुडस महर्षि पजञ्जलि का जीवनकाल 300 ई-400 ई0 के मध्य मानते है?, प्रो0 जैकोबी तथा प्रो0 कीथ भी योगसूत्रकार पजञ्जलि को महाभाष्यकार पजञ्जलि से भिन्न मानते हुए योगसूत्रकार पंतञ्जलि की स्थिति तीसरी और चौथी शताब्दी में[2]

मानते है। अपने मत की पुष्टि मे उन्होनें कुछ तक्र दिये जिनको प्रो0 श्रीवास्तव ने अपने योगसूत्रभाष्य सिद्धि: में उल्लिखित किया है। अत: वे वहीं दृष्टव्य है।

1. The conclusion would be then that the Patanjali's were written at some time in the fourth or fifth century of ourera" Introduction of Yoga system of Patanjali P XIV
2 योगसूत्र भाष्य सिद्धि. पृष्ठ 12/13 लेखक प्रो0 सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव

दूसरी ओर डा0 एस0 एन दास गुप्त श्री ज्वाला प्रसाद, रिचर्ड गार्वे महोदय आदि विद्वान उपर्युक्त मतों का खण्डन करते हुये एक प्राचीन भारतीय परम्परा के आधार पर योगसूत्रकार और महाभाष्यकार पजज्जलि को एक ही व्यक्ति मानते है। ऐसा मान लेने पर योग सूत्रकार का काल निश्चित करना सुकर हो जाता है क्योंकि महाभाष्यकार पतञ्जलि शुड्ग वशीय राजा पुष्यमित्र के समसामयिक थे। दोनों पतञ्जलियों की एकता प्रतिपादित करने वाली जिस प्राचीन परम्परा का सहारा डॉ0 दास गुप्त इत्यादि ने लिया है। वह परम्परा यह है -छठी शताब्दी ई0 के वैयाकरण भर्तृहरि के वाक्यपदीय नामक ग्रन्थ के ब्रहाकाण्ड में अधोलिखित श्लोक आया हुआ है।

कायावाग्बुद्धि विषया येमला: समुस्थित:।
चिकित्सा लक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेपा विशुद्धय: ।। 1।146।

जिसका अर्थ है कि शरीर, वाणी और बुद्धि विषयक जो मत है उनकी विशुद्धि चिकित्सा शास्त्र, व्याकरण शास्त्र और अध्यात्मक शास्त्र के द्वारा होती है। वाक्यपदीय के टीकाकर पुष्पराज की ऐसी धारणा है कि उक्त श्लोक में पतञ्जलि की प्रशसा की गयी है। जिन्होंनें इस त्रिविध मलों के शोधन के लिए 'चरक सहिता ' ' महाभाष्य ' और योग सूत्र' की रचना की है। पुष्यराज की इस धारणा का आधार उक्त श्लोक पर स्वयं भर्तृहरि की ही अधोलिखित व्याख्या है।

'' यथैव हि शरीरे दोषशक्ति रत्रोपधादिपु च दोषप्रतीकारसामथर्य
दृष्ट्वा चिकित्साशास्त्रमारब्धं, रागदीश्च बुद्धेरूपप्लवानवगम्य
तदुपघातहेतु ज्ञानोपायभूतान्यध्यात्मशास्त्राणि उपनिबद्धानि,
तथेदमपि साधूनां वच: संस्काराणा ज्ञापनार्थमपभ्रशाना चोपधाताना
त्यागर्थ लक्षणमारब्धम्। ''

इस व्याख्या में प्रत्येक शास्त्र के कर्ता के अलग-अलग उल्लेख न होने से यही धारणा बनती है कि भर्तृहरि एक ही व्यक्ति को इन तीनों शास्त्रों का कर्ता मानते थे।

योगसूत्रों पर ' राजमार्तण्डवृत्ति' की रचना करने वाले भोजराज (11बो शताब्दी ई0) ने इस वृत्ति के मगलाचरण में स्पष्ट शब्दों में यह प्रतिपादित किया है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि ही बैद्यक शास्त्र(चरक सहिता) और योगसूत्रों के भी रचयिता थे।

शब्दानामनुशासन विद्धता पातञ्जले कुर्वत
वृत्तिंराजमृगाड्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्येतोवपुषा मल: फणभृता भर्त्रेव येनोद्धतस्।
तस्य श्री रणारड्गमल्लनृपयेतर्वाचो नयन्त्युज्ज्वला:।।

उक्त श्लोकों का अर्थ है कि जिस प्रकार से सर्पो के राजा (शेषनाग के अवतार पजञ्जलि) ने शब्दानुशासन (महाभाष्य), योगसूत्र तथा वैद्याकशास्त्र की रचना करते हुए वाणी, चित्त तथा शरीर के मलों के शोधन किया था उसी प्रकार जिस रणरङ्गमल्ल राजा (भोज) ने व्याकरणशास्त्र, पातञ्ज्ल-योगशास्त्र तथा वैद्यकशास्त्र राजमृगाङ्क नाम वृत्ति की रचना करते हुए उक्त तीनों प्रकार के मलों (दोषो) को दूर कर दिया है उनके उज्जवल वचन सर्वातिशायी है।

स्पष्ट है कि राजा भोज को महाभाष्यकार पतञ्जलि तथा योगसूत्रकार पतञ्जलि की अभिन्नता में कोई सन्देह नहीं है।

चरक सहिता के टीकाकार चक्रपाणिदत्त (11 वी शताब्दी ई0) पतञ्जलि को इन तीनों ग्रन्थों के रचयिता रूप में प्रमाण करते है -

पाजञ्जलमहाभाष्यचरक प्रतिसस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणा हन्त्रेऽहिपतये नमः।।

वैयाकरणनागेश (16 वी शताब्दी ई0) अपने ग्रन्थ ' वैयाकरण सिद्धान्त-मञ्जूषा ' में पंतञ्जलि को उक्त तीनों ग्रन्थों का रचयिता मानते है।

क. '' तदुवक्त चरके पतञ्जलिना । सेन्द्रिय चेतन द्रव्य निरिन्द्रियमचेतनम्।''

ख. '' आप्तो नाम अनुभवेन वस्तुत्वस्य कात्स्न्र्यन निश्चयवान्

' रागदिवशादपि नान्यथावादी यः स इति चरके पतञ्जलिः ''।
(वैययाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा पृ0 12)

ग. योगसूत्रे पतञ्जल्युक्तेः' महाभाष्य पस्पशा उद्योत पृ0 58

रामभद्र दीक्षित (18 वी शताब्दी ई0) स्वरचित 'पतञ्जलिचरित ' में पजञ्जलि की वन्दना इस रूप में करते है -

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मल शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्त प्रवरं मुनीना पतञ्जलि प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।

प्राचीन शैली से पठन पाठन की परम्परा का अनुसरण करने वाली सस्थाओं में आज भी महाभाष्य का पाठ आरम्भ करने से पूर्व अधोलिखित मंगलपाठ किया जाता है -

वाक्यकारं वररूचि भाष्यकारं पतञ्अलिम्।
पाणिनीं सूत्रकार च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम्।।
योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मल शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत प्रवर मुनीनां पतंञ्जलि प्राञ्जलिरानतोअस्मि।।

कहावत है कि जनश्रुति निराधार नहीं हुआ करती " न ह्यमूला जनश्रुति :" इसलिए ठोस बाधक प्रमाणों के अभाव में उक्त परम्परा की प्रमाणिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

आधुनिक विद्वान डॉ0 एस0 एन दासगुप्ता तो जोरदार शब्दों में यह कहते हैं कि महाभाष्य के पर्यवेक्षण के पश्चात् उन्हें कोई भी ऐसा तथ्य या सकेंत नहीं मिला जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि दोनों पतञ्जलि अभिन्न नही थे।

दोनों ग्रन्थों के अन्तः साक्ष्य से भी डॉ0 दासगुप्ता के उपर्युक्त निष्कर्ष की ही पुष्टि होती है। महाभाष्य 4।1।3 में , गुणसिद्धान्त, 1।2।64 में सत्कार्यवाद 2।2।5 में कालविषयक सिद्धान्त तथा 3।10-11 में बुद्धिपरिणाम के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले अंश दर्शनीय है।

दोनो ग्रन्थों के आरम्भ करने की शैली में भी अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है। महाभाष्य का आरम्भ ' अथ शब्दानुशासनम्' वाक्य 1।1।1 से होता है तो योगसूत्र का आरम्भ अथ शब्दानुशासनम् 1/1 सूत्र से किया जाता है। चॅकि ग्रन्थों का आरम्भ अथ शब्द से किया ही जाता है। इसलिए उक्त स्थलों में अथ शब्द का साम्य उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि अनुशासनम् शब्द का साम्य । ऐसा लगता है कि योगसूत्रों के व्याख्याता भाष्यकार व्यास भी दोनों की अभिन्नता के समर्थक है क्योंकि अथ योगानुशासनम् में अथ शब्द की व्यासकृत व्याख्या महाभाष्यकारकृत ' अथ' शब्द की व्याख्या क वजन पर ही की गयी प्रतीत होती है। महाभाष्यकार कहते हैं- " अथेत्ययं शब्दोऽधिकारर्थः प्रयुज्यते। शब्दानुशासन शास्त्रमीधकृत वेदितव्यम्।" महाभाष्कार कहते है - " अथेत्ययमधिकारार्थ· योगानुशासनं शास्त्रमधिकृत वेदितव्यम्।" योगभाष्य पृ0 6

महाभाष्यकार पतज्जलि को शेषनाग का अवतार माना जाता है। इस संबध में किवदन्ती प्रसिद्ध है कि एक बार वे अपने शिष्यों के बीच पाणिनीय सूत्रों पर प्रवचन कर रहे थे। स्वयं पर्दे के पीछे बैठकर प्रवचन कर रहे थे और शिष्यों को आदेश दे रखा था कि वे पर्दे के पीछे नहीं देखेगें। उत्सुकता और चपलता के वशीभूत एक छात्र ने पर्दा उठा दिया। आचार्य एक हज़ार मुखों से प्रवचन कर रहे थे। पर्दा उठने से सारे शिष्य भस्म हो गये । एक शिष्य जो लघुशंका हेतु बिना आज्ञा चला गया था वही बचा रहा गया। आज्ञा के बिना ही जाने के कारण उसे दैत्य होने का शाप मिला। अन्त में उसके ऊपर दयालु होकर आचार्य ने उससे कहा कि तुम अमुक बरगद के पेड़ पर रहोगें। उधर से गुजरने वालों से तुम प्रश्न करोगे - ' पचेः निष्ठााया कि रूपम्।" जो भी सही उत्तर देगा उसे पाणिनीय सूत्रो का ज्ञान करा कर तुम शाप मुक्त हो जाओगें।" वह शिष्य वैसा ही करता रहा किन्तु हर व्यक्ति का उत्तर होता था- 'पक्तम्' ।

अन्त में किसी व्यक्ति ने उसके प्रश्न का उत्तर 'पक्वम्' दिया । तब आचार्य के आदेशानुसार उसे बटपत्र पर लिख लिख कर पाणिनीय सूत्रों का ज्ञान कराकर वह शिष्य शाप-मुक्त हुआ।

योगसूत्रकार पतज्जलि को भी प्राय: सभी आचार्यो ने स्थल स्थल पर शेषावतार, फणिपति, अनन्त आदि कहा है। मल्लिनाथ (13वीं शताब्दी ई0) ने भी अपने प्रसिद्ध श्लोक वाणी काणभुजी मजीगणदवाशासीच्च वैयासिकीम्। अन्तस्तन्त्रमरंम्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत्।'' में योगशास्त्र को पन्नगवीगुम्फ कहा है। पजज्जलि नाम के व्यक्ति तो अनेक हो सकते है किन्तु शेषवतार रूप में प्रसिद्ध पतञ्जलि के अनेक होने की सम्भावना कम ही बनती है। इस प्रकार दोनों पतञ्जलियों के सबध में शेषावतार से संबंधित उक्त धारणा भी दोनों की अभिन्नता की ही परिचायक है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कहने की स्थिति में आ जाते है कि दोनों ही पंतञ्जलि -महाभाष्यकार पतञ्जलि तथा योगसूत्रकार पतञ्जलि एक तथा अभिन्न थे । महाभाष्य के पुष्ट अन्त: साक्ष्यों के आधार पर इतिहासकार इस सबध में एकमत है। कि महाभाष्यकार का समय द्वितीय शताब्दी ई0 पूर्व था। महाभाष्य में पतञ्जलि लिखते है।

' इह पुष्यमित्र याजयाम: ', 'पुष्यमित्र यजामहे, इन उल्लेखों से इतिहासकार इस मत के है कि पतञ्जलि पुष्यमित्र शुग के पुरोहित थे। पुष्यमित्र शुग ने अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की उसके द्वारा सैन्य निरीक्षण के समय सेना के समक्ष हत्या कर के मौर्य साम्राज्य पर अधिकार किया था। पुष्यमित्र शुंग का राज्यकाम द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 स्वीकार किया जाता है। इसलिए उनके पुरोहित पंतञ्जलि का स्थितिकाल भी द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 होना चाहिए। अपने इस मत की पुष्टि में महाभाष्यकार के अधोलिखित प्रयोगों का भी सहारा इतिहासकार लेते है। महाभाष्य में पतज्जलि कहते है -

अरूणद्यवन: साकेतम्। अरूणद्यवन: माध्यमिकाम्।'

इतिहासकारों का कहना है कि यवनों का यह साकेत तथा मध्यदेश पर आक्रमण भी पुष्यमित्र शुग के ही जीवन काल में हुआ था।

इस प्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि महाभाष्यकार द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 में हुए थे और उनके साथ अभिन्नता के आधार पर योगसूत्रकार पंतञ्जलि का भी सिद्ध होता है।

पतञ्जलि का स्थान :

महाभाष्य ;में कश्मीर के प्रति पंतज्जलि का विशेष झुकाव परिलक्षित होता है।

1. " काश्मीरान् गमिष्यामो देवदत्त। तत्र सक्तून पास्यामः। "
2. " अभिजानासि देवदत्त। यत् काश्मीरेषु वत्स्यामः।"
3. " समेताः पुष्यकर्माणि पार्श्वे हिमवतः शुभे ।"

इस झुकाव को देखते हुए प्रो0 सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव इन्हें न केवल काश्मीर निवासी मानते है अपितु कुछ विद्वानों द्वारा प्रतिपादित इनके गोर्नदीय (गोण्डावासी) होने का खण्डन भी करते है। अपने मत के समर्थन में उनका कहना है कि – " पतञ्जलि ने कई स्थानों पर गोनर्दीय आचार्य का खण्डन भी किया है। ये मत कात्यायन के ही प्रतीत होते है। पाणिनीयसूत्र 1।1।5 पर वर्तिक है – सति त्वन्यस्मिन्।' इसका खण्डन करते हुए पतञ्जलि कहते है- " गोनर्दीयस्त्वाह सत्यमेतत् सति तु अन्यस्मिन् इति। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कात्यायन ही गोनदीय थे न कि पतञ्जलि । इस मत को मानने वाले अन्य विद्वान हरिदीक्षित अर्वाचीन विद्वान सुब्रहाण्य शास्त्री और पण्डित दामोदर प्रसाद शर्मा शास्त्री वैद्य है।

योगसूत्रभाष्यकार व्यासः व्यास ने पातञ्जल योगसूत्रों पर जिस भाष्य की रचना की वह योगसूत्रों से सम्बद्ध होने के कारण योगभाष्य, व्यासकृत होने के कारण व्यासभाष्य, पतञ्जलि के योगसूत्रों से सम्बद्ध होने के कारण पातञ्जल भाष्य तथा (योगदर्शन में) तत्वविचार की दृष्टि से साख्यशास्त्र का प्रकृष्ट रूप से निर्वचन करने के कारण साख्य प्रवचनभाष्य नामों से प्रसिद्धि है। पातञ्जलयोगदर्शन के सम्यक् ज्ञान के लिए व्यासभाष्य अपरिहार्य है इसलिए इस महत्वपूर्ण गन्थ का परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य जान पडता है।

पातञ्जल योगदर्शन के मूर्धन्य विद्वान तथा योगसूत्रभाष्य के वरिप्ठ व्याख्याता इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव का मन्तव्य है कि –

" योगशास्त्र के इतिहास में पंतञ्जलि के पश्चात जिस कृति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है, वे हैं व्यास । अध्येताओं की दृष्टि में योगसूत्रों की ही भांति योगभाष्य भी अतीव महत्वपूर्ण एवं प्रमाणिक कृति है। योगदर्शन का शास्त्रीय तथा व्यावहारिक –उभयविध स्वरूपनिरूपण योगभाष्य के आधार पर ही किया जाता है।"[25]

---

1. योगसूत्रभाष्यसिद्धिः पृ0 22

1.योगसूत्रभाष्यसिद्धि : पृ0 22

वाचस्पति मिश्र तथा विज्ञान भिक्षु आदि योग परम्परा के सभी आचार्य इस भाष्य के रचयिता के परम प्रशसक है विज्ञान भिक्षु कहते है

सर्ववेदार्थसारोऽत्र वेदव्यासेन भाषित:।
योगभाष्यमिषेणातो मुमुक्षुरामिद गति·।
गंगाद्याः सरितो यद्वदब्धेरं शेषु संस्थिताः।
साख्याद्यदर्शनान्येवमस्यैवाशेपु सस्थिता ·।।

भाष्य की पुस्तिकाओं में कही भी व्यास का नाम नहीं मिलता है तथापि वाचस्पति मिश्र अपनी टीका तत्व वैशारदी के आरम्भ में इस भाष्य को वेदव्यास भाषित कहते है। योग वार्तिक के उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि विज्ञान भिक्षु भी इस भाष्य को ' सर्ववेदार्थसार: तथा 'वेदव्यासनेभाषित: ' और 'रत्नाकर: प्रवादाना भाष्यं व्यासभिनिर्मितम् कहते है । इन सब उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन या अर्वाचीन सभी आचार्य व्यास मुनि नामक व्यक्ति को इस भाष्य का रचयिता मानते है। किन्तु यह व्यास कौन है- महाभारतकार परासर पुत्र कृष्णद्वैपायन वेदव्यास? अथवा वेदान्तसूत्रों के रचयिता वादरायण व्यास या इन दोनों से भिन्न कोई अन्य व्याय ? इस प्रश्न को उठाकर साधक प्रमाणों के उपस्थापनापूर्वक प्रो0 श्रीवास्व इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि - '' बहुत सम्भावना यही है कि कृष्ण द्वैपायन तथा वादरायण दोनों से ही भिन्न किसी अन्य व्यास ने ही योगभाष्य की रचना की है। उनको वेदव्यास कहना ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना है।' योगभाष्य का रचनाकाल भी पर्याप्त विवादग्रस्त है किन्तु प्रो0 श्रीवास्तव इसका रचना काल दूसरी शताब्दी ईस्वी निर्धारित करते है।

व्यास कृत यह योग भाष्य पातञ्जल महाभाष्य, साबरभाष्य अथवा शांकरभाष्य के समान प्रौड तथा उच्चस्तरीय तो नहीं है किन्तु इतना निकृष्ट भी नही है कि इसे तृतीय श्रेणी का माना जाय । यह भाष्य विषय का सागोपाग निरूपण तो कर्ता ही है, सूत्रों का अर्थ स्पष्ट करता है और प्रसिद्ध प्रमाणों द्वारा सूत्र के अर्थ की पुष्टि करता है। भाष्य की शैली सुदृढ सक्षम तथा सारग्राहिणी है। विषयों का विवेचन सोपपत्ति प्रस्तुत किया गया है।

पातञ्जल योग दर्शन की परिवर्ती रचनायें।

1. **तत्व वैशारदी टीका** :- इसके रचयिता वाचस्पति मिश्र है। इसे व्यास भाष्य पर प्रथम विश्वसनीय टीका होने का गौरव प्राप्त है। वाचस्पति मिश्र मिथिला के निवासी थे जैसा कि वे स्वयं लिखते है - ' तस्मिन् महीये कीर्तव श्रीमगृगेऽकारि मयानिबन्ध:।' उनकी इस उक्ति से यह भी स्पष्ट है कि वे मृग नामक किसी यशस्वी राजा के आश्रित विद्वान थे। सभी दर्शनों पर प्रौड़ टीकाए लिखने के कारण इन्हें 'द्वादशदर्शनकानानपचानन' तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र की उपाधि

मिली हुई थी। उनकी तत्व वैशारदी टीका व्यास भाष्य के रहस्यों का उद्घाटन करने वाला अद्वितीय व्याख्या है। इनका समय नवीं शताब्दी ईस्वी माना जाता है।

2. **राजमार्तण्डवृत्ति** :- योगसूत्रों पर राजमार्तण्ड नामक वृत्ति के लेखक भोजराज (11बी शताब्दी ई0) का नाम योगशास्त्र के इतिहास में बडा महत्वपूर्ण है। विद्वानों के बीच उनकी इस कृति का बडा सम्मान है। स्पष्टता के साथ इसमें न तो अनावश्यक विस्तार है और न ही दुरूह विषयों को छोड देने की दुष्प्रवृत्ति।
3. **योगवार्तिक** : इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य विज्ञानभिक्षु (16वी शताब्दी ई0) का पूर्वार्ध है। यह वार्तिक योगभाष्य के ऊपर लिखी गयी एक विशाल व्याख्या है। योगसूत्र भाष्य के रहस्यों को पूरी तरह से समझने तथा योग के महात्म्य के सही आकलन के लिए इस वार्तिक का अध्ययन अपरिहार्य है।

अन्य कृतियाँ : योगसूत्रों पर भावागणेश (17 वी शताब्दी ई0) की वृत्ति, प्रसिद्ध वैयाकरण नागोजीभट्ट (17 वीं शताब्दी ई0) की ' छाया ' नामक व्याख्या , रामानन्द यति (18 वी शताब्दी ई0) क ' मणिप्रभा ' और नारायण तीर्थ की (18 वीं शताब्दी ई0) की 'सूत्रार्थबोधिनी ' तथा 'यागदर्शन ' नामक व्याख्यायें भी प्रसिद्ध तथा उपयोगी है। अर्वाचीन सस्कृत टीकाओं में हरिहहरानन्द आरण्य की'भास्वती' टीका भी विश्वसनीय तथा उपादेय है। आचार्य शंकर द्वारा लिखी गयी 'विवरण ' नामक व्याख्या भी योगसूत्रों तथा व्यासभाष्य का अच्छा विवेचन प्रस्तुत करती है। महामहोपाध्याय डॉ0 गगानाथ झा द्वारा लिखित अंग्रेजी भी उपयोगी है।

योगदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त

पातञ्जल योगदर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों के उपस्थापन के पूर्व 'योग' शब्द का योगसूत्रकार सम्मत अर्थ निर्धारित करना आवश्यक जान पडता है। वस्तुत: यह योग शब्द युज धातु से घञ प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है और पाणिनीय व्याकरण में युज् धातुयें तीन हैं-

1 दिवादिगणीय आत्मनेपदी युज् समाधौ धातु।

2 रूधादिगणीय उभयपदी युजिर् योगे धातु।

3. चुरादिगणीय परस्मैपदी युज् संयमने धातु।

उपर्युक्त तीनों धातुओं से निष्पन्न 'योग' शब्दों का अर्थ क्रमश: 1. समाधि 2. जोड़ तथा 3. संयमन होता है।

अथ योगानुशासनम्। यो.सू. 1/1 पर भाष्य करते हुए भाष्यकार 'योग' शब्द का अर्थ करते हैं -

' योग: समाधि: '

तथा स्वयं योगसूत्रकार कहते हैं -

'योगश्चित्तवृत्ति निरोध:। यो सू 1/2 तदा.

'तदा द्रष्टु: स्वरूपे अवस्थानम्। यो.सू. 1/3

अत: स्पष्ट है कि योग का अर्थ सूत्रकार तथा भाष्यकार दोनो ही समाधि कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में 'युज समाधौ' धातु करणो घञ् लगाकर ही 'योग' शब्द की निष्पत्ति मानना उचित होगा। पातञ्जल 'योग' सयोगरूप न होकर वियोगफलक है अर्थात् कैवल्य दिलाने वाला है। सम्भवत: 'योग' के इसी स्वरूप को लक्ष्य करके भोजराज ने कहा है -

पतञ्जलिमुनेरूक्ति: काप्यपूर्वा जयत्यसौ।

पुप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया।। राजमार्तण्ड वृत्ति

योगियोज्ञवल्क्य में 'योग' को जो सयोगरूप कहा है[1] वह इसलिए कि वेदान्तदर्शन के अनुयायी जीवात्मा तथा परमात्मा को भिन्न मानते हैं और उनके यहॉ मोक्ष का फल है जीवात्मा तथा परमात्मा का सयोग अत: उनके 'योग' की निष्पत्ति तो युजित योगे धातु से ही माननी होगी।

योग का स्वरूप

---

1 सयोगो योग इत्युक्त· जीवात्मपरमात्मना·

1 योगश्चित्तवृत्ति निरोध:। तदा द्रष्टु. स्वरूपेऽवस्थानम्। यो.सू 1/2,3

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पप्ट है कि महर्षि पतञ्जलि की दृष्टि में योग का अर्थ है चित्त वृत्ति निरोध अथवा समाधि। प्रश्न उठता है कि समाधि अथवा चित्त वृत्ति का निरोध तो कुछ न कुछ मात्रा में सभी को और सदैव होता रहता है तो क्या उन सभी समाधियों को योग कहेंगे या किसी विशेष प्रकार की समाधि का योग कहेंगे। आचार्य के अनुसार केवल उस ममाधि को योग कहेंगे जिसमें द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाय।[1] अर्थात मोक्षप्रद चित्तवृत्ति निरोध (समाधि) को ही योग कहेंगे। जिस समाधि से जीवात्मा की अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा न हो पाये वह चित्तवृत्ति निरोध अथवा समाधि योग नहीं है। इसीलिए भाष्यकार समाधि को चित्त का सार्वभौम (सभी भूमियों में रहने वाला) धर्म बताते हुये केवल एकाग्र तथा निरूद्ध भूमि वाले समाधि को ही योग कहते हैं। उनके अनुसार क्षिप्त मूढ तथा विक्षिप्त भूमियों में होने वाली समाधि योग नहीं है। क्योंकि इन भूमियों में हुआ वृत्ति निरोध स्वल्पकालि होता है और स्वत: उपस्थित तथा खण्डित होता रहता है। उससे मोक्ष प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं होती है। इसलिए इन भूमियों की समाधि साधना की दृष्टि से एकदम अनुपयोगी होती है।

योग कहलाने वाली यह समाधि दो प्रकार की होती है - 1. सम्प्रज्ञात समाधि
2. असम्प्रज्ञात समाधि

सम्प्रज्ञात समाधि - योग की साधना का वास्तविक उपादान चित्त है जिसमें प्रकृति के तीन तत्व मन, बुद्धि और अहंकार समन्वित है। प्रकृति का विकार होने के कारण यह चित्त त्रिगुणात्मक है। चित्त की एकाग्र भूमि में राजस और तामस वृत्तियों का पूर्णतया निरोध हो जाता है। इसमें केवल सात्विक वृत्ति पूर्ण रूप से उदित रहती है। फलस्वरूप साधक को समस्त वस्तुओं का वास्तविक और निर्भ्रान्ति ज्ञान होता है। भाष्यकार के शब्दों में ''जो समाधि एकाग्र भूमि वाले चित्त मे होती है बुद्धि में स्थित पदार्थ को पूर्णतया प्रकाशित करती है. अविद्या आदिक क्लेशों को नष्ट करती है, कर्म के बन्धनों (कर्म सस्कारों) को शिथिल करती है और निरोध (असम्प्रज्ञात समाधि) को सामने लाती है वह समाधि सम्प्रज्ञात योग कहलाती हैं इसमें ध्येय का पूर्ण रूप से ज्ञान बना रहता है। इसलिए इसे सम्प्रज्ञात योग कहते है।[1] यह समाधि भी मोक्षप्रद होती है। अन्तर बस इतना है कि एकाग्र भूमि वाले योग में चित्त की केवल दो वृत्तियों - राजस और तामस- का निरोध होता है जबकि निरूद्ध भूमि वाले योग में चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इस समाधि में राजस तथा तामस वृत्तियों का निरोध हो जाने के कारण केवल सात्विक प्रकाश होता रहता है फलस्वरूप उस सात्विक वृत्ति के ध्येय विषय का पूर्ण साक्षात्कार उदित होता है। इस साक्षात्कार के कारण ही इस समाधि को सम्प्रज्ञात समाधि (सम्यक प्रकर्षेण ज्ञात: साक्षात्कृत: सम्प्रज्ञात:) कहते हैं इस समाधि के सिद्ध होने पर प्रकृति और पुरूष इन

दो अन्तिम तत्वों का विवेकज्ञान भी हो जाता है यही विवेक ख्याति है। यह विवेक ख्याति निश्चित रूप से मोक्ष प्रद होती है यह समाधि चार प्रकार के ध्येयों का अनुगम (साक्षात्कार) करने के कारण चार प्रकार की मानी जाती है। वितर्करूप ध्येय अर्थात स्थूल पाञ्च भौतिक ध्येय का अनुगम करने वाली अर्थात स्थूल ध्येय में पूर्णतया तदाकारकारित होने वाली सात्विक वृत्ति के उदित होने पर वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। इसी प्रकार सूक्ष्म पञ्च तन्मात्रादि विषयों को अनुगम होने पर विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। आनन्द अर्थात आनन्दात्मक इन्द्रियों का अनुगम होने पर आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है और अस्मिता का अनुगम होने पर अस्मिानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है वितर्कादि को समझाते हुये भाष्यकार का कथन है कि आलम्बन में चित्त की स्थूल (रूप की) परिपूर्णता वितर्क है, सूक्ष्म (रूप की परिपूर्णता) विचार है, अह्लाद (रूप की परिपूर्णता) आनन्द है और (पुरूष तथा बुद्धि) एकाकार बुद्धि (रूप की परिपूर्णता) अस्मिता हैं इनमें से प्रथम अर्थात वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि (इन) चारों से अनुगत होती है। (इस समाधि में यद्यपि स्थूल आभोग (वितर्क) का प्रधान्य रहता है फिर भी विचार, आनन्द तथा अस्मिता के आभोग भी गौण रूप में बने रहते हें)। इसी प्रकार वितर्क से रहित तथा शेष तीनों से अनुगत विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है : आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि वितर्क तथा विचार से रहित तथा आनन्द एव अस्मिता से अनुगत होती है और अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि उपर्युक्त तीनों से रहित और केवल अस्मिता से अनुगत होती है।ये सभी समाधिया सालम्बन होती है।

चतुर्थ सोपान में पूर्णता आने पर विवेकख्याति का उदय होता है। जब क्लेश कर्म सस्कारों के क्षीण होने के फलस्वरूप विवेकख्याति सुदृढ़ हो जाती है किसी प्रकार के मिथ्या ज्ञान से वाधित नहीं होती और निरन्तर सर्वथा विवेकख्याति होती रहती है' तब उसे धर्ममेघ समाधि का सज्ञा दी जाती है। उस स्थिति में योगी के सचित तथा क्रियमाण कर्मो के सस्कार फल देने में असमर्थ हो जाते है, केवल प्रारब्ध कर्मो के संस्कारों के भोग शेष रह जाते है जिन्हें भोगता हुआ साधक 'जीवन्मुक्त' कहलाता है। प्रारब्ध कर्मो के संस्कार जन्य फलों का भोग समाप्त होते ही देहपात के फलस्वरूप वह 'विदेहमुक्त' हो जाता है। द्रष्टा का स्वरूप में अवस्थान हो जाता है।

असम्प्रज्ञात समाधि – सम्प्रज्ञात समाधि के सिद्ध हो जाने पर विवेकख्याति के फलस्वरूप साधक को मोक्ष की प्राप्ति तो हो जाती है संचित तथा

---

1 सभ्यक प्रज्ञायते ध्येयम् अस्मिमनरोध विशेपरूपेयोगऽति सम्प्रक्रासतोयोग: – यो वा. पृ0 9

1 यो सू. 1/2 का भाष्य

क्रियामाण कर्मो के सस्कार भी क्षीण हो जाते हैं किन्तु प्रारब्ध कर्मो का फल तो उसे भोगना ही पडता है। भोग द्वारा प्रारब्ध कर्मो का क्षय होने पर ही देहयात तथा तदनन्तर विदेहमुक्ति का लाभ उसे हो पाता है। असम्प्रज्ञात समाधि की यह विशेपता है कि इसके सिद्ध होने पर समस्त कर्म सस्कार दग्ध हो जाते हें फलस्वरूप साधक प्रारब्ध कर्मो का फल भोगने से भी तत्काल मुक्त हो जाता है। यही इसका सवर्तिशायी वैशिष्ट्य है। अत: साधक की इस समाधि की ओर प्रवृत्ति स्वाभाविक है। सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होने पर चित्त की राजस और तामस वृत्तियॉ पूर्णतया निरूद्ध हो चुकी रहती है, केवल सात्विक वृत्ति पूर्ण रूप से उदित रहती है। इस समाधि के फलस्वरूप होने वाली विवेक ख्याति के समय साधक पुरूष और बुद्धि दोनों की वास्तविकता जान लेता है। फलस्वरूप पुरूष के स्वरूप की अलौकिक शुद्धि, निश्चलता तथा चिन्मात्रता का दर्शन कर चुकने वाला साधक विवेकख्यातिकालिक अत्यन्त सात्विक बुद्धि को भी परिणामशीलता और चंचलता इत्यादि त्रूटियों से युक्त जानकर उसके प्रति भी विरक्त हो जाता है। उसकी यह वैराग्य ऐहिक और आमुष्मिक विषयों के प्रति होने वाले अपर वैराग्य से बहुत ही उत्कृष्ट होता है। चूँकि यह शुद्धतम बुद्धि के प्रति होता है इसलिए इसको 'परवैराग्य' कहते। इस परवैराग्य के अभ्यास से असम्प्रज्ञात योग की सिद्धि होती है। उस समाधि में न कोई ध्येय आलम्बन होता है और न किसी प्रकार का बौद्धिक ज्ञान।[1] इसीलिए इसको असम्प्रज्ञात समाधि कहा गया है। इस प्रकार यह समाधि ऐसी समाधि है जिसमें चित्त की राजस, तामस और सात्विक तीनों प्रकार की वृत्तियॉ पूर्णत: निरूद्ध हो जाती है। केवल निरोध संस्कार ही चित्त में शेष रह जाते हैं। ये संस्कार चित्त के प्रविलय में बाधक नही होते। इस समाधि में किसी प्रकार का बुद्धिकृत ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता और न तो इस ज्ञान के संस्कार ही अवशिष्ट बचते है। इसीलिए इसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

असम्प्रज्ञात योग में वृत्तिज्ञान समाप्त हो जाता है। जिसके कारण इसका नाम असम्प्रज्ञात पड़ा। किन्तु इसमें पुरूष तत्व की साक्षात उपलब्धि होती है बुद्धि का माध्यमत्व समाप्त हो जाता है आत्मा की अपरोक्षानुभूति होती है। बौद्धिक ज्ञान की पराकाष्ठा तो सम्प्रज्ञात योग के अन्तर्गत विवेकख्याति में ही हो जाती है। उस सर्वोत्कृष्ट बौद्धिक ज्ञान की भी अशुद्धता और परोक्षता का निश्चय होने पर परवैराग्य के द्वारा उसका भी निरोध कर दिया जाता है इसमें ज्ञान के साधनभूत बुद्धि का आश्रय त्याग कर साक्षात अपरोक्ष चिद्घन, 'ज्ञ' रूप पुरूष तत्व में साधक प्रतिष्ठित हो जाता है। यही असम्प्रज्ञात योग है। इसी की सुदृढ और व्युत्थान रहित हो जाने पर सारे सस्कार जल जाते है, निरोध संस्कारों के साथ चित्त अपनी प्रकृति में लीन हो जाता है और पुरूषमात्र अवशिष्ट रहता है। यही उसका कैवल्य है।

असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की होती है –

1 भवप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि

2- उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि

इनमें से भवप्रत्यय असम्प्रज्ञान समाधि विदेहों और प्रकृतिलीनों की होती है। भवप्रत्यय का अर्थ है जन्म से ही. सिद्ध होने वाली या जन्मकारणक। यह समाधि की सिद्धि से देवलोक में जन्म मिलता है। यह समाधि मोक्षदायक नहीं है इसीलिए यह योग नहीं अपितु योगाभासमात्र है। विदेह और प्रकृतिलीन देवों की कोटियाँ हैं।

उपायप्रत्यय अर्थात उपायकारण का उपायों से सिद्ध होने वाली समाधि योगियों की होती है। विवेकख्याति के श्रद्धालु योगी धारणा और ध्यान के द्वारा चित्त की चंचलता को समाप्त कर के समाहितचित्त हो जाना है। इस प्रकार धारणा, ध्यान तथा समाधि नामक सम्प्रज्ञात योग के तीनों अन्तरग उपायों से सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध हो जाती हैं समाधि लाभ कर लेने वाले उस योगी को विवेकज्ञानरूप बुद्धि, का परमोत्कर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस बुद्धिवैशद्य या प्रज्ञाविवेक से वह योगी हर पदार्थ को सम्यक रूप से जान लेता है। उस प्रज्ञाविवेक के अभ्यास से और बाद में उस विवेकख्याति के विषय में भी वैराग्य उत्पन्न होने से असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है। इसीलिए इस समाधि को पतञ्जलि ने श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक कहा है? (यो.सू. 1/20)। इन उपायों के अतिरिक्त ईश्वर प्राणिधान से भी यह समाधि शीघ्र सम्पन्न होती है।

योगसाधना के उपाय

योगसाधना के मुख्य उपाय 'वैराग्य' तथा 'अभ्यास' है। वैराग्य दो प्रकार का है। - अपर वैराग्य तथा परवैराग्य। ऐहिक तथा आमुष्मिक सभी विषयों के प्रति विरक्ति अपर वैराग्य है। इसके द्वारा सम्प्रज्ञातयोग की सिद्धि होती है। विवेकख्याति कालिक अत्यन्त सात्विक बुद्धि के प्रति होने वाला वैराग्य परवैराग्य है। इसके द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है।

योग के अधिकरियों की तीन कोटियॉ है - उत्तम, मध्यम तथा अधम या मन्द। उत्तम कोटि के साधकों को पूर्वपुण्यों के फलस्वरूप अपर वैराग्य' उदित हो जाता है जिसको दृढ़ करते हुए वे धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास करते करते योग को सिद्ध कर लेते हैं। धारणा, ध्यान, समाधि सम्प्रज्ञान के लिए अन्तरग है इनकी अभ्यास तीनों प्रकार के अधिकारियों के लिए अनिवार्य है।

मध्यम अधिकारी 'क्रियायोग' के द्वारा वैराग्य प्राप्त करने में सफल होते हैं। तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान को क्रियोयोग कहा गया है क्योंकि इन क्रियाओं के करने से योग सिद्ध होता है। इनमें स्वाध्याय से तात्पर्य ओंकार का जप या मोक्षशास्त्र का अध्ययन। सभी क्रियाओं को ईश्वर में अर्पित कर देना या उनके फलों के प्रति निरपेक्ष होना ईश्वर प्रणिधान है। इन तीन उपायों से पहले 'सत्वशुद्धि हो

जाती है। फिर अभ्यास एव वैराग्य नामक उपायों से अगली सारी योग प्रक्रिया हो सकती है।

जो साधक क्रियायोग भी नहीं कर सकते हैं उनके लिए योग के आठ अगो का विधान किया गया है जो इस प्रकार हैं - यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। मन्द अधिकारी इन आठों अगो को पालन करते हुए शुद्धसत्व होकर अभ्यास और वैराग्य नामक उपायों से योग सिद्ध करने मे सफल होते हैं। उपर्युक्त योग के आठों अगो में धारणा ध्यान समाधि तो सम्प्रज्ञात समाधि के अन्तरग हैं अत: उन्हें तो तीनों प्रकार के अधिकारियों को करना पड़ता है।

इस प्रकार उत्तम अधिकारी तो वैराग्य प्राप्त करने के लिए जन्मत: सक्षम होते हैं। मध्यम अधिकारी क्रियायोग के द्वारा वैराग्य प्राप्त करके योगासिद्धि का लाभ करते हैं और मन्द अधिकारी यमनियमादि प्रथम पाँच साधनों के द्वारा वैराग्यप्राप्ति और योगसिद्धि का लाभ प्राप्त करते हैं।

योगदर्शन के तत्वमीमांसीय सिद्धान्त

पातञ्जलि योग का दार्शनिक आधार कपिलमुनि प्रणीत सांख्य ही है। कपिल के दर्शन में तत्वों की जानकारी वाला अंश सांख्य है और इस जानकारी की साक्षात उपलब्धि का उपायभूत (सम्प्रज्ञात) तथा उसका उपेयभूत (असम्प्रज्ञात) योग है। इसीलिए योगशास्त्र का तत्वमीमांसात्मक ज्ञान सांख्यशास्त्र सम्मत ही है। अत: योग के अनुसार समस्त जगत पुरूष नामक चेतन और प्रकृति नामक अचेतन तत्वों के रूप में विभक्त है। पुरूष तत्व, चेतन, त्रिगुणातीत, निर्गुण, निर्विकार, असग, निर्लेप तथा कुटस्थ नित्य है। जबकि प्रकृति जड, त्रिगुणात्मिका, विकारों के रूप में परिणत होने वाली तथा परिणामिनित्य है। यह प्रकृति समस्त विकारों की मूल प्रकृति है और मूलावस्था में सत्व रजस और तमस इन तीनों गुण संज्ञक दृव्यों की साम्यावस्था वाली तथा अव्यक्त रहती है। प्रकृति एक और पुरूष अनेक हैं।

परिणाम सिद्धान्त -

अनादि अविद्या के कारण जब पुरूष का प्रकृति से संयोग होता है तब संयोग के कारण वह मूला प्रकृति विकारों के रूप में परिणत होना आरम्भ करती है उसकी इस प्रकार की परिणति को साख्य योग में परिणाम सिद्धान्त कहा गया है। मूलाप्रकृति का प्रथम परिणाम है महत्, महत् के पश्चात यह प्रकृति क्रमश: अहंकार एकादश इन्द्रियों, पॉच तन्मात्राओं तथा पाँच महाभूतों ओर फिर संसार के विभिन्न पदार्थो के रूप में परिणत होती है। पञ्च महाभूत पर्यन्त प्रकृति का परिणाम तत्वान्तर परिणाम कहा जाता है। पञ्च महाभूतों की स्थिति में आने के बाद प्रकृति का जो और परिणाम होता रहता है उस परिणाम से नये तत्व नहीं अभिव्यक्त होते अपितु स्थित धर्मी के धर्मो में ही परिवर्तन आता है। अव्यक्त प्रकृति गुणत्रय का अलिंग परिणाम

है और महत् तत्व लिग परिणाम है। गुणों के छ अविशेष परिणाम है - अस्मिता और पॉच तन्त्रामायें। ग्यारह इन्द्रियॉं आर पॉच महाभूत गुणों के ये सोलह विशेष परिणाम है। पुरूष तत्व अपरिणामी निर्गुण तथा चिन्मात्र है।

कर्मसिद्धान्त

योगशास्त्र के कर्मसिद्धान्त पर विधिवत विचार किया गया है। जो कर्म बुद्धिपूर्वक ओर बुद्धि में स्थित अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष, और अभिनिवेष नामक क्लेशों के साथ किये जाते हैं, उन कर्मो के करने से जीवों की बुद्धि मं सस्कार पड जाते हैं जो कर्म सस्कार या कर्माशय कहलाते हैं। ये कर्म संस्कार क्लेशों के हल्के होने पर, हल्के ओर जोरदार होने पर गहरे बनते है। ये संस्कार शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के होतें है। कर्मो के फल वर्तमान जीवन और भावी जीवनों में भी भोग्य होते हैं। इन कर्मों के फलों का मिलना जीवों में क्लेश की सत्ता रहने पर भी आरम्भ हो सकता है। क्लेशों के दग्धबीज हो जाने पर फल मिलना नहीं आरम्भ हो सकता है। यदि फल मिलना आरम्भ हो चुका है और बीच में विवेकख्याति हो जाये तो उनका फल भोग पूरा हो करके ही रहेगा। ऐसे कर्म संस्कार जिनका फल मिलना प्रारम्भ हो चुका होता है 'प्रारब्ध कर्माशय' कहे जाते हैं। इनकी फलप्रदता को विवेक ख्याति भी नहीं रोक पाती इसीलिए प्रारब्ध कर्माशय बड़े बलवान कहे जाते हैं जिन सचित और क्रियमाण कर्म सस्कारों का फल मिलना प्रारम्भ हुआ नहीं रहता, विवेक ख्याति के उदय से उनका दग्ध बीज हो जाना निश्चित हैं।[1]

एक जन्म और उसके बाद वाली एक मृत्यु के बीच किये गये कर्मो से बने हुये शुभाशुभ सस्कारों का एक ऐसा गठ्ठर सा बना रहता है जिसके शुभाशुभत्व का प्रकाशन उस मृत्यु से होता है। वह पुञ्जीभूत कर्म संस्कार समूह ही अपने फलों के अनुकूल अगला जन्म देता है, उस अगले जीवन की आयु निर्धारित करता है और उसी कर्माशय समूह से उस जीवन का फल भोग सम्पन्न होता है।[8]

जन्म आयु और भोग - यही तीन मुख्य फल या बिपाक है जो कर्म सस्कारों से प्राप्त होते है। ऐसे कर्म सस्कार, जो तीनों फल देते हैं - 'त्रिविपाककर्माशय' कहलाते हैं। वे अदृष्ट जन्मवेदनीय भी होते है क्योंकि वे वर्तमान से भिन्न दूसरे

---

1 योगसूत्रभाष्य सिद्धिः - पृष्ठ 44

जन्मों से भोगे जाते है। यही कर्म सस्कार जन्मरूपी फल दे चुकने के उपरान्त 'प्रारब्ध' कहे जाते हैं। दृप्टजन्मवेदनीय कर्माशय वर्तमान जीवन में ही फल देने के कारण 'जन्म' नामक फल नहीं देते। वे केवल भोग या आयु देने के कारण 'एक विपाक' और दोनों देने के कारण 'द्विविपाक' कहे जाते हैं। इस प्रकार त्रिविपाक अदृष्टजन्मवेदनीय कर्माशय नियत समय में फल देने के कारण नियतविपाक और जन्म नामक फल देने के कारण 'एक भाविक' भी कहे जाते हैं। इन अदृष्टजन्मवेदनीय कर्माशयों मे से कुछ एक विपाक या द्विविपाक भी होते हैं। वे जन्म नामक फल नहीं देते। वे 'अनियत विपाक' अदृप्टजन्मवेदनीय कर्माशय कहे जाते है। उनकी गति बड़ी विचित्र होती है। इनकी तीन स्थितियॉ हो सकती है -

1 बिना फल दिये ही प्रबल प्रायश्चित्तादि के फलस्वरूप अत्यन्त कमजोर हो जाना या नष्ट हो जाना।

2- प्रबल कर्म सस्कारों में अन्तर्भावित हो जाना।

3- नियत विपाक प्रधान कर्म के द्वारा अभिभूत होकर बहुत जन्मों तक पडे रहना और अपने अनुकूल परिस्थिति के आने पर फल देना।

इस तीसरे प्रकार की गति वाले अनियत विपाक कर्माशय के फलोन्मुख होने की परिस्थिति किस समय किस स्थान पर कैसे आयेगी ? यह निश्चित नहीं रहता। इसलिए कब इस प्रकार के कर्म संस्कार फल दे देंगे ? इसकी जानकारी असम्भव होने के कारण कर्मगति दुर्विज्ञान और विचित्र कहीं जाती हैं ये सभी प्रकार के कर्मसंस्कार शुभ होने पर आनन्ददायक फल और अशुभ होने पर दु:खमय फल देते हैं।[1]

ईश्वर

पातञ्जल योगदर्शन में 'ईश्वर' नामक तत्व को भी स्वीकार किया गया है जबकि ईश्वरकृष्ण के साख्य में ईश्वर नामक तत्व के लिए कोई अवकाश नहीं है। इसलिए कुछ विद्वान योग को सेश्वर सांख्य कहते हैं या इसे 26 तत्वों वाला शास्त्र कहते हैं जो कि भ्रामक है क्योंकि योग का यह ईश्वर नामक तत्व एक प्रकार का पुरूष ही है, उससे भिन्न कोई अलग से तत्व नहीं है। सब पुरूषों में परस्पर कुछ न कुछ विलक्षणता रहने पर जैसे वे सब पुरूष ही कहालने हैं उसी प्रकार क्लेशादिपरामर्शरहिततारूप विलक्षणता होने पर भी ईश्वर है तो पुरूष ही उससे भिन्न कोई नया तत्व नहीं है। जैसे किसी अज्ञात वृक्ष का बोध कराने के लिए कहा जाता है 'वृक्षविशेप:' या अज्ञातपशु का बोध

---

1 योगसूत्रभाष्य सिद्धि: - पृप्ठ 45

कराने के लिए कहा जाता है 'पशुविशेप·' उसी प्रकार सांख्यशास्त्र में अज्ञात ईश्वर सका बोध कराने के लिए कहा गया है- पुरूषविशेप: ईश्वर:। इस प्रकार ईश्वर तत्व का अन्तर्भाव पुरूप तत्व के अन्तर्गत हो जाता है।

क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश) कर्म (धर्म तथा अधर्म), विपाक (कर्मफल) तथा आशय (विपाक या कर्मफलभोग से बनने वाले संस्कार) से अपरामृष्ट अर्थात सम्पर्क रहित पुरूप विशेष ही ईश्वर है। कैवल्य प्राप्त कर चुकने वाले बहुत से केवली होंते हैं। उन्होंने प्राकृतिक, वैकारिक तथा दक्षिणा- इन तीनों बन्धनों कोकाट कर कैवल्य प्राप्त किया है। ईश्वर का इन बन्धनों से सम्बन्घ न कभी था और न कभी होगा। ईश्वर न तो अभी बूद्ध है, न कभी बूद्ध था ओर न कभी बूद्ध होगा। अन्य सभी पुरूष या तो अभी बंधे हुए हैं या मुक्त हो चुके हें किन्तु ईश्वर को किसी काल में मुक्त होने की आवश्यकता ही नहीं हुई क्योंकि वह तो सदैव मुक्त था।

उसका ऐश्वर्य सर्वातिशायी है। उममें सर्वज्ञता की पराकाष्ठा होती हैं। वह काल से अवच्छिन्न नहीं है इसलिए गुरूओं का भी गुरू हैं उसका वाचक शब्द 'प्रणव' अर्थात ओंकार है। योगसाधना में ईश्वर का महान उपयोग यह है कि उसके नाम का जप करने और उसकी भावना करने से योगदर्शन के सारे विघ्न दूर हो जाते हैं तथा साधक को स्वरूप का दर्शन होता है और अन्तत: उसे कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। योगसूत्रों में ईश्वर को न तो सृष्टि से सम्बन्धित स्वीकार किया गया है और न ही प्रलय से। वह साकार भी नहीं है। वह साधक के द्वारा स्वरूपदर्शन को सुकर और शीघ्र सम्पाद्य बनाने में सहायक मात्र है किन्तु तत्ववैशारदीकार वाचस्पिति मिश्र ने योग में ईश्वर को सृष्टि प्रक्रिया से भी सम्बद्ध करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि प्रकृति ईश्वर से अधिष्ठित हो कर ही सृष्टि के विकास की प्रक्रिया और प्रलय का कार्य पूरा करती है।

कैवल्य

कैवल्य के साधनभूत योग का स्वरूप बताते हुए समाधिपाद में पतञ्जलि ने कैवल्य का स्वरूप द्रष्टा का स्वरूप में अवस्थान बताया था (तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम! यो.सू. 1/3 । साधनपाद में पुन: कैवल्य पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं - सम्प्रज्ञातयोग की सिद्धि होने पर अविद्याकृत पुरूष प्रकृत संयोग का अभाव हो जाता है। यही दु खों का ऐकान्तिक तथा आत्यान्तिक नाश है। यही पुरूष का कैवल्य या आत्यान्तिक निरूपाधित्व है। (तदभावात्संयोगाभावों हान तद् दृशे: कैवल्यम् यो.सू. 2/25)। विभूतिपाद में कैवल्य के लिये उपयुक्त स्थिति का निरूपण करते हुए महर्षि कहते हैं कि बुद्धिसत्व और पुरूष की समानरूप से शुद्धि हो जाने पर कैवल्य सिद्ध होता है (सत्वपुरूषयो: शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्। यो.

सू. 3/55)। केवल सत्वात्मक बुद्धि का पुरूष की अन्यताख्याति मात्र में प्रतिष्ठित होना तथा उसका दग्धक्लेश वीज होना बुद्धि की शुद्धि है तथा उस समय पुरूष में व्यपदिष्ट भोगों का अभाव होना ही पुरूप की शुद्धि है। उस समय पुरूष स्वरूपमात्र ज्योति, निर्गुण और केवली रहता है। कैवल्य का पूरा-पूरा वर्णन कैवल्य पाद केअन्तिम सूत्र में किया गया है। इसके अनुसार कैवल्य की स्थिति को दो दृष्टियों से वर्णित किया जा सकता है। गुणों की दृष्टि से और पुरूप की दृष्टि से । पुरूषार्थ शून्य सत्वादि गुर्णा का अव्यक्त प्रकृति में प्रतिप्रसव हो जाना अर्थात लीन हो जाना गुणों की दृष्टि से कैवल्य है। पुरूष तत्व का अपने स्वरूप में सदा के लिए प्रतिष्ठित हो जाना पुरूष की दृष्टि से कैवल्य है।

निर्विप्लवा विवेक ख्याति के पश्चात जीवित अवस्था में जो कैवलय हो ता है उसको जीवन्मुक्ति कहते है और लब्धविवेकख्याति योगी के प्रारब्धभोग के पश्चात शरीरपात होने पर अथवा असम्प्रज्ञात योग के सिद्ध होने पर गुणों का प्रतिप्रसव हो जाने से विदेह कैवल्य या विदेहमुक्ति होती है। वस्तुत: जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त दोनो ही प्रकार के साधकों की उपर्युक्त मुक्ति एक और अभिन्न है। जब उस मुक्ति का अनुभव जीवित रहते हुये होता है तब वह जीवन्मुक्ति कही जाती है और जब उसका अनुभव शरीर रहित होने पर होता है तो वही विदेह मुक्ति कही जाती है। (पुरूषार्थ शून्यानाम गुणानाम प्रतिप्रसव: कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरीति- यो.सू. 4/34)

---

1. योगसूत्रभाष्यसिद्धि, पृष्ठ 30

द्वितीय अध्याय

योगसूत्र के अनुसार योग का स्वरूप

योगसूत्र के अनुसार पातञ्जल योगदर्शन का स्वरूप

पतञ्जलिविरचित योगसूत्र चार पादों में विभक्त है जो विवेच्य विषय के आधार पर इस प्रकार हैं-

1. **समाधिपाद**
2. **साधनपाद**
3. **विभूतिपाद**
4 **कैवल्यपाद**

समाधिपाद

कुछ विद्वान कैवल्यपाद को प्रक्षिप्त मानते हैं पर उनकी धारणा उचित नहीं कही जा सकती क्योंकि पाद का अर्थ होता है चतुर्थ अश और ग्रन्थ पादों में विभाजन स्वत: इस बात का प्रमाण है कि मूल ग्रन्थ चार अध्यायों वाला रहा होगा।

योग का लक्षण करते हुए महर्षि पत०जलि कहते हैं-

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' योगसूत्त 1/2

जिसमें योग लक्ष्य हे तथा शेप अश लक्षण। इस प्रकार आचार्य के अनुसार योग काअर्थ है चित्त की वृत्तियों का निरुद्ध हो जाना। 'चित्त' का अर्थ है 'अन्त करणमामान्य'। साख्य दर्शन म बुद्धि, अहकार तथा मन के भेद से अन्तकरण तीन बताये गये है।[11] योग दर्शन में भी अन्त: करण के इन तीनों भेदों को स्वीकार किया गया है पर व्यावहारिक दृष्टि मे इन तीनों के वाचक एक माधारण नाम की दृष्टि से चित्त शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार चित्त में सांख्य के बुद्धि, अहंकार तथा मन तीनों का योग है। वृत्ति का अर्थ है- व्यापार (वर्ततेऽनयेति वृत्ति: व्यापार·) योग के अनुसार चित्त ज्ञानेन्द्रियरूप प्रणालियों से बाहर जा कर विषयाकारकारित होता रहता है। इसी को चित्त का व्यापार कहा गया है। चित्त अनेक रूपों में परिणत होता रहता है इसलिए चित्त की वृत्तिया असंख्य होती हैं। त्तिगुणात्म्क चित्त की ये वृत्तियां सत्वादिगुणों

के प्राधान्य के आधार पर विविध मानी गयी है-

1. सात्तिवक वृत्तियॉ।
2 राजस वृत्तियॉ।
3. तामस वृत्तियॉ।

[11] अन्त·करण त्रिविध दशधा बाह्यम् '' मा का 33

चित्त की इन वृत्तियों का निगृहीत करना ही इनका विरोध है पर योगशास्त्त में 'निरोध' का अर्थ है वृत्तियों का चित्त में लय होना उनका अभाव नही ऐसा न मानने पर विरोध के अनन्तर इन वृत्तियों तथा इनके संस्कारों का फिर से उदय नही हो सकता। अत: वृत्तिनिरोध का अर्थ 'वृत्यभाव' न करके 'वृत्तियों का चित्त में लय मानना ही उचित जान पडता है।

भाष्यकर चित्त की पॉच भूमियाँ[12](अवस्थायें) बताते है। जो निम्नवत है-

1. क्षिप्ता- रजोगुण के उद्रेक के कारण विषयों में ही व्यापृत रहने वाली चित्त की अवस्था 'क्षिप्त' भूमि है।[13]
2. मूढ- तमोगुढ के उदेक के कारण निद्रादिव्यापार युक्त चित्त की अवस्था 'मूढ' भूमि है।[14]
3 विक्षिप्त- यह भूमि क्षिप्तादि भूमि से कुछ अच्छी होती है। इसमें सत्त्व गुण का आधिक्य रहता है। इसमें कुछ समय के लिए समाधि लगने पर भी रजोगुण के विक्षेप के कारण बीच बीच में चित्त अन्य विषयों की ओर दोड़ जाता है। चित्त की यह अवस्था उसकी विक्षिप्त नामक भूमि कही जाती है।[15]
4. **एकाग्र**- इस अवस्था में चित्त की सात्विक वृति किसी एक ही विषय की ओर लगी रहती हे, रजोगुण और तमोगुण दबे रहते है अत: उस एक विषय की ओर उन्मुख वृति वाली इस अवस्था को चित्त की एकाग्र भूमि कहते है।[16]
5. **निरुद्ध** - जिस अवस्था में चित्त की तामस और राजस वृत्तियों के साथ-साथ सात्विक वृत्ति का भी निरोध हो जाता है, केवल संसार मात्त चित्त में रहते है उसे चित्त की निरुद्ध भूगि कहते है।[17]

चित्त की एकाग्र भूमि में केवल राजस और तामस वृत्तियों का निरोध होता है, सात्विक वृत्ति का पूर्ण उदय हुआ रहता है जबकि निरुद्ध भूमि में सात्विक वृत्ति का भी निरोध हो जाता है। इसीलिए इस भूमि का नाम निरुद्धभूमि पड़ा। इस भूमि में

[12] 'क्षिप्त मूढ विक्षिप्तमकाग्र निरुद्धमिति चित्तभूमय ' पर योग भा सूत्र 1/1

[13] 'रजसा विषयेष्वेव वृत्तिमत्' यो वा पृ 5

[14] तमसा निद्रादिवृत्तिमत्। वही पृ 8

[15] 'क्षिप्ताद् विशिष्ट विक्षिप्त मत्त्वाधिक्येन समादधदपि चित्त रजोमात्रयाऽन्तराऽन्तरा विषयान्तखृत्तिमद्'। वही पृ 8

[16] एकस्मिन्नेव विषयेऽग्र शिखा यस्य चित्त्दीपस्येत्येकाग्र विशुद्धसत्त्वतयैकस्मिन्नेव विषये वक्ष्यमाणावधीकृतकालपर्यन्तमच०चल निवातरथदीपवत्। तथा च क्षिप्तादित्रयऽपि कि०चिदैकाग्रयमत्वऽपि त्र नाति प्रसड्ग। वही पृ 8

[17]. निरुद्ध च निरुद्धसकलवृत्कि सस्कारमात्रशेषमित्यर्थ वही पृ 8

होने वाली सर्ववृत्ति निरोधात्मक समाधि असम्प्रज्ञात योग कहलाती हैं। सूत्त 1/2 में 'सर्व' शब्द का ग्रहण न होने से 'एकाग्र' भूमि की समाधि भी योग है। अन्तर बस इतना है कि एकाग्र भूमि वाले योग में चित्त की केवल दो वृत्तियों का निरोध होता है जबकि निरुद्ध भूमि वाले योग में चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

भाष्यकार 'योग' का 'समाधि'[18] अर्थ करते है जो कि योग का व्युत्पत्ति लक्ष्य अर्थ भी है क्योंकि युज् समाधौ धातु से घ०ा प्रत्यय लगाकर योग शब्द की निष्पत्ति होती है। पर जैसा की अभी हम देख चुके हैं, महर्षि पत०जलि योग का अर्थ करते है 'चित्तवृत्तिनिरोध'। दोनों ही आचार्यों के मत का समन्वित अर्थ यह निकलता है कि योग का अर्थ है, 'चित्तवृत्तिनिरोधरूप समाधि'। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ऐसी समाधि, जिसमें चित्तवृत्ति का निरोध नहीं होता है, योग नहीं है। इसीलिए भाष्यकार समाधि को चित्त का सार्वभौम (चित्त की उपर्युक्त पांचों भूमियों या अवस्थाओं में रहने वाला) धर्म बताते हुए प्रथम तीन से सम्बद्ध समाधि के योगत्व का निषेध करते हैं।[19] उनके अनुसार जो समाधि एकाग्रभूमि वाले चित्त में होती है तथा बुद्धि में स्थित पदार्थ को पूर्णतया प्रकाशित करती है। (अविद्यादि) क्लेशों को नष्ट करती है, कर्म के बन्धनों (कर्मसस्कारों) को शिथिल करती है और निरोध (असम्प्रज्ञातसमाधि) को सामने लाती है वह (समाधि) सम्प्रज्ञात योग कहलाती है।[20] इसमें ध्येय का पूर्ण रूप से ज्ञान बना रहता है इसलिए इसे सम्प्रज्ञात योग कहते हैं।[21] सभी वृत्तियों का निरोध हो जाने पर तो असम्प्रज्ञात समाधि होती है।[22] इस प्रकार चित्त की एकाग्र तथा निरुद्ध भूमियों की समाधि ही योग है। क्षिप्तादि भूमियों की समाधि योग क्यों नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर सूत्तकार ने तृतीय सूत्त 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् द्वारा दिया है जिसका अर्थ है कि 'उस समय द्रष्टा अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। तात्पर्य यह निकला कि उसी चित्तवृत्तिनिरोध या समाधि को योग कहेंगे जिसमें पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाय। द्रष्टा की अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिति चूकि चित्त को केवल एकाग्र तथा निरुद्ध

[18] योग समाधि 1/1 पर यो0 भा0

[19] स च सार्वभाम चित्तस्य धर्म.। तत्र विक्षिप्त चतसि विक्षेपापसर्जनोभूत समाधिर्न योगपक्ष वर्तने। 1/1 पर यो भा

[20] 'यस्त्वेकाग्र चेतसि सत्भूतमर्थ प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान्, कर्म-बन्धनानि श्लथयति, निरोधभमिमुख करोति स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते।' 1/1 पर यो0 भा0

[21] सम्यक् प्रज्ञायते ध्येयमस्मिन्नरोधविशेषरूप योग इति सम्प्रज्ञातो योग यो वा पृ 9

[22]. सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसम्प्रज्ञात. समाधिः 1/1 पर यो भा

भूमियों में ही हो पाती है इसलिए इन्हीं दोनों भूमियों में होने वाली समाधि को योग कहेंगे।

दोनों ही समाधियों में द्रष्टा (पुरुष) की अपने स्वरूप में स्थिति होती है।[23] द्रष्टा अर्थात् पुरुष द्वारा सिद्ध विवेकख्याति इससे सर्वथा भिन्न तथा सत्वगुणात्मक है। इसलिए इसके प्रति भी विरक्त हुआ चित्त (परवैराग्य के द्वारा) इस विवेकख्याति को भी निरुद्ध करता है। इस पूर्ण निरोध की भूमि में स्थित चित्त निरोधसस्कारमात्तावशिष्ट रह जाता है। यह निर्बीज समाधि कही जाती है। इस स्थिति में चित्त को किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होता इसलिए इसे असम्प्रज्ञात योग कहते हैं। इस प्रकार चित्तवृत्तिनिरोधरूप यह योग दो प्रकार का होता है - सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात।[24]

सम्प्रज्ञात योग सिद्ध होने पर विवेकख्याति की उपलब्धि होती है तथा क्रियमाण कर्मो के सस्कार फल देने में असमर्थ हो जाते हैं केवल प्रारब्ध कर्मो के संस्कारों के भोग समाप्त होते ही देहपात के फलस्वरूप वह 'विदेहमुक्त' हो जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि में वृत्तिज्ञान बिल्कुल समाप्त हो जाता, पुरुष तत्त्व की साक्षात् उपलब्धि होती है, बुद्धि का माध्यमत्व समाप्त हो जाता है और आत्मा की अपरोक्षानुभूति होती है। इसमें ज्ञान की साधनभूत बुद्धि का आश्रय त्याग कर साक्षात् अपरोक्ष चिद्घन 'ज्ञ' रूप पुरुष तत्त्व अर्थात् आत्मतत्त्व में साधक प्रतिष्ठित होता है।[25] इसके दृढ़ होने पर सारे संस्कार जल जाते हैं, निरोध संस्कारों के साथ चित्त अपनी प्रकृति में लीन हो जाता है और पुरुषमात्त अवशिष्ट रहता है। यही उसका कैवल्य है। 'योग: चित्तवृत्तिनिरोध:, में प्रयुक्त 'वृत्ति' का विवेचन करते हुए, इन वृत्तियों को क्लिष्ट और अक्लिष्ट रूपों में विभाजित करते हुए महर्षि पत०जलि इनके पांच प्रकार बताते हैं जो इस प्रकार हैं -

1. प्रमाण
2. विपर्यय
3. विकल्प
4. निद्रा
5. स्मृति।[26]

[23] तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम् यो सू 1/3

[24]. 'चितिशक्तिरपरिरामिन्यप्रतिसक्रमा दर्शितविषया शुद्धा चानन्ता च। सत्त्वगुणात्मिका चयमतो विपरीता विवेकख्यातिरिति। अतस्तस्या विरक्त चित्त तामपि ख्याति निरुणाद्धि। तदवस्थ चित्त सस्कारोपग भवति। स निर्बीज समाधि·। न तत्र कि०चित्सप्रज्ञायत इत्यसम्प्रज्ञात। द्विविध स योग चित्तवृत्तिनिरोध इति। 1/2 पर यो. भा

[25] 'सवरूपप्रतिष्ठा तदानी चितिशक्तर्यथा केवल्य। यो सू0 1/3 पर भाष्य

[26]. वृत्तय: प०चतथ्य: क्लिष्टाक्लिष्टा ।। यो सू 1/5

तत्व वैशारदीकार इस सबध में स्पष्टीकरण करते हुए कहते है कि आचार्य ने इन पांच वृत्तियों को बताकर यह बता दिया कि वृत्तिया इतनी ही होती हैं इनसे भिन्न नहीं- एतावत्य एव वृत्तयो नापरा: सन्तीतिदर्शितिम भवति' त वे पृ 27

योगभाष्यकार क्लिष्ट और अक्लिष्ट की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि अविद्या आदि पांचों क्लेषों से उत्पन्न होने वाली तथा कर्म सस्कार समूह को उत्पन्न करने वाली वृत्तिया क्लिष्ट[27] कहलाती है तथा विवेकख्याति को विषय बनाने वाली अर्थात् विवेकख्याति विषयिणी (वृत्तिया) तथा गुणों` कार्य को रोकने वाली वृत्तियां अक्लिष्ट[28] कही जाती हैं। क्लिष्ट और अक्लिष्ट स्वभाव वाली ये वृत्तियां अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होती चाहे जितना अपनी विरोधी वृत्तियों से घिरी हों इसीलिए भाष्यकार कहते हें कि अक्लिष्ट वृत्तिया क्लिष्ट वृत्तियों के प्रवाह में पडी हुई होने पर भी अक्लिष्ट ही रहती हैं। इसी तरह अक्लिष्ट वृत्तियों के प्रवाह में पडी रहने पर भी क्लिष्ट वृत्तिया भी क्लिष्ट ही बनी रहती हैं।[29]

उपर्युक्त पाच वृत्तियों में से प्रमाण नामक वृत्ति प्रत्यक्ष अनुमान और आगम भेद से त्तिविध है।[30] प्रमाण का लक्षण तो आचार्य नहीं करते लेकिन अन्य लोगों ने जो लक्षण प्रमाण का किया है उसके अनुसार अज्ञात तत्व का पौरुषेय (पुरुश को होने वाला) बोध ही प्रभा है और उस प्रभा का करण प्रमाण नामक वृत्ति कही जाती है।[31]

(क) प्रमाण

1. **प्रत्यक्ष प्रमाण** : इन्द्रिय रूपी प्रणाली (नाली) के द्वारा चित्त का बाह्य वस्तु से संपर्क होने के कारण तद्विषयिणी, सामान्याविशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश का प्रधानतया अवधारणा करने वाली चित्तवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण है।[32]
2. **अनुमान प्रमाण** : अनुमेय (अर्थात् साध्यविशिष्ट पक्ष) के सजातीयों (अर्थात् सपक्षों) में रहने वाला तथा विजातीयों (अर्थात् विपक्षों) में न रहने वारला जो संबधी

[27] 'क्लेशहेतुका कर्माशयप्रचयक्षेत्रीभूता· क्लिष्टा। 'या सू 1/5 पर भाष्य।

[28] 'ख्याति विषया गुणाधिकारविरोधन्याऽक्लिष्टा ' यो सू 1/5 पर भाष्य।

[29] क्लिष्टप्रवाहपतिता अप्यक्लिष्टा , क्लिष्टच्छिद्रेष्वप्यक्लिष्टा भवन्ति। अक्लिष्टच्छिद्रेषु क्लिष्टा इति। यो सू 1/5 पर भाष्य।

[30] 'प्रत्यखानुमानागमा प्रभारानि' यो सू 1/7

[31] 'अनधिगततत्त्वबाध प्रभा तत्करणा प्रमार्णामति प्रमाणसामान्यलक्षणम्।' या वा पृ 27

[32] इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्यवस्तूपरागात् तदविषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणाप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्ष प्रमाणम्। यो सू 1/6 पर भाष्य।

(अर्थात् लिग) है उसके ज्ञान मे उत्पन्न होने वाली और (पदार्थ के) सामान्य (अश) का मुख्य रूप से ज्ञान कराने वाली चित्तवृत्ति अनुमान कहलाती है। जैसे -
चन्द्रमा और तारे गतिमान हैं।
भिन्न-भिन्न देशों में पहुचने के कारण।
जो जो भिन्न-भिन्न देशों में पहुचता रहता है वह वह गतिमान होता है जैसे चैत्त।
जो जो गतिमान नहीं होता वह वह भिन्न देशों में नहीं पहुंचता जैसे विन्ध्य पर्वत।[33]

3 आप्त पुरुष द्वारा प्रत्यक्षीकृत अथवा अनुमित अर्थ का जब दूसरे व्यक्तियों में अपना ज्ञान सक्रमित करने के लिए शब्दों द्वारा उपदेश किया जाता है तो वहा शब्दों के सुनने से उस कथित पदार्थ के विषय में सुननेवाले की जो चित्तवृत्ति बनती है वह आगम (प्रमाण) कहलाती है।[34]

(ख) विपर्यय :

ज्ञेय वस्तु से भिन्न रूप में प्रतिष्ठित मिथ्या ज्ञान को विपर्यय[35] कहते हैं। इसे (मिथ्या ज्ञान को) प्रमाण नहीं मानते क्योंकि यह प्रमाण से बाधित हो जाता है। प्रमाण तो वस्तुविषयक होता है।[36] शुक्ति आदि विषय में (शुक्तिभिन्न) रजतादि के रूप में प्रतिष्ठित रहने वाला मिथ्या ज्ञान विपर्यय का उदाहरण है। सशय भी इसी में अन्तर्भूत हो जाती है[37] क्योंकि संशयज्ञान की वृत्ति भी स्थाण्वाकार के स्थान पर स्थाणुपुरुषाकार होती है।

(ग) विकल्प :

विकल्प नामक वृत्ति शब्द बोध के अनन्तर होने वाला तथा निर्वस्तुक होती है।[38] जिस शब्द के सकेतिक अर्थ का अस्तित्व ही न हो उस शब्द के ज्ञान का अनुवर्ती होने के कारण वह ज्ञान (वृत्ति) भी वस्तु या पदार्थ से सर्वथा रहित होगा। वस्तुशून्यता के कारण वह प्रमाण में अन्तर्भूत नहीं हो सकता और (शब्दज्ञान से उत्पन्न होने के कारण) व्यवहार में अबाधित होने के कारण विपर्यय नामक वृत्ति में भी अन्तर्भूत नहीं

[33] अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्त सबधी य· तद्विषया सामान्यावधारणाप्रधाना वृत्तिरनुमानम्। यथा देशान्तर प्राप्तर्गतिमच्चन्द्रतारक चैत्रवतम् विन्ध्यश्चाप्राप्तिरगति। वही 1/6 पर भाष्य।

[34] आप्तेन दृष्टोऽनुमितोवार्थ परत्र स्वबोधसक्रान्तय शब्देनोपदिश्यते। शब्दात्तदर्थविषया वृत्ति श्रोतुरागमः' वही 1/6 पर भाष्य।

[35] विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्। यो सू 1/8

[36] 'स कस्मान्न प्रमाणम्। यत प्रमाणेन बाध्यते भूतार्थ विषयत्वात्प्रमाणस्य। वही 1/8 पर भाष्य।

[37] अतो सशयोऽपि मगृहीत। त वै पृ 33

[38]. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प.। यो सू 1/9

किया जा सकता।[39] इसका उदाहरण हे- चेतन्य पुरुपस्य स्वरूपमिति। इस उदाहरण में चैतन्य और पुरुश एक ही पदार्थ हें अर्थात् पुरुश ही चैतन्य है। अत: पुरुप में लगी हुई षष्ठी विभक्ति के प्रभाव से जो विशेषणविशेष्य भावरूप सबध प्रकट हो रहा है वह अवास्तविक (वस्तुशून्य) है। किन्तु शब्द ज्ञान के माहात्म्य से ऐसा ज्ञान होता है कि चैतन्य विशेपण हे पुरुप विशेप्य। व्यवहार में ऐसे वाक्य का प्रयोग होता है राहो: शिर: भी इसी तरह का प्रयोग है।

(घ) **निद्रा** .

(जाग्रत और स्वप्न काल के ज्ञान के) अभाव का कारणभूत जो तमोगुण है उसे विषय बनाने वाली वृत्ति निद्रा है।[40] जागने पर इस प्रकार का स्मरण कि मैं सुखपूर्वक सोया, मेरा मन प्रसन्न है, अथवा मे बहुत बेचैनी से सोया मरा मन अकर्मण्य हो रहा है, बिना किसी अनुभवात्मक ज्ञान के नही होना चाहिए[41] अत: निद्रा भी एक विशेप प्रकार का ज्ञान या वृत्ति ही है।

(ड) **स्मृति** :

अनुभूतविषय की चित्त में उपस्थिति स्मृति नामक वृत्ति है।[42]

उपर्युक्त ये सभी वृत्तियां बुद्धि की त्तिगुणात्मकता के कारण सुखात्मक, दु:खात्मक तथा मोहात्मक हो सकती हैं। इनका निरोध हाने पर ही सम्प्रज्ञात अथवा सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।[43] इनके निरोध का उपाय है अभ्यास तथा वैराग्य।[44] (चित्त की) स्थिति (स्थिरता) के लिए प्रयत्न करना अभ्यास है।[45] चित्त की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि (राजस ओर तामस) वृत्तियों से रहित चित्त का निस्तरग प्रवाहित होना (चित्त की) स्थिति है। इसके लिए मानसिक प्रयास या उत्साह ही प्रयत्न है। उस स्थिति को सम्पादित करने की इच्छा से उसके साधनों का अनुष्ठान करना ही

[39] 'स न प्रमाणापाराही न विपर्ययोपाराही। वसतुशून्यत्वऽपिशाब्दज्ञानामाहात्म्यनिबन्धनो व्यवहारो दृश्यते। यो सू 1/9 पर भाष्य।

[40] अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। यो सू 1/10

[41] यो सू 1/10 पर भाष्य

[42] अनुभूतविषयासप्रमोष. स्मृति ।। यो सू 1/11

[43] सर्वाश्चेता वृत्त्य सुाखदु खमोहात्मिका। आसा निरोधे सम्प्रज्ञातो वा समाधिर्मवत्यसम्प्रज्ञातो वेति।। यो सू. 1/11 पर भाष्य

[44] अभ्यामवराग्याभ्या तंनिराध ।। या सृ 1/12

[45] तत्र स्थितो यत्नाऽभ्यास ।। यो मृ 1/13

अभ्यास है।[46] यह अभ्यास दीर्घकाल तक निरन्तर सत्कार सहित अर्थात् तपस्या, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा से किया जाने पर दृढभूमि होता है।[47] अर्थात् व्युत्थान संस्कार द्वारा तुरन्त अभिभूत नहीं होता है।[48]

वैराग्य : वैराग्य दो प्रकार का होता हे 1 अपर वेराग्य और 2. पर वैराग्य ऐहिक तथा पारलौकिक विपयों से नि:स्पृह चित्त की वशीकारसंज्ञा (अपर) वैराग्य है।[49] स्त्तिया, अन्न पान और प्रभुता ये दृष्ट अथवा ऐहिक विषय हैं तथा स्वर्ग, वैदेह्य और प्रकृतिलयत्वप्राप्ति आनुश्रविक अथवा पारलौकिक विषय हैं। इन दोनों ही प्रकार के विषयों का सपर्क होने पर भी विषयां के दोषों का दर्शन करने वाले चित्त की विवेकज्ञान के बल से भोगाभावरूपिणी (अर्थात्) त्याग या ग्रहण की बुद्धि से शून्य वशीकारसंज्ञा अर्थात् उपेक्षा बुद्धि ही अपर वैराग्य है।[50] योग साधना के प्रारम्भ से लेकर विवेकख्याति पर्यन्त इसी वैराग्य की आवश्यकता और सम्भावना होती है। इसी के द्वारा सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है।

पर वैराग्य . पुरुषख्याति हो जाने पर पुरुप का साक्षात्कार हो चुकने के कारण चित्त की जो सत्वगुण के प्रति और सात्विकवृत्ति के प्रति भी वितृष्णा हो जाती है उसी को पर वैराग्य कहते हैं।[51] दृप्ट और वेदबोधित विषयों के दोषों को देखने वाला वितृष्णा साधक (विवेकख्याति काल में) पुरुप के दर्शन के अभ्यास से उस पुरुष तत्व की शुद्धि के ज्ञान से तृप्तचित्तवाला हो कर स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप वाले गुणों से भी विरक्त हो जाता है। इस प्रकार दो वैराग्य होते हैं- अपर और पर। इनमें से जो बाद वाला है वह ज्ञान का चरमकोटिक वैशद्यमात्त है। अर्थात् उसमें ज्ञेय कुछ नहीं रहता। जिसका उदय होने पर आत्मदर्शी योगी ऐसा मानता है कि प्रापतत्व प्रापत हो गया, नष्ट करने योग्य क्लेश नप्ट हो गये और वह शृंखलाबद्ध संसार चक्र टूट गया जिसके टूटे बिना जीव जन्म लेकर मरता है तथा मर कर जन्म लेता रहता है। ज्ञान की पराकाष्ठा ही पर वैराग्य है तथा कैवल्य, इसी का नान्तरीयक है।[52]

[46] यो सू 1/13 पर भाष्य

[47] स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारसवितो दृढभूमि। यो सू 1/14

[48] दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसज्ञा वैराग्यम्। या सू 1/15

[49]. व्युत्थानसस्कारेण द्रागित्येवानभिभूतविषय इत्यर्थ। यो सू 1/14 पर भाष्य

[50] यो सू 1/15 पर भाष्य

[51]. तत्पर पुरुषाख्यातेर्गुणवैतृष्णाय।। यो सू 1/16

[52]. यो सू 1/16 पर भाष्य

इस प्रकार अपर वैराग्य लौकिक और पारलौकिक विषयों के प्रति वितृष्णा के रूप वाला होता है।[53] अपर वैराग्य से सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है इसलिए अपर वैराग्य सम्प्रज्ञात समाधि को हेतु हुआ। किन्नु यह अपर वैराग्य असम्प्रज्ञात समाधि का हेतु नहीं बन सकती। यह तो हेतु हे ज्ञान का। पर वैराग्य जो कि इस ज्ञान के प्रति वितृष्णारूप है, ही असम्प्रज्ञात समाधि का साक्षात् हेतु है। इसीलिए इसे 'पर' या श्रेष्ठ कहा गया है।[54]

इनमें से सम्प्रज्ञात समाधि में समस्त राजस तथा तामस वृत्तियों का निरोध हो जाने के कारण केवल सात्विक वृत्ति का प्रकाश होता रहता है। इसीलिए इस समाधि में सात्विक वृत्ति के द्वारा ध्येय विषय का पूर्ण साक्षात्कार उदित होता है। उस साक्षात्कार के कारण ही यह समाधि (सम्यक् प्रकर्येण ज्ञात. साक्षात्कृत: समाधि: सम्प्रज्ञात:) कहलाती है। यह समाधि चार प्रकार के ध्येयों का अनुगम (साक्षात्कार) करने के कारण चार प्रकार की मानी जाती है।[55] वितर्करूप ध्येय अर्थात् स्थूल पा०चभौतिक ध्येय का अनुगम करने वाली सात्विक वृत्ति के उदित होने पर वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। इसी प्रकार सूक्ष्म प०च तन्मात्तादि विषयों का अनुगम होने पर विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती हे। आनन्द अर्थात् आनन्दात्मक इन्द्रियों का अनुगम होने पर आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है और अस्मिता का अनुगम होने पर अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। वितर्कादि को समझाते हुए भाष्यकार का कथन है कि आलम्बन में चित्त की स्थूल (रूप की) परिपूर्णता वितर्क[56] है, सूक्ष्म (रूप की परिपूर्णता) विचार[57] है, आह्लाद (रूप की परिपूर्णता) अस्मिता[58] है। इन में से प्रथम अर्थात् वितर्कानुगतसम्प्रज्ञात समाधि इन चारों से अनुगत होती है। इस समाधि में यद्यपि स्थूल आभोग (वितर्क) का प्राधान्य रहता है फिर भी विचार, आनन्द तथा अस्मिता के आभोग भी गौण रूप में बने रहते हैं। इसी प्रकार वितर्क से रहित तथा शेष तीनों से अनुगत विचारानुगतसम्प्रज्ञात समाधि है, आनन्दानुगत सम्प्रज्ञातसमाधि वितर्क तथा

[53]. प्रथम वैराग्य विषयविषय द्वितीय गुणविषयम् . भर्गात। रा मा वृ पृ 9

[54] तद्वरौय पर प्रकृष्ट . भवति। निरोधसमाधेरत्यन्तानुकूलत्वात्।'' रा मा वृ पृ 9

[55] वितर्कविचारानन्दाऽस्मितानुगमात्सम्प्रज्ञात। या मू 1/17

[56]. वितर्कश्चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोग। यो सू 1/17 पर भाष्य।

[57] सूक्ष्मो विचार. । वही।

[58] आनन्दोह्लाद । वही।

3 तस्य पर वैराग्यमुपाय। मालम्बनाह्यभ्यासस्तत्साधनायम न कलपत इति विराम प्रत्ययानिर्वस्तुक। आलम्बनीक्रियते। स चार्थशून्य। तदभ्यासपूर्व चित्त निरालम्बनम भाव प्राप्तमिव भवति। या सू 1/18 पर भाष्य

विचार से रहित तथा आनन्द एव अस्मिता से अनुगत होती है और अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाद्यि उपर्युक्त तीनों से रहित और केवल अस्मिता से अनुगत होती है। ये सभी समाधियॉ सालम्बन होती हैं।

परवैराग्य के अभ्यासपूर्वक तथा (निरोध के) सस्कार मात्तावशिष्ट (चित्तवाली) समाधि सम्प्रज्ञात समाधि मे भिन्न (असम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है। सभी वृत्तियों के अस्त हो जाने पर इसमें निरुद्ध हुए चित्त के निरोध के सस्कारमात्त शेष रह जाते है। इस समाधि का उपाय पर वैराग्य है। सालम्बन अभ्यास इसे सिद्ध करने में समर्थ नहीं होता इसलिए सकलविपयहीन पर वैराग्य ही इसमें आधार बनाया जाता है। उसके अभ्यासपूर्वक चित्त निरालम्बन ओर स्वभावशून्य सा हो जाता है।[3]

आलम्बनहीन होने कारण इस समाधि को निर्बीज समाधि कहते हैं। मास्ततीकर के अनुसार इसें निर्बीज कहने का कारण है ध्येयेविपयरूप का अभाव जबकि तत्त्ववैशारदी कार के अनुसार निर्बीजत्व का आधार है क्लेश कर्माशयरूपी बीजों से रहित होना। योगवार्तिककार की मान्यता है कि संसार के बीजभूत ज्ञानाज्ञान के सस्कार नामक संसारबीज का उन्मूलक होने के कारण यह निर्बीज कहा गया है।

इस समाधि के दो भेदे हैं- 1 उपायप्रत्ययय तथा 2. भवप्रत्यय। इनमें से भवप्रत्यये समाधि विदेहों और प्रकृति तीनों की होती है। भवप्रत्यय का अर्थ है जन्म से ही सिद्ध होने वाली या जन्मकारणक-"तत्तद् योनिपु जन्म एव प्रत्यय कारणं यस्य सः। इस समाधि की सिद्धि से देवलोक में जन्म मिलता है अत: योगवार्तिक कार कहते है- 'देवलोके भवप्रत्ययो जन्मकारणक इति। यह समाधि मोक्षदायक नही होती। इसीलिये यह योग नहीं है। यह योगाभ्यास मात्त है। विदेह ओर प्रकृतिलीन देवों की कोटियॉ हैं।

असम्प्रज्ञात उपायप्रत्यय अर्थात् उपायकारणक या उपायों से सिद्ध होने वाली समाधि योगियों की होती है। विवेकख्यमति के श्रद्धालु (इच्छुक) योगी को 'धाररा' रूप उत्साह (वीर्य) उत्पन्न होता है। धारणा रूप उत्साह जिस साधक को उत्पन्न हो चुका है

7 ससारबीज रूपज्ञानाज्ञान सस्काराख्यससारबीजोन्मूलक इति राऽर्थ।

8 भवप्रत्यया विदहप्रकृतिलयानाम्।। या सू 1/19

1 तत्त प्रथम श्चतुष्टयानुगत समाधि सवितर्क। द्वितीयो वितर्कविकल सविचार। तृतीयो विचारविकल· सानन्द.। चतुर्थस्तद्विकलोऽस्मितामात्त इति। एव एते सालम्बना समाधय.। यो सू 1/17 पर

2 विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्ण सस्कारशषोऽन्य।। यो सू 1/18 भाष्य

4 तदभ्यासपूर्व चित्त निरालम्बनममाप्राप्रतिमव भवतीत्येपु निर्बीज समाधि रसम्प्रज्ञातः। यो सू 1/18 पर भाष्य

5. ध्येय विषयरूपस्याभावाद् निरोध समाधिर्निर्बीज इत्युच्येत। मा0पृ0 17

6. निर्बीजः निरालम्बन अथवा बीज क्लेशकर्माशयास्ते निष्क्रान्ता यस्मात् स तथा। त0 वै0 पृ0 19

उसको 'ध्यान' (स्मृति) लगने लगता है और ध्यान सिद्ध हो जाने पर चित्त की चचलता हो कर चित्त समाहित हो जाता है। इस प्रकार धारणा, ध्यान और समाधि नामक (सम्प्रज्ञातयोग के) तीनों अन्तरंग उपायों से सम्प्रज्ञातसमाधि सिद्ध हो जाती है। समाधि लाभ करने वाले उस योगी को विवेकज्ञानरूप का बुद्धि का परमोत्कर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस बुद्धिवैशध अथवा प्रज्ञाविवेक से वह योगी हर पदार्थ को सम्यक् रूप से जान लेता है। उस प्रज्ञाविवेक के अभ्यास से और उसके पश्चात विवेकख्याति के विषय में भी वैराग्य उत्पन्न होने मे असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है। इसीलिये सूत्तकार योगियों की इस समाधि को श्रद्धावीर्यस्मृतिसमर्नधप्रज्ञापूर्वक कहते है।

उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त ईश्वर-प्रणिधान से भी असम्प्रज्ञात समाधि शीघ्रतम सम्पाद्य होता है। प्रणिधान अर्थात् भक्तिविशेष से प्रसन्न किया गया ईश्वर योगी को संकल्पमात्त से अनुगृहीत करता है। उस ईश्वर के सकल्पवमात्त से योगी को (असम्प्रज्ञात) समाधिलाभ तथा (असम्प्रज्ञात) समाधिफल शीघ्रतम सम्पाद्य हो जाते है। पातञ्जल योग दर्शन के अन्तर्गत ईश्वर संज्ञा उस पुरुषविशेष की हो जो क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशयो के परामर्श से रहित होता है।
क्लेश आदि को समझाते हुये भाव्यकार का कथन है कि अविधा अस्मिता, राग, द्धौष और अमिनिवेश क्लेश है। धर्म और अधर्मकर्म है। कर्म का फल विपाक है उस विपाक (फलभाग) से बनने वाले सस्कार वासना कहलाते है वहीं आशय है। ये चारों बुद्धि से रहते हुये पुरुष में वर्तमान कहे जाते है और पुरुष बुद्धिगत (सुख-दुःख रूप) फल का भोक्ता कहा जाता है। जैसे जय और पराजय वस्तुत: राजा के सैनिकों की होती हुई राजा की कही जाती है जो पुरुष विशेष इस (तथाकथित) भोग से भी अपरामृक अर्थात (सम्पर्करहित) है वही ईश्वर है। केवली और ईश्वर का अन्तर समझाते हुये भष्यकार आगे कहते है कि केवली प्राकृतिक (अव्यक्त से लेकर तन्मात्त पर्यन्त आठों प्रकृतियों में अभिमान होना प्राकृतिक बन्धन कहलाता है।) वैकारिक (शब्दादि विषयों में राग होना वैकारिक बन्धन है) और दक्षिणा (गृहस्थो का कर्म, दक्षिणा, दान, अध्ययन, इष्टापूर्तादि मे अनुराग बन्धन है) नामक त्रिविध बन्धनों को काटकर कैवल्य प्राप्त करता है। जबकि ईश्वर का इन बन्धनों से न कभी सम्बंध हुआ और न कभी होगा जैसे, मुक्त पुरुष की पूर्वकाल में बन्धन की स्थिति प्रकट होती है वैसी ईश्वर की नही। ईश्वर तो सदैव मुक्त और सदैव ईश्वर रहता है। शुद्ध सत्वात्मक उपाधि धारण करने से ईश्वर का यह सार्वकालिक उत्कर्ष सप्रमाण है, शास्त्त उसका प्रमाण है। ईश्वरोपाधि रूप शुद्ध सत्व मे वर्तमान इन- शास्त्त और ईश्वरोन्कर्ष का अनादि सम्बध है। ईश्वर का यह ऐश्वर्य बराबरी और अतिशय से रहित है। किसी भी अन्य ऐश्वर्य से यह ऐश्वर्य कम नही है क्योंकि जो ऐश्वर्य सर्वातिशायी हो सकता है, वही ईश्वर, का ऐश्वर्य है, इसलिए जिसमें ऐश्वर्य की

पराकाष्ठा होती है वही ईश्वर है। उस ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज अपनी पराकाष्ठा होती है वही ईश्वर है। उस ईश्वर मे सर्वज्ञता का बीज अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त होता हे वह काल से अर्वाछिन्न नही होता इसलिए वह पूर्ववर्ती गुरूओं का भी गुरू है। पहले वाले गुरूजन ऋषिगण इत्यादि तो समय से अवधिन्न होते थे। सीमा के अन्तर्गत बाधन के लिए जिसमें समय भी नहीं उपस्थित होता वह (कालातीत) ईश्वर उन पूर्वकालिक गुरूओं का भी गुरू है। वह जिस प्रकार इस स्मृष्टि से पहले उत्कृष्ट ऐश्वर्य के साथ विद्यमान था वैसे ही विगत सभी सृष्टियों के पहले भी विद्यमान समझा जाना चाहिए।

उस ईश्वर का अभिदायक शब्द ओड्कार है। प्रश्न उठता है कि क्या औडकार का वाच्य वाचकत्व सकेतजन्य हे अथवा दीप से प्रकाशित (पदार्थ) के समान (पहले से ही) स्थित (और संकेतधात्मे) है? इस वाच्य का वाचक से साथ सम्बंध स्थित (नित्य और संकेत द्योव्य) ही (होता) हो (सकेतजन्य नही) संकेत ईश्वर के स्थित अर्थ का ही प्रकाशन करता है। जैसे पिता और पुत्त का सम्बंध पहले से स्थित रहता है और संकेत के द्वारा प्रकाशित होता है कि यह इसका पिता है और यह उसका पुत्त है।

ईश्वर और प्रणव के वाच्यवाचक सम्बध के ज्ञाता योगी को उस ओड्म का जय और उसके वाच्यार्थ ईश्वर की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार ओंकट को जपते हुये तथा के अर्थ ईश्वर की भावना करते हुये योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है। इससे महर्षि पतञ्जलि की धारणा है कि ओऽम् के जप एव ईश्वरार्थ की भावना से न केवल ईश्वर की उपलब्धि और ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है अपितु आत्मा का भी साक्षात्कार हो जाता है। साथ ही व्याधि इत्यादि जो विध्न है उनका भी अभाव हो जाता है।

अब प्रसगत यह प्रश्न उठता है कि व्याधि इत्यादि कौन से विध्न है और कितने है जो चिन्त में विक्षेप उत्पन्न करने वाले है? स्वय महर्षि उन विध्नों का परिगठन करते हुये बताते है व्याधि स्त्यान, सशय, प्रभाद, आलस्य, अतिरति भ्रान्ति दर्शन आतब्धभूमिकत्व अनवस्थितव्य-चित्त के विक्षेप है। व्याधि उपलब्ध भूमिकत्व का अर्थ है शारीरिक पीडा, स्त्यान का अर्थ है अकर्मण्यता, संशय का अर्थ है संदेह या उमयकोटि ज्ञान प्रमाद का अर्थ है असावधानी अथवा उपेक्षा आलस्य का अर्थ है शरीर या मन के भारी होने के कारण योग साधन की ओर प्रवृन्ति न होना, अविरति का अर्थ है लोलुपता, बैराग्याभाव, भ्रान्तिदर्शन का अर्थ है विपर्यय ज्ञान अलब्ध भूमिकत्व का अर्थ है समाधि की भूमियों की अप्राप्ति तथा अनवस्थितत्व का अर्थ है समाधि की तन्तद् भूमियों का लाभ होने पर भी चिन्त का उस भूमि मे प्रतिष्ठित न होना। इन विक्षेपों के न उत्पन्न होने पर प्रमाण आदि चित्त बृत्तियों नही उत्पन्न होती फलस्वरूप चित्तवृत्तिनिरोध रूप योग की सिद्धि हो सकेगी विक्षिप्त चित्त प्राणी दु:ख

(आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदेविक) दोर्मनस्य (इच्छा के अपूर्ण होने से चित्त का चञ्चल होना) अङ्गाकम्प श्वास तथा प्रश्वास से आक्रान्त होता है। इसीलिए महर्षि पतञ्जलि इन पाचों को विक्षेपो का साथी कहते है।

उपर्युक्त विध्यों को दूर करने के लिए किसी एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए। एकता का अर्थ भोजराज तथा विज्ञान भिक्षु दोनो टीकाकारों ने कोई एक अभिमत तत्व एकस्मिन कस्मिश्चिदभिमते तच्वेडभ्यास (रा मा वृ पृ 19) किया है। आगे चित्त की प्रसन्नता (एकाग्रता) के उपाय बताते हुये आयार्य कहते है सुखी, दु खी, पुण्यात्मा तथा पापात्मा (जीवों) के विपय से चित्त प्रसन्न (निर्मल) होता है। उनके आशय को स्पट करते हुये भाष्यकार कहते है सुख भोग युक्त सभी प्राणियों के प्रति मैत्ती की भावना करनी चाहिए दु खी प्राणियों के प्रति करूणा, पुण्यात्याओं के प्रति प्रीति और पापियों के प्रति उपेक्षा (उदासीनता या तटस्थता) की भावना करनी चाहिए इसप्रकार भावना करने वाले को सात्विक धर्म उत्पन्न होता है और उससे चित्त प्रसन्न होता है। प्रसन्न चिन्त एकाग्र होकर स्थिति पद को प्राप्त होता है। प्राणों का रेचक पूरक तथा कुम्मक करने से भी चित्त प्रसन्न होता है रेचक आदि
व्याख्या व्याख्या प्रस्तुत शोध प्रबन्ध क अन्तिम अध्याय में की गयी अत, वही दृष्टव्य है।

(गन्ध आदि पॉचों) विषयों का साक्षात्कार करने वाली वृत्तियॉ भी उत्पन्न होने पर मन की स्थिरता की हेतु बनती है। नासिका के अग्रभाग में धारणा (चित्त को एकाग्र) करने वाले इस साधक को जो दिव्यगध का साक्षात्कार होता है वह गन्ध प्रवृत्ति है। जिह्वा के अग्रभाग में धरण करने से दिव्य रस का साक्षात्कार होता है। (वह रूप प्रवृत्ति है) तालु में धारण करने से दिव्य रूप का साक्षात्कार होता है। (वह रूप प्रवृत्ति है) जिह्वा के मध्य भाग में धारणा करने से दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार होता है (वह स्पर्श प्रवृत्ति है) जिह्वा की जड में धारणा करने से दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है (वह शब्द प्रवृत्ति ये इतनी प्रवृत्तियॉ उत्पन्न होकर चित्त को स्थिर करती है, सशय को दूर करती है और समाधि प्रज्ञा (विवेक ख्याति) में माध्यम बनती है। गन्धादि प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर उनके विपय में वशीकार सज्ञा वैराग्य उत्पन्न होने पर चित्त (उत्तरोत्तर भूमि वाले) उन-उन तत्वों को साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाता है और वैसा होने पर इस योगी को श्रद्धा, वीर्य, स्मृत्ति और समाधि निर्वाध रूप से सिद्ध हो जाएगे।

ज्योतिष्यती विशोका नाम की प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर मनकों स्थिर करने वाली होती है। यह प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है-

(1) बुद्धि सविद्रूपिणी और (2) अस्मितासविद्रूपिजी हृदयपुण्डरीक में ही (अप्टदल कमल) बुद्धि की सत्ता मानी गयी है इसलिए इस हृत कमल में धारण करने वाले

योगी को जो बुद्धि साक्षाकार रूपिणी प्रवृत्ति होती हे, वही पहले प्रकार की विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति है। प्रकाशवान ओर आकाश के समान व्यापक होता है। चमकीले पदार्थ में एकाग्र या स्थित होने के कारण साधक का चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त की इस निर्मलता के कारण बुद्धि साक्षात्कार रूपिणी प्रकप्ट वृत्ति बनती है। यह प्रवृत्ति सूर्य, चन्द्र ग्रह और मणियों को चमक के रूप में पीणत होती रहती है। अस्मिता तत्व में स्थित चित्त तरग शून्य महासागर के समान शान्त राजस और तामस तरगों से रहित (अपगतरजस्तमस्तरगम् त वे) अनन्त केवल अस्मिता रूप हो जाता है। उस अस्मिता तत्व को जानकर अस्मि मे हूँ इस प्रकार से सम्यक् साक्षात्कार करता है।

वीत राग चित्त को धारण का विपय बनाने वाला चित्त स्थिर होता हे। स्वप्न और सुषुति के ज्ञान को धारण का आलम्बन बनाने वाला चित्त एकाग्र हो जाता है। जो अमीप्ट हो उसके ध्यान से भी चित्त स्थिर होता हे। चित्त को स्थिर बनाने वाले उपर्युक्त उपायों को योग में परिकर्म कहा गया है परिकर्मित चित्त का वशीकार (एकाग्रता की सामर्थ्य) परमाणु पदार्थो से लेकर परम महत (पदार्थो) पर्यन्त होता है तात्पर्य यह कि योगी का परिकर्मित चित्त सूक्ष्मतम ओर स्थूलतम दोनों प्रकार के तत्वों में स्थिति प्राप्त करने की सामर्थ्य से सम्पन्न हो जात हे।
परिकर्म के अनन्तर से चित्त समाहित हो जाता हे।

परिकर्म के अनन्तर समापत्ति का विवेचन करते हुये महर्षि पतञ्जलि कहते हे श्रेष्ट मणि के समान सीप वृत्तियों वाले ग्रहीता ग्रहण इन्द्रियॉ और ग्राहण (विषयों) में स्थित (होने वाले) चित्त का उनके आकार को ग्रहण करलेना समापत्ति है। जैसे शुद्ध स्फरिट मणि भिन्न-भिन्न (निकटस्थ पदार्थाया) उपाधियों के कारण उनके आकारों से उपरम्त होकर (उर्ननिकटस्थ पदार्थो या) उन उपाधियों के आकार की ग्राहय स्वरूप के आकार का प्रतीत होता है। वैसे ही भूत सूक्ष्मरूप स्थूलालम्बनाकार होकर स्थूल रूप से आभासित होता है। ऐसे ही सभी (चेतनाचेतन ग्राहय) पदार्थो से उपरान्त चित्त भिन्न-भिन्न ग्राहय पदार्थाकार होकर भिन्न-भिन्न ग्राहय पदार्थो के रूप में भासित होता है। इसी प्रकार ग्रहणों अर्थात इन्द्रिय रूपी आलम्बन से उपरान्त चित्त इन्द्रियाकण होकर, इन्द्रिय के रूप का भासित होता है। इसी तरह ग्रहीता पुरूष अस्मिता रूपी आलम्बन से उपरम्त चित्त ग्रहीत पुरूषाकार होकर ग्रहीता पुरूप के स्वरूप के आकार का भासित होता है। इस प्रकार से निर्मल मणि के समान चित्त की ग्राहय भूतों में ग्रहण इन्द्रियों में ओर ग्रहीता पुरूप में जो तत्स्थतदञ्जनता अर्थात उनमें तदाकाराकारिता हे, वही समापत्ति कही जाती हे। यह समापत्ति चार प्रकार की होती है। उनमें से शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पा से मिली जुली हुई समापत्ति सवितर्का कही जाती हैं। शब्द, अर्थ और ज्ञान का परस्पर सकर ही इनका विकल्प है स्मृति की निवृत्ति हो जाने पर अपने (ज्ञानात्मक) रूप से शून्य जैसी, कवल अर्थ को ही प्रकाशित करने

वाली समापत्ति निर्वितर्का समापत्ति होती हे। जब शब्द सकेत आगम ओर अनुमान ज्ञानों के विकल्प की स्मृति की निवृत्ति हो जाने पर ग्राहय आलम्बन के स्वरूप से उपरम्त प्रज्ञा, अपने ज्ञानात्मक प्रज्ञा रूप को मानों छोडकर (ग्राहयामम्बनरूप) अर्थ के स्वरूप वाली अर्थात ग्राहयालम्बन रूपाकार को प्राप्त हुई सी बन जाती है, तब वह निर्वितर्का समापत्ति होती हे। उनमें मे अभिकरत हुये धर्मो वाले तथा देश, काल सविचारा, कही जाती है। वहॉ पर भी (सवितकी समापत्ति की भाति) एक बुद्धि से ही गृहीत होने वाले, वर्तमानकाल के धर्मो से युक्त, तथा आलम्बनीभूत भूतों के सूक्ष्मतत्व (अर्थात परमाणु, तन्मात्त, इन्द्रियॉ और अस्मिता) समाधि में उपारूद होते हे। और जो समापत्ति, सब प्रकार से तथा सब ओर से भूत, वर्तमान और भविष्यत्कालिक धर्मा से रहित किन्तु सभी धर्मा का आश्रय बनने (की योग्यता) वाले अर्थात सभी धर्मो के आधारभूत भूत सक्ष्मों मे होती हे वह निर्विचारा कही जाती हे।

ये सविचारा तथा निर्विचारा समापत्तियॉ सूक्ष्मविपयक होती हैं और उनकी यह सूक्षमविपयता प्रकृतितत्त्व पर्यन्त है। तात्पर्य यह हे कि तन्मात्ताओं से लेकर प्रकृति तक होने वाली सारी समापत्तियॉ सविचारा या निर्विचारा ही होगी क्योंकि ये समापत्तिया सूक्ष्म विषयों वाली है और सूक्ष्मविषयता प्रकृतितत्त्वपर्यन्त प्रसृत है।

ये चारों समापत्तियॉ ही सबीज समाधियॉ है। समापत्तियों के समय में होने वाली सम्प्रज्ञात समाधि की सालम्बन सबीज कही जाती है। आलम्बन के स्थूल रहने पर वितर्क सहित तथा वितर्करहित तथा आलम्बन के सूक्ष्म होने पर विचार सहित तथा विचार रहित समापत्ति होती हे। इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि भी चार प्रकार की हो गयी।

निर्विचार समापत्ति के निर्मल हो जाने पर (योगी को) आध्यात्मिक प्रसाद प्राप्त होता है। उस स्थिति में ऋतम्भरा प्रज्ञा उत्पन्न होती हे। यह प्रज्ञा अन्वर्थनामा है क्योंकि यह केवल सत्य का ही धारण करती है। ऋत सत्य बिमर्ति इति ऋतम्मरा ऋत+मृन्+खच्+ टाप्) आगम तथा अनुमान प्रमाण जन्य ज्ञान पदार्थो के सामान्य स्वरूप विषयक होता है किन्तु ऋतम्मरा नामक प्रज्ञा विशेषरूपी विषय वाली होने के कारण उन दोनों की प्रज्ञा से भिन्न विपय वाली है। उस ऋतम्मरा प्रज्ञा से उत्पन्न सस्कार अन्य सभी सस्कारों (अर्थात् व्युत्थान प्रकारक सस्कारो) को बाधित करने वाले होते हैं। व्युत्थान सस्कारो के दबन से उनसे उत्पन्न होने वाली प्रमाणविपर्ययादि वृत्तियॉ नही उत्पन्न होती। वृत्ति-निरोध होने पर समाधि उपस्थित रहती है। उस समाधि से समाधिजन्य ऋतम्मरा प्रज्ञा ओर उससे (समाधिज) प्रज्ञाजन्य सस्कार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार नया नया सस्कार समुदाय उत्पन्न होता हे। उससे फिर ऋतम्मरा प्रज्ञा और उससे (तज्जन्य) सस्था-होते रहते है। ये प्रज्ञाजन्य सस्कार क्लेशों के क्षीण करने वाले होने के कारण चित्त को उसके (भागात्मक वृत्ति रूप) कार्य से हटाते है चित्त की

(भोगात्मक वृत्तिरूप) कार्य कारिता विवेकख्याति के समय तक ही रहती है। बाद में ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न सस्कार का भी निरोध हो जाने से निर्बीज समाधि सिद्ध होती है। निरोधजन्य सस्कार चित्त के लयपर्यन्त चित्त के साथ रहते है और अनन्त में चित्त के साथ-साथ पकृति में लीन हा जाते हे। उस चित्त के विलीन हा जाने पर पुरुष अपने स्वाभाविक रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसलिये उस समय पुरुष शुद्ध एव मुक्त अर्थात् त्तिगुणातीत एव दु खव्ययदशहीन कहा जाता हे।

अभ्यास ओर वेराग्य नामक उपाया के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करते हुए योग की सिद्धि कवता वे साधक कर पाते ह जिनका चित्त पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण इस जनम म एकाग्र हे। आशय यह ह कि जिन्हें पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण अपर वैराग्य उदित हा गया हो वे साधक उस अपर वेराग्य को दृढ करते हुए धारणा ध्यान तथा समाधि का अभ्यास करते-करत याग को सिद्ध किर लेंगे किन्तु जिनको यह अपर वेराग्य उदित ही नही हुआ है, जो नितान्त चञ्चल चित्तवाला है उसे किस प्रकार योग की सिद्धि हो यह बताने के लिये महर्षि ने साधनापद की रचना की हे। अत इस पाद में अधिक सरत तथा प्रारम्भिक साधनमार्ग निर्दिष्ट किया गया हैं जिसे अपना कर मध्यम तथा अधम या मण्र कोटि के अधिकारी भी योग की सिद्धि कर सकते हे। मध्यमाधिकारियों के लिय महर्षि ने क्रियायोग की विधि प्रतिपादित की है जिसके अन्तर्गत वे यह बतात हैं कि क्रिया योग के अन्तर्गत परिगणित तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान से पहल सत्त्वशुद्धि हो जाती है, फिर अभ्यास ओर वैराग्य नामक उपायों से अगली सारी याग प्रक्रिया हो सकती हे। जो साधक इससे भी सफल नही हो सकते उनके लिये उन्होंने योग के यमनियमादि आठों अगों का विधान किया है। व मन्दाधिकारी आठों अगों का पालन करने पर ही शुद्धसत्त्व वाले हो कर अभ्यास और वेराग्य नामक उपायों स योग सिद्ध करने में सफल होते हैं। इन आठों अगों में से धारणा ध्यान तथा समाधि का अभ्यास तो सबीजसमाधि के लिये अन्तरग होने से सभा को अर्थात तीनों प्रकार क अधिकरियों का कारक होता है। तात्पर्य यह है कि उत्तम अधिकारी वेराग्य प्रति के लिय जन्मत सक्षम होते हैं, मध्यमाधिकारी क्रियायोग नामक तीनों नियमों का पालन कर के वेराग्य प्राप्ति मे सफल होकर योग-सिद्ध का लाभ करते हे जबकि मन्धाधिकारी यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहारों का पालन करके वैराग्य-प्राप्ति ओर याग सिद्धि में सफल होते हैं।

तपस्या, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्राणिधान को महर्षि ने क्रियायोग कहा है। चूँकि इनके करने से योग सिद्ध होती हे। इसलिये इन्हें क्रियायोग कहा गया हे। अनादिकर्म और क्लेश की वासनाओं से भरी हुई तथा विपयजाल के उपस्थित करने वाली रजस्तमोमयी अशुद्धि बिना तपस्या के छिन्न भिन्न नही होती है इसलियेतपस्या का ग्रहण किया गया है। ओङ्कार इत्यादि पवित्त मन्त्तों का जप या मोक्षपरक शास्त्तों

का अध्ययन करना स्वाध्याय है। सभी क्रियाओं को परम गुरू ईश्वर में अर्पित करना या उनकर्मो के फलों का सन्यास ईश्वर प्रणिधान है। भावित। इस क्रियायोग के द्वारा समाधि भावित होती है तथा (अविद्याऽस्मिता रागदेपाभि निवेश नामक) क्लेश हल्के होते हैं।

साधनपाद

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष ओर अभिनिवेश में पॉच क्लेश होते हें।[1] प्रसुप्त, तनु विछिन्न और उदार (इन चारो अवस्थाओं में रहने वाले 'अस्मिता' इत्यादि चारो) परवर्ती क्लेशों की प्रसवभूमि अविद्या हे।[2] अनित्य, अपवित्र दु खमय और अनात्म पदार्थो में (क्रमश) नित्य, पवित्र, सुखमय ओर आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है।[3] दृकशक्ति (पुरूष) और दर्शनशक्ति (वृद्धि) की प्रतीयमान एकात्मता अस्मिता है।[1] सुख का अनुवर्ती (क्लेश) राग हे अर्थात जो मनोवृत्ति दु ख के आधार पर रहती हे उसे राग कहते है।[2] दु ख का अनुवर्ती (क्लेश) द्वेप हे। अर्थात जो मनोवृत्ति दु ख के आधार पर रहती है उसे द्वेप कहते हे।[3] जा (पहले मृत्यु के अनुभवों से) स्वभावत चला आ रहा हे एव जो विवेकशील पुरूपों में भी विद्यमान देखा जाता है, वह अभिनिवेश अर्थात जीवन के प्रतिममता हे।[4] उन सूक्ष्म सस्कारों को प्रतिप्रसव अर्थात प्रतिलोम-परिणाम के द्वारा (अपनी कारणावस्था में विलान करने के साधन द्वारा) नाश करना पडता है।[5] अर्थात वे सूक्ष्म क्लेश चित्त क लय के द्वारा निवर्तनीय होते है। उन (क्लेशों) की वृत्तियॉ (क्रियायोग से हल्को तथा) विवेकख्याति के द्वारा नष्ट की जाने योग्य होती है।[6] क्लेश मूताक कर्माशय, दृप्ट जन्म वेदनीय एव अदृप्टजन्म वेदनीय होते हैं।[7] अर्थात ये सब पूर्वोक्त क्लाप ही कर्म सस्कारों के समुदाय की जड हे वर्तमान या भविष्य मे हाने वाल जीवन मे वे फल प्रसव करते हे।

1 अविद्याऽस्मिताराग द्वेपार्भिनिवेशा पञ्च क्लेशा यो मृ 2/3
2 अविद्या क्षेत्रमुत्तरेपा प्रमुप्तनु विच्छिन्नादाराणाम् या सू 2/4
3 अनित्याऽशु चिदु खानात्मसु नित्य शुचि सुखाऽऽत्मन ख्यातिर विद्या 2/5
1 दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। यो सू 2/6
2 सुखानुशयी राग या सू 2/7
3 दु खानुशयी द्वेप या सू 2/8
4 स्वरसवाही विदुपोऽपि तथा रूढोऽभिनिवश। या सू 2/9
5 ते प्रति प्रसवध्या सूक्ष्मा। यो सू 2/10
6 ध्यानहेयास्तद्वत्तय। यो सू 2/11
7 क्लेशमूल कर्माशया दृष्टादृप्टजन्मवेदनीय या सू 2/12
8 सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा । यो सू 2/13
9 ते हलादपरितापफला पुण्यापुण्य हेतुत्वात्। यो सू 2/14
1 परिणामतापसस्कारदुखे गुणवृत्य विरोधाच्च दु खमेव सर्व विवेकिन यो सू 2/15

(क्लेशरूपरी) मूल के रहने पर जन्म आयु और भोगरूपी कर्माशय क फल (प्राप्त) होत है।[8] पुण्य और पाप (रूपी कर्माशय) स हे।[9] परिणाम दु ख, ताप दु ख और सस्कार दु खों के कारण एव गुणों की वृत्तियों के अविरोध के कारण विवेकी के लिए (जन्मायुर्भोग रूप) सभी फल दु ख यप ही हे अर्थात सत्व, रज और तम में परस्पर विरोध के कारण विवेकी पुरूप के लिए सब दु ख रूप ही है।[1] भविष्यत्कालिक दु ख ही ध्येय हे अर्थात जोस दु ख अभी तक नहीं आया उसका त्याग करना चाहिए।[2] भाष्यकार कहते हे कि जो बीता हुआ दु ख भोगा जा चुका है, इसलिए वह ध्येकोटि में नहीं आता। वर्तमान दु ख अपने इस क्षण में भोगा ही जा रहा है, इसलिए वह दूसरे क्षण में ध्य नहीं बन सकता। इसीलिए जो दु ख अभी तक नहीं आया हे, (भविष्यत्कालिक हे) वही नेत्र गोलक सदृशयोगी को कष्ट देता हे, अन्य अनुभविताओं को नही। वही दु ख हेयता को प्राप्त होता हे (अर्थात त्याज्य होसता है।) दृष्टा और दृश्य का सयोग ध्येय का हेतु है[5] अर्थात यह दु ख जो ध्ये है अर्थात जिसका त्याग करना होगा, उसका कारण हे दृष्टा ओर दृश्य का सयोग। प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव हे, भूत और इन्द्रिया जिसका (प्रगट) स्वरूप है, (पुरूष) भोग और मुक्ति केलिए ही जिसका प्रयोजन हे वह दृश्य हे।[3] विशेष (भूतेन्द्रिय) अविशेप (तन्मात्रा, अस्मिता), केवल चिह्नमात्र (महत् और चिन्हशून्य (प्रकृति) ये चार (सत्वादि) गुणों की अवस्था हे।[4]

दृष्टा केवल चेतन्य मात्र हे यद्यपि वह स्वय पवित्र स्वरूप है तो भी वह बुद्धि के भीतर स देखा करता हे। उसके लिए ही दृश्य का रूप होता हे अर्थात (उस) दृश्य अर्थात प्रकृति का स्वरूप (विभिन्न रूपों में परिणाम) उस (दृष्टा चिन्मय पुरूष) के ही (भोग तथा मुक्ति) के लिए हे।[6] जिन्होंने इस परम पद को प्राप्त कर लिया है, उनके प्रकृति का नाश हो जाने पर भी प्रकृति नष्ट नहीं होती क्योंकि वह दूसरों के लिए साधारण के लिए सयाग हाता हे।[2] उस सयोग का कारण है अविद्या अर्थात अज्ञान हैं।[3] उस (अविद्या) के मिट जान से सयोग का नाश हो जाना (हान) है और वही पुरूष का (केवलय) हे।[4] (अबाधित मिथ्या ज्ञान शून्य विवेकख्याति (ही) हान उपाय है। अर्थात निरन्तर विवेक का अभ्यास ही अज्ञानानाश का उपाय है।[5] उस

1 हेय दु खमनागतम् यो सू 2/16
2 दृष्टृदृश्यो सयागो ध्य हेतु । 2/17
3 प्रकाश क्रिया स्थितिशील भूतन्द्रियात्मक भोगापवर्गार्थ दृश्यम। यो सू 2/18
4 विशेपविशेपलिगमात्रा लिगानि गुणपर्वाणि । यो सू 2/19
5 दृष्टादृशिमात्र शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्य । यो सू 2/20
6 तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा। यो सू 2/21

(विवेकख्याति योगी) की उत्कृष्ट स्तर वाली प्रज्ञा सात प्रकार की होती है।[6] योग के अगो का अनुष्ठान करने से, अशुद्धि का क्षय हा जाने पर विवेक ख्याति के उदय तक ज्ञान का प्रकाश होता जाता है।[7]

महर्षि पतञ्जलि के अनुसा अशुद्ध क्षय क लिए आठ उपाय है। वे हे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, ओर समाधि।[8]

यम पॉच प्रकार हे। अहिसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य ओर अपरिग्रह।[8] जाति देश काल ओर आचार्य परम्परा से सीमित न होत हुए (ये) सार्थभौम (यम) महाव्रत (कह जाते) हैं।[9] नियम के अप्तर्गत शौच, सन्तोप, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राविधान आते हैं।[10] इन यमों ओर नियमों के वितर्का से बाधि होने पर (वितर्को के) विरोधी (विचारों) की भावना करनी चाहिए।[11] वितर्क अर्थात योग के विरोधी हे - हिसा आदि भाव (वे तीन प्रकार के होते ह। स्वय किये हुए दूसरे से करवाये हुए और अनुमोदित किए हुए, इनके कारण हे- लोभ, क्रोध ओर मोह, इनमें भी कोई थोडे परिमाण का, कोई मध्यम परिणाम का ओर कोई बहुत परिमाण का होता है, इनके अज्ञान और क्लेश रूप अनन्त फल हे। इस प्रकार (विचार करना ही) प्रतिपक्ष की भावना है।[1] अहिसा के प्रतिप्ठित हो जान पर उस यागी के पास (प्राणियों का पारस्परिक) वेरभाव छूट जाता है।[2]

सत्य के प्रतिष्ठित (वितर्क शून्यतया स्थिर) हो जाने पर (उस साधक में) (शुभाशुभ) क्रियाओं ओर उनके फलों की आश्रयता आ जाती है। अर्थात अब सत्यश्रम

1 कृतार्थ प्रतिनष्टभप्यनप्ट तदन्यसा धारणत्वात या सू 2/22
2 स्वस्वाभिशक्त्यो स्वरूपापलब्धि हतु सयोग। या सू 2/23
3 तस्य हतुरविद्या। यो सू 2/24
4 तदभावात् सयोगाभावा हान, तद हय कवल्यम्। या सू 2/25
5 विवेकख्यातिर विक्लवा हानोपाय या सू 26
6 तस्य सप्तधा प्रान्त भूमि। प्रज्ञा।। 2/26
7 योगागानुष्ठाना दशुद्धिक्षय ज्ञानदीप्तिराविवकख्यात ।। 2/28
8 यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाद्ययाऽप्टावगानि या सू 2/29
9 अहिसासत्यास्तय ब्रह्मचया परिग्रहा यमा ।। योग सूत्र 2/30
10 जाति दश काल समयानवच्छिन्ना सार्वभामामहाव्रतम् या सू 2/31
11 शौच सन्ताप तप स्वाध्यायश्वर प्रणिधानानि नियम ।। या सू 2/32

1 वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम्। या सू 2/33
2 वितक हिसादय कृतकारिपनुमादिता लाभ क्राध माह पूवका मृदु मध्याधिमात्रा दु खाज्ञानानन्तफला - इति प्रतिपक्ष भावनम् या सू 2/34
3 अहिसाप्रतिष्ठाया तत्सनिधो वैरात्याग। या सू 2/35

हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता हे, तब कोई कर्म बिना किए ही अपने लिए या दूसरे केलिए कर्म का फल प्राप्त करने की शक्ति योगी में आ जाती है।[3] अस्तेय में प्रतिष्ठित हो जाने पर (उस योगी के सामने) सब प्रकार के रत्न प्रकट हो जाते हैं।[1] ब्रह्मचर्य की दृढ स्थित हो जाने पर वीर्य लाभ होता हे।[5] अपरिग्रह के स्थिर होने पर (भूत वर्तमान ओर भविष्य) जन्मों तथा उनके प्रकार का सभ्यक ज्ञान होता है।[6]

शौच के प्रतिष्ठित हो जाने पर अपने शरीर के प्रति घृणा का उद्रेक होता है, दूसरों के साथ सग करने की प्रवृत्ति नहीं रहती है।[7] (इसका विस्तार से वर्णन इस शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय के षटकर्म के अन्तर्गत किया गया है।) बुद्धि, शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकागता, इन्द्रियों पर विजय ओर आत्म साक्षात्कार की योग्यता आ जाती है।[8]

सन्तोष के (स्थिर होने) से निरतिशय सुख की प्राप्ति होती है[1] अर्थात परमेश्वर सुख प्राप्त होता है। तपस्या से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है, तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती हे अर्थात उनमें अनेक प्रकार की शक्तियॉ आ जाती है।[2] मन्त्र के पुन पुन उच्चारण या अभ्यास से इष्टदेवता के दर्शन होते है।[3] ईश्वर में समस्त अर्पण करने से समाधि लाभ हाता हे।[4]

जो (शारीरिक स्थिति) स्थायी ओर सुखद हो, वह आसन है अर्थात स्थिर भाव से सुखपूर्वक बैठना।' आसन के स्थिर होने का तात्पर्य हे- शरीर के अस्तित्व का बिल्कुल भान तक न होना। (इसका विस्तार से वर्णन इस शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय के आसन प्रकरण जो स्वाभाविक प्रयत्न हे, उसे शिथिल कर देने से ओर अनन्त के चिन्तन से आसन स्थिर ओर सुख कर होता है।[6] तब आसन सिद्धि होने पर शीतोष्णािदि द्वन्द्वों से बाधा नहीं होती।[7]

उस आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास दोनों की गति को सयत करना प्राणायात कहलाता है।[8] वाह्य व1त्ति, आभ्यन्तर वृत्ति ओर स्तम्भ व1त्ति के भेद से यह प्राणायाम तीन प्रकार का है देशकाल और सख्या के द्वारा नियमित तथा दीर्घ या सूक्ष्म होने के कारण उनमें फिर अनेक प्रकार के भेद है। (प्राणायाम का विस्तृत वर्णन इस शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय के प्राणायाम प्रकरण में किया गया है अत वही दृश्य हे।[9])

4 सत्यप्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रमयत्वम्।। यो सू 2/36

5 अस्तेयप्रतिष्ठाया सर्वरत्नो पस्थानम्।। यो सू 2/37

1 सत्त्वशुद्धि सौमनस्यैकाग्रयेन्द्रिय जयात्म दर्शन योगत्वानिच।। यो सू 2/41

2 सतोषदनुत्तमसुखलाभ । यो सू 2/42

3 कार्योन्द्रसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपस5। यो सू 2/43

4 स्वाध्याय दिष्ट देवता सम्प्रयोग । यो सू 2/44

चौथे प्रकार का प्राणायाम वह है, जिसमें प्राणायाम के समय वाह्य या आभ्यान्तर किसी विषय का चिन्तन किया जाता है।[1] उस (प्राणायाम के अभ्यास) से (चित्त के) प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है।[2] उसी से धारणा में मन की योग्यता भी होती है।[3]

प्रत्याहार

अपने (अर्थात इन्द्रियों के) विषयों के साथ सन्निकर्ष न होने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप का अनुकरण सा कर लेना 'प्रत्याहार' है।[1] इससिलए प्रत्याहार के सिद्ध होने पर चित्त के समान ही इन्द्रिया भी निरूद्ध हो जाती हे इसलिए प्राणायाम तीनों प्राणायाम तथा त्रिविध सयम (धारणा, ध्यान तथा तीनों को महर्षि पतञ्जलि ने सम्मिलित रूप से 'सयम'[1] कहा है) के बीच में प्रत्याहार की साधना बडी महत्वपूर्ण एव अनिवार्य है। प्राणायाम के कारण चित्त धारणादि सयम के योग्य अर्थात चञ्चलता से रहित हो जाता है। उस समय यदि इन्द्रियॉ विषयों की ओर उन्मुख होना आरम्भ करे तो विषयों की ओर उनकी जोरदार एकागता होगी ओर महान अनर्थ हो जाएगा। इसलिए उस समय इन्द्रियों को विषया की ओर स तुरन्त हटाकर अन्तर्मुखी करना चाहिए। इन्द्रियों को चित्तकारानुकारी बनाना ही उनका अन्तर्मुखीकरण है। इसी को प्रत्याहार कहा जाता है। इससे धारणा निष्पन्न होती हे, ध्यान तथा समाधि भी क्रमश सुसम्पन्न होते हैं। इसीलिए प्रत्याहार को भी एक प्रमुख योगाग के रूप में गिना गया है। उस धारणा-ध्यान काल में प्रत्याहृत चक्षुरादि इन्द्रियॉ चित्त का अनुकरण पूर्ण रूप से करती हुई (चित्त के द्वारा) ध्यायमान तत्वाकारकारित चित्त अर्थात बुद्धिसत्तव के समानाकार वाली होती है।[3] उस प्रत्याहार से इन्द्रियों की प्रबल वशवर्तिता होती है।[4] अर्थात उनके ऊपर उत्कृष्ट अधिकार की प्राप्ति हो जाती है।

धारणा - योग के साधनभूत जो यमनियमदि आठ साधन महर्षि ने गिनाये उनमें से प्रथम पॉच का विवेचन तो व साधनवाद में करते है किन्तु धारणा, ध्यान और समाधि नामक अन्तिम तीन का विवेचन विभूतिपाद में करते ह। प्रश्न उठता है कि ये तीनों

5 समाधि सिद्धिरीश्वर प्राणिघानात्। यो मू 2/45
6 स्थिर सुखभासनम्। या सृ 2/46
7 प्रयत्न शोथिल्यानन्तसनापत्ति भ्याम्। या सू 2/47
8 ततो द्वन्द्वानभिघात । या सृ 2/48 (नोट फुटनाट न0 9 अगले पृष्ठ पर दखे)
1 तस्मिनसति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छद प्राणायाम या सृ 2/49
2 वाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्ति देशकाला सख्याभि परिदृष्टा दीर्घसूक्ष्म यो सू 2/50
3 वाह्याभ्यान्तरविष्याक्षेपी चतुर्थ । यो सू 2/51
4 तत क्षीयत प्रकाशावरणम्। यो सू 2/52
5 धारणासुच योग्यता मनस । यो सू 2/53

योगसाधक होने के बावजूद साधनपाद में विवेचित न किये जाकर विभूतिपाद में क्यों विवेचित किये गये ? इस बात का स्पष्टीकरण करते हुए सूत्रकार स्वय कहते है कि पहले वाले पॉचो अग सम्प्रज्ञात समाधि के बहिरगमात्र हे जब कि बाद वाले तीनों अग सम्प्रज्ञात समाधि के अन्तरग हैं। अन्तरगत्व का अर्थ है-

निकटतम होना या साक्षात सम्बद्ध होना और इस प्रकार अङ्गी की सिद्धि में अपरिहार्य होना। प्रस्तुत प्रसङ्ग में यमादि पॉच साधन बहिरग कहे जाते है क्योंकि इनका इस जन्म में अभ्यास किय बिना ही केवल धारणा, ध्यान और समाधि के ही अभ्यास से बहुत मे योगियों को सम्प्रज्ञात योग की सिद्धि हो जाती है। जैसे जडभरतादि को किन्तु धारणा, ध्यान ओर समाधि के अभ्यास के बिना सम्प्रज्ञात की सिद्धि कभी भी किसी योगी को नहीं सुनी गयी। इसलिए यमादि पॉचों साधन सम्प्रज्ञात समाधि के बहिरग कहे गये हे तथा धारणा, ध्यान और समाधि को अन्तरङ्ग कहा गया है।

विभूतिपाद

चित्त की सात्विक वृत्ति को (किसी बाहरी या भीतरी) प्रदेश में लगाना धारणा[1] है। सूत्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भाष्यकार कथन हे- नाभिचक्र में, हृदयकमल में, शीर्षप्रकाश में, नासिका के अग्रभाग में, जिह्वा के अग्रभाग में - इस प्रकार के आन्तरिक देशों मं, या फिर बाहरी वस्तुओं (दूवमूर्ति आदि) में चित्त को वृत्तिमात्र से (अर्थात सात्विक वृत्ति से) बॉधना (लगाना) धारणा है।[2] चित्त को किसी देश में बाधने का आशय हे चित्त का उस देश के अतिरिक्त अन्य सभी स्थलों से हटाकर उसी देश में स्थिर करना या स्थापित करना।[3] चित्त का देशविशेष में स्थापित करना ही धारणा नामक योगाङ्ग है।

ध्यान – उस (विषय) में ज्ञान की एक तानता ही 'ध्यान' है।[4] अर्थात वह वास्तुविषयक ज्ञान निरन्तर एक रूप से प्रवाहित होते रहने पर उसे ध्यान कहते है। वही ध्यान जब समस्त बाहरी उपाधियों को छोडकर अर्थ मात्र को ही प्रकाशित करता है, तब उसे समाधि कहते हे।[5] यह समाधि शब्द परिभाषिक है यह ध्येय विषय में

1 स्वविषयासप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवन्द्रियाणा प्रत्याहार ।। यो सू 2/54

2 त्रयमेकत्र सयम ।। यो सू 3/4

3 योगसूत्रभाष्यसिद्धि पृ 330

4 तत परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।। यो सू 2/55

5 क तदतदधारणा ध्यानसमाधि त्रयमन्तरग सप्रज्ञातस्य समाध पूर्वेभ्यो यमादिम्य पञ्चभ्य साधनेम्य इति।। यो सू 3/7 पर भाष्य

ख यमादिम्य पञ्चभ्य साधनम्य इति। यो सू 3/7 पर भाष्य

चित्त की स्थिरता की अधिकाधिक सीमा का द्योतक होता है। समाधि का सामान्य लक्षण तो चित्त की वृत्तियों का निरोध है। यद्यपि वृत्ति निरोध थोडा बहुत तो चित्त की क्षिप्त मूढ और विक्षिप्त अवस्थाओं में भी होता हे किन्तु वह चित्त वृत्ति निरोध अर्थात समाधियोग साधन के लिए बिल्कुल अनुपयोगी हे।

इन तीनों (धारणा,ध्यान समाधि) का जब एक साथ अर्थात एक ही वस्तु के सम्बध में अभ्यास किया जाता है तब उसे सयम कहते हे।[1] इनको जीत लेने से ज्ञान का प्रकाश होता है।[2] उस सयम का प्रयोग धीरे-धीरे अर्थात सोपान क्रम से करना चाहिए।[3] पहलेकहे गये साधनों की अपेक्षा ये तीनों साधन अधिक अन्तरग है।[4] पर वे (धारणा आदि तीनो) भी निर्वीज समाधि की तुलना में बहिरग साधन है।[5] जब व्युत्थान-सस्कार अर्थात मन की चचलता हो जाता है, उस समय चित्त निरोध नामक सस्कार के अनुगत होता हे, तथा उस निराध परिणाम कहते हे।[6] अभ्यास के द्वारा इसका प्रवाह स्थिर होता है।[7] सव प्रकार के विपयों का चिन्तन करने की वृत्ति का क्षय हो जाना और किसी एक ही ध्येय विपय का चिन्तन करने वाली एकाग्रता शक्ति का उदय हो जाना ओर किसी एक ही ध्येय विषय का चिन्तन करने वाली एकाग्रता शक्ति का उदय हो जाना- यह चित्त का समाधि परिणाम है।[8] जब मन शान्त ओर उदित अर्थात अतीत ओर वर्तमान दोनो अवस्थाओं में ही तुल्य प्रत्यय हो जाता है अर्थात दोनो परिणाम कहते हे।[9] इसी से भूतों में और इन्द्रियों में होने वाले धर्म-परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम - इन तीनों की व्याख्या की जा चुकी है।[10]

---

1 देशबन्धर्नाश्चत्तस्य धारणा।। 3/1 यो सृ
2 यो सू 3/1 पर भाष्य
3 "देशे नाभिचक्रनासादो चित्तस्य बन्ध विपयान्तरपरिहारण यत्स्थिरीकरण सा चित्तस्य धारणोच्यते।" रा मा वृ पृ 56
4 तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम। या सृ 3/2
5 तदेवार्थमात्रनिर्भास स्परूपशून्यमिव समाधि। यो सू 3/3
1 त्रयमेकत्र सयम। यो सू 3/4
2 तज्जयात् प्रज्ञालोक। या सू 3/5
3 तस्य भूमिषु विनियाग यो सू 3/6
4 त्रयमन्तरङ्गपूर्वेभ्य। यो सू 3/7
5 तदापि बहिरग निर्बीजस्य यो सृ 3/8
6 व्युत्थान निरोध सस्कारयारभिभवप्रादुर्भावो निरोधक्षणचित्तान्वया निरोध परिणाम। यो सृ 3/9
7 तस्य प्रशान्त वाहिता सस्कारात्। यो सृ 3/10
8 सवार्थ तेकाग्रतयो क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणाम या सू 3/11
9 शान्तादितो तुल्यप्रत्ययो चित्तस्येकाग्रतापरिणाम या सृ 3/12

शान्त (अतीत) उदित (वर्तमान) और अव्यपदश्य (अनागत) धर्मो में अनुगत रहने वाला (पदार्थ) धर्मी ह।[1] भिन्न-भिन्न परिणाम हाने का कारण है, क्रम की भिन्नता (पूर्वापर पार्थक्य)।[2] उपर्युक्त तीन का ज्ञान उत्पन्न होता हे।[3] शब्द अर्थ और ज्ञानों के आन्योऽयाध्यास के कारण सकीर्णता रहती ह (जबकि तीनो अलग-अलग हे) उनक अलगाव में सयम करन से (योगी को) सभी जीवों के शब्दों का ज्ञान हो जाता है।[4] सस्कारों (में सयम करने) के (फलस्वरूप प्राप्त) साक्षात्कार से पूर्व जन्मों का ज्ञान होसता है।[5] दूसरो के चित्त पर सयम करने स दूसरों के चित्त का (सविशेप) ज्ञान होता है।[6] किन्तु उस चित्त का आलम्बन क्या हे, यह वे नहीं जान सकते, क्योंकि यह उनके सयम विपय नहीं है।[7] शरीर के रूप में सयम कर लेने से जब उस रूप को अनुभव करने की शक्ति रोक ली जाती हे, तब ऑख की प्रकाश-शक्ति के साथ उसका सयोग न रहने के कारण योगी अन्तर्धान हो जाते हे।[8] कर्म सोपक्रम और निरूपक्रम होते है। उनमें (किये गये) सयम से मृत्यु का ज्ञान होता है। आरिप्टो से भी (मृत्यु का ज्ञान) होता है।[9] मेत्री इत्यादि में (किये गये सयम से मेत्री आदि सम्बधी) बल उत्पन्न होते हे।[10] हाथी आदि प्राणियों के बल में सयम का प्रयोग करने से योगी के शरीर में उन उन प्राण्यिों के सदृश बल आ जाता है।[11] महाज्योति में सयम करने से सूक्ष्म, व्यवधानयुक्त और दूरवर्ती वस्तुओं को ज्ञान हो जाता है।[12]

सूर्य में सयम करने से सम्पूर्ण जगत का ज्ञान हो जाता है।[1] चन्द्रमा में सयम करने से तारा समूह का ज्ञान हो जाता हे।[2] ध्रुवतार में सयम करने स ताराओं की गति का ज्ञान हो जाता है।[3] नाभिचक्र में सयम करने से शरीर की बनावट का ज्ञान हो जाता है।[4] कण्ठकूप में सयम करने स भूख और प्यास की निवृत्ति हो जाती ह।[5]

---

10 एतन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याता। यो सू 3/13
1 शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी। या सू 3/14
2 क्रमान्यत्व परिणामान्यत्वे हतु। यो सू 3/15
3 परिणाम त्रयसयमादतीतानागत ज्ञानम्। या सू 3/16
4 शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासार सकरस्तत्प्रविभाग सयमात्सर्व भूतरूपज्ञानम। यो सू 3/17
5 सस्कार साक्षात्करणात्पूर्ण जाति ज्ञानम्। या सू 3/18
6 प्रत्ययस्य पर चित्त ज्ञानम्। या सू 3/19
7 न च तत् मालम्बन तस्या विपयी भूतत्वात्। या सू 3/20
8 कायरूप सयमात तदग्राहयशक्तिस्तमी चक्षुष्प्रकाशा सम्प्रयोगऽतर्द्धानम्। यो सू 3/21
9 सोपक्रम निरूपक्रमञ्च कर्म, तत्सयमादपरान्त ज्ञान मरिष्टेभ्या वा। यो सू 3/22
10 मैत्र्यादिपु बलानि। यो सू 3/23
11 बलपु हस्विलादीनि। या सू 3/24
12 प्रवृत्यालाकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्ट ज्ञानम्। या सू 3/25

कर्म नाडी में सयम करन स शरीर को स्थिरता होती है।[6] मस्तक के ऊर्ध्वभाग से निकलने वाली ज्योति में सयम करन स सिद्धपुरूषों क दर्शन होते हैं।[7] अथवा प्रतिभ ज्ञान उत्पन्न होने स समरत ज्ञान प्राप्त हो जाता है।[8] हृदय में सयम करन से मनोविषयक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।[9]

पुरूष और सत्व (बुद्धि) अत्यन्त पृथक है- उनके विवेक के अभाव से ही भोग होता है। वह भोग पदार्थ हे अर्थात पुरूष के लिए है। सत्व (बुद्धि) की एक दूसरी अवस्था का नाम हे स्वार्थ, उसमें सयम करने स पुरूष का ज्ञान होयता है।[10] उससे प्रतिभ ज्ञान और (आलौकिक) श्रवण, स्पर्श, दश्रन, स्वाद एव वार्ता (घ्राण ये छह सिद्धिया प्रकट होती है।[11] ये (छहो सिद्धिया) समाधि में उपसर्ग (विघ्न) है, पर व्युत्थान (ससार-अवस्था) में सिद्धि स्वरूप हे।[12] जब बधन का कारण शिथिल हो सजाता है ओर योगी चित्त के प्रचार स्थानों को (अर्थात शरीस्थ नाडी समूह को) जान लेते हे, तब वे दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकते है।[13]

उदान नामक स्नायविक शक्ति प्रवाह पर जब प्राप्त कर लेने से योगी के शरीर से पानी या कीचड का सयोग नहीं होता, व काटो पर चल सकते है ओर इच्छा मृत्यु होते हें।[1] समान स्नायाविक शक्ति प्रवाह को जीत लेने से (उनका शरीर) दीप्तिमान हो जाता है।[2] कान ओर आकाश का जो परस्पर सम्बध है, उसमें सयम करने से दिव्य कर्ण प्राप्त होता हे।[3] शरीर ओर आकाश के सम्बध में चित्तसयम करने से और (रूइआदि) हल्की वस्तु स सयम करने से योगी आकाश में गमन कर सकते हैं।[4] शरीर के बाहर मन की जो यथार्थ वृत्ति या धारणा है, उसका नाम है महाविदेहा, उसमें सयम का प्रयोग करने से, प्रकाश का जो आवरण है, वह नष्ट हो

---

1 भुवनज्ञान सूर्ये सयमात्। यो सू 3/27

2 चन्द्रे तारा व्यूहज्ञानम्। यो सू 3/28

3 ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्। यो सू 3/29

4 नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्। यो सू 3/30

5 कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्ति। यो सू 3/31

6 कूर्मनाडया स्थैयर्म्। यो सू 3/32

7 मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम।। यो सू 3/33

8 प्रातिभाद्वा सर्वम्। यो सू 3/34

9 हृदये चित्तसवित्। यो सू 3/35

10 सत्व पुरूषेमोरत्यन्त सकीर्णयो प्रत्याविशेषाद भोग पदार्थत्वादन्यस्वार्थसयमात पुरूष ज्ञानम्। यो सू 3/36

11 तत प्रातिभश्रवणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते। यो सू 3/37

12 ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय। यो सू 3/38

13 बन्ध कारण शैथिल्यात् प्रचार सवदनाच्च चित्तस्य पर शरीरावेश। यो सू 3/39

जाता है।[5] भूतों की स्थूता, स्वरूप सूक्ष्म अन्वय ओर अर्थवत्व - इन पॉच प्रकार की अवस्थाओं में सयम करने पॉचों भूतों पर विजय प्राप्त हो जाती है।[6] उसस अणिमा दि सिद्धियों का आविर्भाव होता हे, कायसम्मत की प्राप्ति होती है और सारे शारीरिक धर्मो से बाधा नहीं होती।[7] रूप लावण्य बल ओर वज्र के समान दृढता - य कायसम्मत हे।[8] इन्द्रियों की वाह्य पदार्थ की ओर गति, उससे उत्पन्न ज्ञान, इस ज्ञान से विकसित अह- प्रत्यय, इन्द्रियों के त्रिगुणमयत्व ओर उनके भोगदतृत्व- इन पॉचों में सयम करने से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त हो जाती हे।[9] उस (इन्द्रियजय) से शरीर को मन के सदृशगति, शरीर के बिना भी विषयों का अनुभव करने की शक्ति और प्रकृति पर विजय - ये तीनों सिद्धिया प्राप्त होती हे।[10]

सत्व (बुद्धि) और पुरूप के परस्पर पार्थक्य ज्ञान में सयम करने से सब वस्तुओं पर अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व प्राप्त हो जाता हे।[1] इन सब सिद्धियों को भी त्याग देने से दोष की बीज नष्ट हो जाता हे, ओर उमसे कैवल्य की प्राप्ति हा जाती है।[2] देवताओं द्वारा प्रलोभित किय जान पर भी उममें आसक्त होना या आनन्द का अनुभव करना उचित नहीं हे क्योंकि उससे पुन अनिष्ट होना सम्भव हें।[3] क्षण और उसके क्रम में सयम करन स विवेक जनित ज्ञान उत्पन्न होता हे।[4] जाति, लक्षण आर देश भेद से जिन वस्तुओं का भेद न किये जा सकतने के कारण जो तुल्य प्रतीत होती है, उनको भी इस उपर्युक्त सयम द्वारा अलग करके जाना जा सकता है।[5] जो विवेक ज्ञान समस्त वस्तुओं को तथा वस्तुओं की सब प्रकार की अवस्थाओं को एक साथ ग्रहण कर सकता है, उसे तारक ज्ञान कहते है।[6] जब सत्व (बुद्धि) और पुरूप- इन दोनो की समानभाव से शुद्धि हो जाती हे, तब केवल्य की प्राप्ति होती हे।

सिद्धिया जन्म, ओषधि मन्त्र, तपस्या और समाधि से प्राप्त होती है।[1] जायत्तरपरिणाम एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तन प्रकृति के पूर्ण होने से से होता है।[2] सत् ओर असत् कर्म प्रकृति के परिणाम (परिवर्तन) के प्रत्यक्ष कारण नहींहै वरन

---

1 उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च। या सू 3/40

2 सतान लयात्प्रज्वलनम्। यो सृ 3/41

3 श्रोत्राकाशयोऽ सम्बन्धसयमादिव्यश्रात्रम्। या सृ 3/42

4 काया काशयो सम्बध सयमातलभुतूलसमापन्तश्चाकाशगमनम्। यो सू 3/43

5 बहिर कल्पिता वृत्तिर्महाविदहा तत प्रकाशावरणक्षय । या सू 3/44

6 स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्वसयमाद् भूतजय । या सृ 3/45

7 ततोऽणिमादिप्रादुर्भाव कायसम्मतद्धर्मानभिघातश्च। या सू 3/46

8 रूपलावण्य बल बज्रसहननत्वानि काय सम्मत। यो सृ 3/47

9 ग्रहण स्वरूपास्मिता वयार्थत्व सयमादिन्द्रिय जय । यो सू 3/48

10 ततो मनोज वित्वविकरणभाव प्रधान जयश्च। या सृ 3/49

ये उसकी बाधाओं को दूर कर देने वाले निमित्त मात्र है - जैसे किसान जब पानी के बहने में रूकावट डालने वाली मेड को तोड देता है तो पानी अपने स्वभाव से ही बह जाता हैं।[3] बनाये हुये चित्त केवल अस्मिता (अहतत्व) से बने होते है।[4] यद्यपि इन विभिन्न बनाये हुये चित्तों के कार्य विभिन्न प्रकार के हे तो भी वह एक आदि (मूल) चित्त ही उन सब का नियन्ता हे।[5] उन विभिन्न चित्तो में से जो चित्त समाधि द्वारा उत्पन्न होता है वह वासना शून्य होता हे।[6] योगियों के कर्म शुक्ल भी नही और कृष्ण भी नही (पर) दूसरों के कर्म तीन प्रकार के होते है - शुक्ल, कृष्ण ओर मिश्र।[7] इन त्रिविध कर्मो से प्रत्येक अवस्था में वे ही वासनाये प्रकार होती है, जो केवल उस अवस्था में प्रकट होने के याग्य है। (अन्य सब उस समय केलिए स्तिमित रूप से रहती है।)[8] स्मृति और सस्कार एक रूप हाने के कारण जाति देश और काल का व्यवधान रहने पर भी वासनाओं (कर्म सस्कारों का आनन्तर्य रहता है अर्थात उनमें व्यवधान नही होता।[9]

कैवल्यापाद

सुख की तृष्णा नित्य होने के कारण वासनाये भी अनादि है।[1] हेतुफल, आश्रय और (शब्दादि) विषय- इनसे वासनाओं का सग्रह होता है इसलिए इन चारो का अभाव होने से उन (वासनाओं) का भी अभाव हो जाता है।[2] वस्तु के धर्म विभिन्न रूप धारणा कर सब कुछ हुये हे इसलिए अतीत ओर अनागत (भविष्य) स्वरूपत वियमान हे।[3] वे (धर्म) कभी व्यक्त अवस्था में रहते है, फिर कभी सूक्ष्म अवस्था में चले जाते है, और गुण ही उनकी आत्मा अर्थात स्वरूप है।[4] परिणाम में एकत्व रहने के कारण वस्तु वास्तव में एक हे।[5] वस्तु के एक होने पर भी, चित्त भिन्न-भिन्न होने के कारण, विभिन्न प्रकार की वासनायें ओर अनुभूतियॉ होती है।[6] चित्त में वस्तु के प्रतिबिम्ब पडने की अपेक्षा रहन के कारण वस्तु कभी ज्ञात और कभी अज्ञात होती है।[7] चित्त वृत्तियॉ सदा ज्ञात रहती है, क्योंकि उस (चित्त) का स्वामी पुरूष अपरिणामी है।[8] चित्त दृश्य होने के कारण स्वप्रकाश नहीं है।[9] एक ही

---

1 जन्मौषधिमन्त्रतप समाधिजा सिद्धय । यो सू 4/1

2 जासत्यन्तरपरिणाम प्रकृत्यापूरात्। यो सू 4/2

3 निमित्तमप्रयोजक प्रकृतीना वरणभेदस्तुत क्षत्रिकवत्। यो सू 4/3

4 निर्माण चित्तान्यस्मितामात्रात्। यो सू 4/4

5 प्रवृत्ति भेदे प्रयोजक चित्त में कमनेकेपामृ। या सृ 4/5

6 तत्र ध्यान जमनाशयम्। या सू 4/6

7 कर्माशुक्लाकृष्ण योगिनस्त्रिविधमितरषाम्। या सू 4/7

8 ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभि व्यक्तिर्वासनानाम्। या सृ 4/8

9 जाति देश काल व्यवहितानामत्यानन्तर्य स्मृति सस्कारयारकरूपत्वात्। यो सू 4/9

समय में दो वस्तुओं को समझ न सकन के कारण चित्त स्वप्रकाश नहीं है[10] एक चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य मान लने पर वह दूसरा चित्त फिर तीसरे चित्त का दृश्य होगा। इस प्रकार अनावस्था प्राप्त होगी और स्मृति का भी सम्मिश्रण हो जायेगा।[11]

चित्त (पुरूप) अपरिणामी हे चित्त जब उसका आकार धारण करता हे तब वह ज्ञान भय हो जाता है।[1] चित्त जब दृप्टा और दृश्य इन दोनो से रग जाता है तब वह सब कुछ समझने में समर्थ होता हे।[2] वह (चित्त) असख्य वासनाओं से चित्रित होने पर भी दूसरे (अर्थात पुरूप) के लिए हे, क्योंकि यह सहत्यकारी (सयुक्त होकर कार्य करने वाला) हे।[3] विशेप दर्शी अर्थात विवेकी पुरूप के चित्त में आत्मभाव नहीं रह जाता।[4] उस समय चित्त विवेकप्रवण होकर कैवल्य के पूर्व लक्षण को प्राप्त करता है।[5] उसके विघ्नस्वरूप बीच-बीच में जो विचार उत्पन्न होते है वे सस्कारों से आते हैं।[6] जिन उपयों से क्लेशों के नाश की बात (सूत्र 2/10) कही गयी है इन (सस्कारों) को भी ठीक उन्हीं उपायों से नष्ट करना होगा।[7] तत्वों के विवेक ज्ञान स उत्पन्न ऐश्वर्य में भी जिनका वैराग्य हो जाता है, उनका विवेक ज्ञान सर्वथा प्रकाशमान रहने कारण उन्हें धर्ममेद्य समाधि प्राप्त हो जाती है।[8] उस (धर्ममेद्य समाधि) से क्लेश और कमो का सर्वथा नाश हो जाता है।[9] उस समय ज्ञान, सब प्रकार के आवरण अशुद्धि से रहित होने के कारण, अनन्त हो जाता है, अत ज्ञेय अल्प हो जाता है।[10]

जब गुणों का काम समाप्त हा सजाता है तब गुणों के जो विभिन्न परिणाम है, वे भी समाप्त हो जाते हैं।[11] जो परिणाम प्रत्येक क्षण से सम्बन्धित हे, और जो

---

1 तासामनादिव्य चाशिपानित्यत्वात्। यो सृ 1/10
2 हेतुफलाप्रगालम्बने सग्रहीतत्व दषामभाव तदभाव। या सू 4/11
3 अतीतानागत स्वरूपाऽस्त्यमदाद्वर्गणाम्। या सू 4/12
4 ते व्यक्त सूक्ष्मा गुणात्मान। या सृ 4/13
5 परिणामेकत्वाद्वस्तुतत्वम्। या सू 4/14
6 वस्तु साम्ये चित्त भेदान्तयार्विभक्त पन्था। यो सृ 4/15
7 तदुपरागापेक्षित्वाच्चिन्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम्। यो सू 4/16
8 सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभो पुरूपस्यापरिणामित्वात्। यो सू 4/17
9 न तत्सवाभास दृश्यत्वात्। यो सृ 4/18
10 एक समये चोमयानव धारणम्। यो सू 4/19
11 चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्वेरति प्रसङ्ग स्मृति सङ्काकरश्य। या सू 4/20
12 तत कृतार्थाना परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्। यो सू 4/31
13 क्षण प्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्य क्रम। या सू 4/32

दूसरे छोर में (अर्थात एक परिणाम परम्परा के अन्त म) समक्ष में आते हैं वे क्रम हैं।[12] गुणों से जब पुरूप का कोई प्रयाजन नहीं रहता, तब प्रतिलोम क्रम से गुणों के लय होने का कैवल्य कहते हैं, अथवा या कहिए कि दृष्टा (चित्त शक्ति) का अपन स्वरूप में पतिष्ठित हो जाना केवल्य है।[13]

तृतीय अध्याय

आधुनिक योगाचार्य

1 स्वामी विवेकानन्द

'योगश्चित्तवृत्ति निरोध'[1] के द्वारा प्राचीन सस्कृत शब्द 'योग' की परिभाषा की गई है। इसका अर्थ यह है कि 'याग' वह विज्ञान है, जो हमें चित्र की परिवर्तनशील अवस्था स निरूद्ध कर उस वश में करने की शिक्षा देता है। चित्र वस्तु है, जिससे हमारे मन का निर्माण होता ह और जो निरन्तर बाह्य तथा आन्तरिक प्रभावों से प्रमाणित होकर (सकल्प-विकल्प की) तरग उछालता रहता है। योग हमें सिखाता हे कि मन का किस प्रकार नियमन किया जाए जिससे वह सन्तुलन खोकर तरगित न होने पाये। विवेकानन्द ने योग को मुख्यतया चार भागों में वर्गीकृत किया है[2]।

कर्मयोग -कर्मयाग कर्म के द्वारा मन को शुद्ध करता हे। शुभ या अशुभ कर्म किये जाने पर अशुभ परिणाम अवश्य उत्पन्न होता हे। कारण विद्यमान होने पर कोई भी शक्ति उसे रोक नही सकती। अतएव जब तक शुभ कार्य शुभ कर्म और अशुभ कार्य, अशुभ कर्म उत्पन्न करते रहेंगे, कभी भी मोक्ष प्राप्त कर सकने की आशा से रहित आत्मा शाश्वत बन्धनों मे पडी रहेगी। कर्म केवल शरीर या मन से सबद्ध है, आत्मा से नहीं, वह आत्मा के समक्ष एक पर्दा भर डाल सकता है। अशुभ कर्म द्वारा डाला गया पर्दा अविद्या हे। शुभ कर्म मे नैतिक बल को करने की शक्ति है। इस प्रकार वह अनासक्ति को उत्पन्न कर सकता हे। वह अशुभ कर्म के प्रति प्रवृत्ति को नष्ट और मन को निर्मल करता हे। किन्तु यदि कर्म मोक्ष की प्रेरणा से किया जाता है, तो वह केवल इस भोग को उत्पन्न करता है, मन या चित्र को शुद्ध नहीं करता। अतएव समस्त कर्म उसके फलों को भोगने की इच्छा से नितान्त मुक्त हाकर किया जाना चाहिए। कर्मयोगी के समस्त भय तथा इहलोक या परलोक में भोग की[77]
इच्छा को सदा के लिए निकाल देना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रतिदान की इच्छा से रहित यह कर्म स्वार्थपरता को नष्ट कर देगा, जो सारे बन्धनों की जड है। कर्मयोगी का जीवन मन्त्र है 'मै नही, वरन् तू', और आत्मोत्सर्ग का कोई भी परिणाम उसके लिए अधिक नहीं होता। किन्तु ऐसा वह स्वर्ग जाने, नाम और यश कमाने या इस ससार में काई अन्य लाभ उपलब्ध कर सकने की इच्छा से नितान्त मुक्त होकर करता है। इस प्रकार के नि स्वार्थ कर्म की व्याख्या और हेतु यद्यपि केवल ज्ञानभोग में ही मिलते हैं, परन्तु मनुष्य की नैसर्गिक दिव्यता, बिना किसी प्रच्छन्न स्वार्थ भाव

1 पतजलि योगसूत्र, प्रथम अध्याय, समाधिपाद 2 सूत्र।
2 विवेकानन्द साहित्य भाग-7, पृ0 323
3 योग के चार मार्ग, पृ0 324
4
5 विवकानन्द साहित्य- भाग 4, पृ0 166

के, दूसरों के हित मात्र के लिए, उनका सम्प्रदाय या मत जो भी हो, उसे समस्त उत्सर्ग से प्रेम करने के लिए विवश करती है। बहुतेरे लोगों के लिए धन का बन्धन बहुत बडा होता हे और धन के प्रति प्रेम के आस-पास जम गयी पपडी को तोडने के निमित्त उनके लिए कर्मयोग परमावश्यक है।

भक्तियोग[3]- भक्ति तथा पूजा अथवा किसी रूप में प्रेम मनुष्य के लिए सबसे अधिक सरल सुखद ओर स्वभाविक मार्ग है। इस विश्व की नैसर्गिक स्थिति आकर्षण की है, और अनिवार्य रूप से उसका अन्त वियोग में होता है। यहाँ तक कि मानव हृदय में प्रेम मिलन की नैसर्गिक प्रेरणा है। यद्यपि वह स्वय क्लेश का एक बडा कारण है, सम्यक पात्र के प्रति सम्यक रूप से निर्दिष्ट होने पर वह मुक्ति प्रदान करता है। भक्ति का आलम्बन ईश्वर है। प्रेम के बिना कर्ता और आलम्बन नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त पेम का आलम्बन पहले एक ऐसा प्राणी होना चाहिए, जो हमारे प्यार का प्रतिदान कर सके। अतएव प्रेम का ईश्वर किसी न किसी न किसी अर्थ में एक मानवीय ईश्वर होना चाहिए। ऐसा ईश्वर है या नहीं, इस प्रश्न के बावजूद, यह एक तथ्य हे कि जिनके हृदय में प्रेम हे, उनके प्रति यह ब्रह्म प्रेम के ईश्वर के रूप में व्यक्तितत्व रूप में प्रकट होता है।

राजयोग[1] इस योग की सगति इन योगों में प्रत्येक से हो जाती है। आस्थावान या आस्थारहित सभी वर्गों की जिज्ञासाओं से इसकी सगति हो जाती है और यह धार्मिक जिज्ञासा का यथार्थ उपकरण है। जिस प्रकार प्रत्येक विज्ञान की अनुसधान करने की अपनी विशिष्ट पद्धति होती है, उसी प्रकार राजयोग धर्म की पद्धति है। विविध शरीर-सरचनाओं के अनुरूप इस विज्ञान का व्यवहारिक उपयोग भी विविध होता है। इसके मुख्य अग प्राणायाम, ध्यान ओर धारणा हे। जो लोग ईश्वर में विश्वास करते है किसी गुरू से प्राप्त कोई प्रतीकात्मक नाम जैसे ओऽम् या अन्य पवित्र शब्द इसमें बडे सहायक सिद्ध होते हैं। ओऽम् इनमें महानतम् है और उसका अर्थ है ब्रह्म । इन पवित्र नामों का जप करते हुये उनके अर्थ की धारणा करना मुख्य अभ्यास है।

ज्ञानयोग यह तीन अगों में विभक्त हे। पहला इस सत्य का श्रवण कि आत्मा ही एक मात्र वास्तविकता हे ओर सब माया (सापेक्षता) हे। दूसरा- इस दर्शन पर सभी दृष्टिकोणों से मनन- तीसरा- इसके आगे सारे तर्क वितर्क को वर्जित करके सत्य की अनुभूति प्राप्त करना। यह अनुभूति इतने प्रकार से प्राप्त होती है- 1 इस बात के निश्चय से कि ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या हे। 2 भोग की समग्र इच्छा का त्याग। 3 मन और इन्द्रियों का सयम। 4 मुक्त होने की तीव्र आकाक्षा। इस सत्य की सतत धारणा ओर आत्मा का उसके वास्तविक स्वरूप का सदेव स्मरण कराते

4 वही, पृ0 325

रहना ही इस योग के मार्ग है। यह योग सर्वोच्च किन्तु कठिनतम है। इसको बुद्धि के द्वारा तो बहुत से लोग ग्रहण कर लेते हैं।लेकिन उसकी सिद्धि बहुत कम लोग कर पाते हैं।

व्यवहारिक धर्म क्या है[1] ? इस सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति के विचार, व्यवहारिकता सम्बन्धी उसके सिद्धान्त तथा अपने ऐसे दृष्टिकोण के अनुरूप होते हैं, जहॉ से वह कार्यारम्भ करता है। वह ज्ञान भक्ति एव कर्म है। दार्शनिकों का मत है कि मुक्ति तथा बन्धन के अंतर का कारण ज्ञान तथा अज्ञान है। उसके लिए लक्ष्य, ज्ञान और उसकी व्यावहारिकता ज्ञान प्राप्ति के लिए होती है। भक्त का व्यावहारिक धर्म होता है प्रेम तथा श्रद्धा की अमित शक्ति। कर्मयोगी सत्कर्म को ही अपना व्यवहार्य धर्म बनाता है। जेसा अन्यत्र भी देखा जाता है कि हम सदैव दूसरे के आदर्श की अपेक्षा करने और सम्पूर्ण ससार को अपने आदर्श के सॉचे में ढालने के प्रयत्न में लगे रहते हैं।

प्रेम से परिपूर्ण व्यक्ति अपने सहजीवियों की भलाई को ही धर्माचरण मानता है। यदि मनुष्य कोई अस्पताल आदि बनवाने में मदद न दें, तो वह यह सोचने लगता है कि उनका कोई धर्म नहीं हे। सभी एक सा ही करें, ऐसी कोई बात नहीं हे। इसी प्रकार दार्शनिक ज्ञान-साधना न करने वाले की अवहेलना कर सकता है। भले ही लोग बीस हजार अस्पताल बनवा दें, ज्ञानी उन्हें देवताओं के पशु मात्र सिद्ध करेगा। भक्त के अपने ही विचार और मानदण्ड होते हैं। ईश्वर से प्रेम न करने वाले जसे भी कर्म क्यों न करें, उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ नहीं है। योगी का विश्वास आत्मसयम और (अन्त) चित्रवृत्ति विजय पर रहता हे। इस दिशा में आपकी सफलता कितनी बढी है। शरीर तथा इन्द्रियों पर कितना नियत्रण हुआ हे ? योगी के ये ही प्रश्न रहते हैं। जैसा कहा गया है कि हर व्यक्ति दूसरों को अपने आदर्श से ही परखता है। मनुष्य लाखों डालर दान में क्यों न दे चुका हो या भारतीयों की भॉति चूहों-बिल्लियों को क्यों अन्न खिला चुका हो। उनका कहना है कि मानव अपनी चिंता स्वय कर सकता हे, लेकिन बेचारे जीव-जन्तु ऐसा नहीं कर सकते। लेकिन योगी का चरम लक्ष्य (अन्त) चित्रवृत्ति निरोध है और वह उसी कसौटी पर मानव को कसता है[2]।[80]

योग सिद्धान्त, जिसकी व्याख्या की जा रही है, उसका यह दृष्टिकोण नहीं है कि आत्मा की सत्ता है और इसमें सर्वशक्ति निहित है। यदि हम शरीर को अपने

1 योग के सिद्धान्त- पृ0 160

2 विवेकानन्द साहित्य भाग 4 पृ0 160

अधीन कर लें तो सारी शक्ति अभिव्यक्त हो जायेगी। जब सम्पूर्ण ज्ञान आत्मा में निहित है तो सामान्य जन सघर्परत क्यों हे? दु ख घटाने के लिए ही तो
शरीर को वशीभूत न करने स ही सारे द् ख का सूत्रपात होता हे। हम घोड क आगे गाडी रखते हे उदाहरणार्थ कर्मपक्रिया को ही लो। हम गरीबों का आराम देकर उनकी भलाई करन का पयत्न करते हे हमें दु ख के मूल कारण का ज्ञान नहीं है। यह समुद्र को बाल्टी से खाली करने के बराबर है और लगातार पानी भरता जाता है। योगी इसे मूर्खतापूर्ण समझता हे। वह कहता है कि दु ख से त्राण पाने का पहला उपाय दु ख के मूल कारण को जान लेना है। हम यथाशक्ति अच्छाई करने का प्रयत्न करते हैं। यह किसलिए ? अगर कोई असाध्य रोग है, तो हम क्यों सघर्परत हों, और क्यों अपनी रक्षा का प्रयत्न करें ? यदि उपयोगिता कहे, ईश्वर और आत्मा के विपय में परेशान मत होओ, तो उस का योगी पर या ससार पर पभाव ही क्या पडेगा ? (ऐसी मनोवृत्ति) से दुनिया का कोई भला नहीं होने वाला हे फिर भी दु ख की मात्रा अधिकाधिक बढती जा रही है।

योगियों की धारणा हे कि प्रकृति भोग्या ओर आत्मा भोक्ता हे। ये सारे दु ख और सुख कहाँ है ? इन्द्रियों मे ही। इन्द्रियों का सग ही हर्ष-शोक, शीत-उष्ण आदि को जन्म देता हे। यदि हम इन्द्रियों को सयत कर सकें और उनके विषय को निर्दिष्ट कर सकें - इस समय की भॉति हम उनके आज्ञाकारी न रहें- वे यदि हमारा आदेश मानें, हमारे दास बने रहें- तो तुरन्त समस्या का समाधान हो गया। हम इन्द्रियों के जाल में फसे हैं, वे हमेशा हमें नचाती हे ओर बुद्धू बनाती है। दूसरी समस्या जो सुलझानी है वह यह है, क्या वह व्यावहारिक हे ? मानव अपने शरीर पर नियत्रण पा सकेगा ? योग इसे व्यावसायिक -यत्नसाध्य- कहता है मान को, ऐसा नहीं है, मन में कुछ सदह हे। तुम्हें इस दिशा में प्रयत्न करना होगा। कोई दूसरा उपाय नहीं हे।

योगशास्त्र के अनुसार (अन्त चित्रवृत्ति पर विजय ही) एकमात्र उपाय है।
ईश्वर को पाने की उत्कल अभिलापा ही धर्म है[7]। लोक हितैषी कार्य आदि केवल मन को किंचित शात करते हें। यह योग-साधना-पूर्ण बनना- पूर्णतया हमारे अतीत पर आश्रित है। मै जीवन भर अध्ययन करता रहा हूँ और अब तक थोडी सी ही प्रकृति कर पाया हूँ। लेकिन जो फल प्राप्त हुए हैं, उनसे मुझे विश्वास हो गया है कि यही एकमात्र सच्चा मार्ग हे। वह दिन दूर नही, जब मै अपना स्वामी बन जाऊँगा। इस जन्म में न सही अगले जन्म में ही सही। मे लगातार सघर्ष जारी रखूँगा, हार नही मानूगा। कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता। यदि इसी क्षण मै देह छोड दूँ, तो मेरे पिछले सारे सघर्ष मरी सहायता करेंगे। क्या तुम्हें जन-जन के बीच अन्तर उत्पन्न करने वाली शक्तियों का पता नहीं हे ? यह उनका प्रारब्ध है। अतीत के

ससार एक को प्रतिभाशील और दूसर को मूर्ख बनाते है। तुम अतीत के सस्कार के बल पर पॉच मिनट में सफल हो सकत हो। क्षण भर में क्या घटित हो सकता हे, कोई नही बता सकता है। हम सबको कभी न कभी (पूर्णत्व) प्राप्त करना ही है।

पहली बात है, स्थिर होकर उस आसन में बेठना, जिसमें देर तक निश्चल बैठे रह सको। सभी सक्रिय नाडी-प्रवाह मेरूदड के माध्यम से सचालित है। मेरूदड शरीर भार वहन करने के लिए नहीं है। अत आसन ऐसा होना चाहिए, जिससे शरीर का बोझ मेरूदड पर न पडे। सभी प्रकार के दबाव से उसे मुक्त रखना चाहिए। कुछ और भी प्रारंभिक बातें हे। खान-पान तथा व्यायाम का मुख्य प्रश्न है।

युक्त आहार क्या हे, उसका भेद क्या हे, आदि का निर्णय स्वय हमें करना होगा। हमारे लिए दूसरा कोई इसका निर्णय नहीं कर सकता। साधारणत युक्ताहार का अर्थ है- ज्यादा मसालेदार खाना न खाओ। योगी का कहना है कि प्रकृति के गुणों के अनुसार मन तीन प्रकार का होता ह। एक है तामसी मन, जो आत्मा के अमर आलोक ढक लेता है। दूसरा हे, राजसी मन, जो क्रियाशीलता बढाता हे। तीसरा है सात्विक मन, जो स्थिरता और शान्ति का मूल है।

इसी तरह प्राणायाम के कई विधान हैं। एक विधान के तीन भाग हैं- सॉस लेना, सॉस रोके रहना- बिना श्वास लिए विश्चेष्ट रहना और सॉस निकालना । प्राणायाम के कुछ प्रयोग कठिन जरूर हे ओर उचित आहार-सेवन के अभाव में कुछ जातिक क्रियाओं की साधना खतरे से खाली नहीं हे। सरल क्रियाओं की अपेक्षा मे इन जातिक क्रियाओं की साधना में रुचि होने की सलाह तुमको नहीं दूँगा। लम्बी साँस लो एव फेफडो को फुलाओं। धीर-धीरे श्वास बाहर फेंको। एक नाक से सॉस खींचो और फेफडो को भरो। दूसरे नाक से उसे धीरे-धीरे बाहर निकालो। हममें से कुछ लोग सॉस भी उचित मात्रा में नहीं ले पाते हैं। कुछ सज्जन फेफडों को ठीक रूप में भर नहीं पाते। इस श्वास प्रश्वास- क्रिया से यह कभी कुछ हद तक दूर होगी। प्राय आधे घण्टे या सायकाल आधे घण्टे यह प्रयोग जारी रखें, तो तुम्हारा व्यक्तित्व ही बदल जायेगा। यह प्राणायाम बहुत लाभप्रद हे। अन्य क्रियाओं की साधना बहुत मन्द गति से करनी चाहिए। पहले अपनी शक्ति का अनुमान करो। यदि दस मिनट अधिक लगें, तो सही ढग से पॉच ही मिनट करें।

योगी से आशा की जाती हे कि वह अपना शरीर स्वस्थ रखें। प्राणायाम के ये विभिन्न विधान शरीर अवयवों को व्यवस्थित रखने में बडे सहायक हैं।[9] सभी भाग प्राण वायु से प्लवित है। प्राण के सहारे ही हम उन अवयवों को वश में रख सकते हैं। अवयवों में उत्पन्न असतुलन को उनकी ओर प्राण वायु तरगे अधिक प्रेषित करके ठीक कर सकते है। जब शरीर में कहीं पीडा हो, तो योगी को यह बताने में समर्थ

होना चाहिए कि वह प्राण की कमी से हुई या आधिक्य से। योगी को उसका सन्तुलन करना होगा।

योग-साधना की (सफलता के लिए) दूसरी शर्त ब्रह्मचर्य है। सभी साधनों की यही आधारशिला है। विवाहित हो या अविवाहित- पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी होना चाहिए। लेकिन यह बताना जरूरी है कि इस विषय पर सार्वजनिक रूप से चर्चा देश की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। पश्चिमी राष्ट्रों में प्रचारकों के रूप में ऐसे खतरनाक सज्जनों की सख्या कम नहीं हे, जो स्त्री-पुरूष में यह प्रचार करते हैं कि ब्रह्मचर्य हानिकारक है। ऐसी बातें उन्हें कहाँ से प्राप्त होती हे?

त्याग के बिना कोई सिद्धि सभव नहीं हे। त्याग मानवीय चेतना का पवित्रतम, सर्वोच्च साध्य हे, उसे अपवित्र न बनाओं उसे पशु स्तर पर घसीटो नहीं अपने को भद्र पुरूष बनाओ शीलवान और पवित्र रहो।

दूसरा सकोई चारा नहीं है। ईसामसीह ने दूसरा कौन मार्ग ढूँढ निकाला था ? यदि तुम समुचित रीति से शक्ति का सचय ओर विनिमय सीखो, तो वही ईश्वर तक पहुँचायेगा यह विपरीत हो जाय, तो उसे नरक ही जानो।

बाह्य स्तर पर कुछ दिखाना आसान हे, लेकिन दुनिया का महान से महान विजेता भी अपने मन पर विजय पाने के प्रयास मे अपने को शिशु अनुभव करता है। उसी जगत को उसे जीतना हे - जो बहुत बडा ओर कठिनता से जीता जा सकने वाला है। निराश न होओ। उतिष्ठ, जाग्रत, प्राप्य वरन्ति बोधत।

चित्तवृत्तिनिरोध को योग बताते हुए स्वामी विवेकानन्द ने जो योग के चार विभाग बताये हे उनमें से कर्मयोग का पतञ्जल योग से कोई सम्बन्ध नहीं है। भक्तियोग पतजलि के ईश्वर के प्रणिधान की याद दिलाता है` राजयोग अवश्य पातजल योग से साम्य रखता दिखता हैं क्योंकि विवेकानन्द के अनुसार प्राणायाम धारणा तथा ध्यान इसके मुख्य अग हे। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि के भी मुख्य अग ये ही तीनों हें। आगे स्वामी जीने आसन ओर प्राणायाम पर जो जोर दिया है वह पातजल योग का ही प्रभाव कहा जाएगा। उनका ज्ञानयोग वेदान्त के सिद्धान्त के अधिक निकट जान पडता हे।

2 महर्षि अरविन्द

महर्षि अरविन्द के अनुसार योग वह हे जिसके द्वारा आभ्यान्तर तथा वाह्य जीवन का ऐसा परिपूर्ण उत्सर्ग तथा परिवर्तन हो कि जिसके द्वारा भगवत चैतन्य की अभिव्यक्ति हो तथा वह स्वयं भी भगवत कर्म का एक अग बन सके। इसी उददेश्य की प्राप्ति के लिये महर्षि अरविन्द जी ने अपनी पुस्तक 'योग समन्वय' में जीवन और

योग, योग की प्रणालियॉ एव उनका समन्वय तथा समाधि तक पहुचने केलिए हठयोग एव राजयोग का एक समन्वयात्मक विवचन प्रस्तुत किया हे। यहॉ पर महर्षि अरविन्द जी के योग के सम्बध में इन्ही विचारों का विवेचन किया जायेगा।

भारतीय योग अपने अपने सारतत्व में प्रकृति की कुछ महान शक्तियों की एक विशाष क्रिया या रचना हे यह स्वय विशिष्ट एव विभाजित हे और विविध प्रकार से निर्मित हुआ है। अत यह अपन बीज रूप में मनुष्य जाति के भावी जीवन के इन सक्रिय तत्वों में से एक है। यह अनादि युगों का शिशु है तथा हमारें इस आधुनिक समय में अपनी जीवन शक्ति और सत्य के बल पर जीवित बचा हुआ है। अब यह उन गुप्त सस्थाओं और सन्यासियों की गुफाओं से बाहर निकल रहा है जिनमें इसने आश्रय लिया था, यह आजकल की जीवित मानवी शक्तियों और उपयोगिताओं भावी सघात में अपना स्थान खोज रहा हे।

अगर हम जीवन ओर योग दोनो का यथार्थ दृष्टिकोण से देखें तो सम्पूर्ण जीवन ही चेतन या अवचेतन रूप में योग है।[1] कारण इस शब्द से हमारा मतलब सत्ता में प्रस्तुत क्षमताओं की अभिव्यक्तियों क द्वारा आत्म परिपूर्णता के लिए किया गया विधिवत प्रयत्न ओर मानव व्यक्तित्व का उस विश्वव्यापी सत्ता के साथ मिलन है जिसे हम मनुष्य और विश्व में अशत होता हुआ देखते हे। किन्तु जब हम जीवन को उसके बाहय रूपों के पीछे जाकर देखते हैं तो वह प्रकृति का एक विशाल योग दिखाई देता है - उस प्रकृति का जो अपनी शक्यताओं की सदा वृद्धिशील अभिव्यक्ति में अपनी पूर्णता प्राप्त करने की तथा अपनी दिव्य वास्तविक सत्ता के साथ एक होने की चष्टा कर रही हे। मनुष्य उसका एक विचारशील प्राणी हे अतएव उसमें वह पहली बार क्रिया के उन स्वचेतन साधनों और इच्छाशक्ति से युक्त प्रणालियों की रचना करती हे जिनकी सहायता से यह महान उददेश्य अधिक द्रुत और शक्तिशाली वेग से पूरा हो सकेगा।

योग एक ऐसा साधन है जो व्यक्ति के विकास को शारीरिक जीवन के अस्तित्व के एक ही जीवन-काल में या कुछ वर्षों में यहॉ तक कि कुछ महीनों में ही साधित कर दे। अतएव योग की वर्तमान पद्धति उन सामान्य विधियों के एक अधिक सकुचित पर अधिक सबल ओर तीव्र रूपों में सग्रह या सक्षेप से अधिक कुछ और नही हो सकती। योग विषयक यह विचार यौगिक प्रणालियों के यथार्थ और युक्तियुक्त समन्वय का आधार बन सकता हे। योगिक पद्धतियों का मनुष्य की प्रचलित मनोवैज्ञानिक क्रियाओं के साथ वहीं सम्बध है जो विद्युत और वाष्प की स्वाभाविक शक्ति के वेज्ञानिक प्रयोग का वाष्प और विद्युत की सामान्य क्रियाओं के

1 योग समन्वय महर्षि अरविन्द पृष्ठ 10

साथ है 'समस्त राजयोग' उस ज्ञान एव अनुभव पर आधारित है कि हमारे आन्तरिक तत्व सयोग और कार्य तथा हमारी शक्तियॉ अलग-अलग की जा सकती हे- उनमं विघटन हो सकता है- उन्हें नये सिर से मिलाया जा सकता है तथा उनसे नये और पहले असम्भव माने गये कार्य करायं जा सकते हे या फिर ये सब स्थायी आन्तरिक प्रक्रियाओं द्वारा एक नये सामान्य समन्वय मं रूपातरित किये जा सकते हे।[1] इसी प्रकार हठयोग भी इस बोध एव अनुभव पर निर्भर करता है कि जिन प्राणिक शक्तियों और क्रियाओं की अधीनता हमारा जीवन स्वीकार कर लेता हे तथा जिनके साधारण कार्य रूढ और अनिवार्य ढग के प्रतीक होते है वे वश में भी जा सकती है, उन्हें बदला जा सकता हे अथवा उन्हं रोका जा सकता है।

योग का सच्चा ओर पूर्ण उपयोग और उददेश्य तभी साधित हो सकते हे जबकि मनुष्य क अन्दर सचेतन योग जैसा कि प्रकृति मं अवचेतन योग होता ह, वाहयत जीवन के साथ समान रूप स व्यापक हो जाय और तभी हम मार्ग और उपलब्धि दोनों को देखते हुये एक बार फिर एक अधिक पूर्ण और आलोकित अर्थ में कह सकते है "समस्त जीवन ही योग हे।"

महर्षि अरविन्द जी प्रकृति मे तीन क्रमिक अवस्थाए मानते हे शारीरिक जीवन जो यहा भौतिक जगत में हमारे अस्तित्व की आधारशिला है, मानसिक जीवन - जिसमें हम अभिव्यक्त होते हे ओर जिसकी सहायता से हम शारीरिक जीवन का अधिक उच्च प्रयोग करते हे तथा उस एक महत्तर पूर्णता में विकसित कर लेते है दिव्य जीवन- जो इन दानो का ही लक्ष्य हे ओर जो इनकी ओर मुडकर इन्हें उनकी उच्चतम सम्भावनाओं में उन्मुक्त करता हे। हम इन विविध स्तरों को, मुक्ति और परिपूर्णता को कम से कम योग के लक्ष्य का एक बहुत बडा और महत्वपूर्ण अग मानते है।

ज्ञान योग का लक्ष्य एक उच्चतर या दिव्य चेतना मे है।[1] समाधि का इस लक्ष्य के साथ घनिष्ठ सम्बध है। यह माना जाता है कि सत्ता की कुछ भूमिकाए ऐसी है जो केवल समाधि में ही प्राप्त की जा सकती है उनमे से वह भूमिका विशेष रूप स कामनीय हे जिसमें आत्म ज्ञान की समस्त क्रिया समाप्त हो जाती है और निश्चल, कालातीत एव अनन्त सत्ता मं शुद्ध अतिमानसिक लय को छोडकर और किसी प्रकार का चैतन्य होता ही नहीं। इस समाधि मं प्रवेश करके आत्मा सर्वोच्च निर्वाण की नीरवता में चली जाती हे जहॉ से वह सत्ता की किसी भ्रमात्मक या निम्नतर अवस्था में नहीं लोट सकती। इसमं प्रवेश पाना राजयोग ओर हठयोग में योगसाधना की सीढी का सर्वोच्च सोपान माना जाता है। तो फिर पूर्ण योग में समाधि

1 वही पृष्ठ 11

1 योग समन्वय महर्षि अरविन्द पृष्ठ 595

का क्या स्वरूप हे या इसमें होने वाले चेतना के लय का प्रयोजन क्या है ? यह स्पष्ट है कि जब जीवन में ईश्वर को प्राप्त या हमारे लक्ष्य के अन्तर्गत हे, जीवन केविलोप की अवस्था चरम और परम सोपान या सर्वोच्च कामनीय स्थिति नहीं हो सकती। योग समाधि जो कितनी ही योग प्रणालियों का लक्ष्य है, हमारा लक्ष्य नही हो सकता, वह तो केवल एक साधन ही हो सकती हे, और साधन भी जागरित अवस्था में पलायन करने के लिए नहीं बल्कि देखने, चैतन्य रहने और कार्य करने वाली सम्पूर्ण चेतना को विस्तृत ओर उन्नत करने के लिए है।

समाधि का महत्व उस सत्य पर आधारित हे कि जगत की या हमारी सत्ता का एक छोटा सा भाग ही हमार ज्ञा। या कार्य व्यवहार में आता हे। शेष सारा भाग पीछे की ओर सत्ता के प्रच्छन्न विस्तारों से छुपा हुआ है। ये प्रच्छन्न विस्तार नीचे अवचेतन की गहनतम गहराइयों में पहुचे हुये हे और ऊपर अतिचेतना की उच्चतम चोटियों तक उठे हुये हैं, अथवा ये हमारी जाग्रत आत्मा के छोटे से क्षेत्र का एक विशाल परिचेतन सत्ता के द्वारा चारा आरे से घेरे है।[1] हमारे मन और हमारी इन्द्रियों को इस विशाल परिचेतन सत्ता के केवल कुछ सकेत ही प्राप्त होते है। योगी विकास की एक विशेप अवस्था मं ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेता है कि वह अपने शरीर को मृत्यु की साधारण क्रिया श्रखला के बिना ही अपने इच्छा बल का प्रयोग करके, निश्चित रूप से त्याग सकता हे। समाधि की अवस्था में जीवन का त्याग करने से वह सीध ही सत्ता की उस उच्चतर भूमिका को प्राप्त कर लेता है जिसकी वह अपेक्षा करता हे।

परमदेव के साथ एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना तथा इसे प्राप्त करना यही सब योगों का स्वरूप हे परम देव के साथ एकत्व का अर्थ है उनकी सत्ता के साथ तथा उनके चैतन्य और आनन्द क साथ एकत्व। ज्ञान योग द्वारा मानसिक चेतना को एक ऐसी निर्मल अवस्था में तथा एकाग्र शक्ति में उठा ले जाय जिसके द्वारा यह वास्तविक सत्ता को परिपूर्ण से जान सके, उसमें लीन होकर तद्रुप बन सके। परन्तु दो महान साधन पद्धतियाँ ऐसी भी हे जिनमें यह और भी अधिक महत्व ग्रहण कर लेती है। वे हे राजयोग और हठयाग।

हठयोग एक शक्तिशाली पर कठिन ओर कष्टप्रद प्रणाली है। इसकी क्रिया का सारा सिद्धात इस तथ्य पर आधारित हे कि शरीर और आत्मा में घनिष्ट सम्बध है।[5] बध और मोक्ष, पशुचित दुर्बलता और दिव्य शक्ति- मन और अन्तरात्मा की तमसाच्छन्नता तथा प्रकाशमयता पीडा ओर अपूर्णता के प्रति अधीनता और आत्म प्रभुता, मृत्यु ओर अमरता इन सब द्वन्दों की कुजी एव इनका रहस्य शरीर ही हे।

1 वही पृष्ठ 596

हठयोगी के लिए शरीर एक सजीव स्थूल द्रव्य का पिण्ड मात्र नहीं हे बल्कि आध्यात्मिक और भौतिक सत्ता के बीच एक गुह्य अहम सेतु है। हठयोगी के सम्पूर्ण लक्ष्य का सार इस रूप में प्रतिपादित कर सकते हे- यद्यपि वह स्वय इसे इन शब्दो मे प्रस्तुत करना नही चाहेगा कि वह इस स्थूल शरीर में आत्मा को कुछ निश्चित वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्वारा एक ऐसी शक्ति, ज्योति, पवित्रता एव स्वतत्रता तथा उत्तरोत्तर ऊर्ध्व स्तरों की ऐसी आध्यात्मिक अनुभूतियॉ प्रदान करने का यत्न करता है जो आत्मा के लिए, यहॉ सूक्ष्म शरीर में तथा विकसित कारण शरीर में निवास करने पर, स्वभावत ही सुलभ होगी।

वास्तव में हठयोग, अपने ही ढग से ज्ञान प्राप्त करने की एक प्रणाली है पर जहॉ वास्तविक ज्ञानयोग आध्यात्मिक साधना के रूप में क्रियान्वित किया गया सता का तत्व ज्ञान है अर्थात मनोवेज्ञानिक प्रणाली हे, वहा हठयोग सत्ता का विज्ञान हे अर्थात एक मनाभोतिक प्रणाली। योगमात्र अपनी प्रणाली में साधना के तीन मूल तत्वों के द्वारा अगसर होता हे उनमे पहला हे शुद्धि अर्थात हमारे भौतिक, नेतिक और मानसिक सस्थान से सत्ता की शक्ति को मिश्रित और अनियमित क्रिया से जो भी भूले, गडबडिया और बाधाएँ उत्पन्न होती हे उन सबको दूर करना। दूसरा है एकाग्रता अर्थात एक निश्चित लक्ष्य के लिए सता को उस शक्ति को अपने अन्दर पूर्ण उत्कर्ष तक ले जाना तथा प्रभुत्व और आत्मनिर्दशन के साथ उसका उपयोग करना। तीसरा है मुक्तता अर्थात मिथ्या और सीमित लीला में व्यष्टि भावापन्न शक्ति की जो सकीर्ण और दु खमय ग्रन्थियॉ हमारी प्रकृति के नियम के रूप में कार्य करती है उनसे अपनी सत्ता को मुक्त करना। हमारी यह मुक्त सत्ता हमे परम देव के साथ एकत्व या मिलन प्राप्त कराती हे, इस मुक्त सत्ता का उपभोग ही हठयोग की परम परिणति है इसीलिए योग किया जाता हे। ये तीन अनिवार्य सोपान हे और इसी प्रकार तीन उच्च उन्मुक्त ओर असीम स्तर भी हे जिनकी ओर ये सोपान आरोहण करते है और हठयोग अपनी समस्त साधना में इन्हें दृष्टि में रखता हे।

जिस पकार हठयोगी के लिए सब बन्द द्वारों की कुजी शरीर और प्राण है उसी प्रकार राजयोग में द्वारो की कुजी मन हे।[1] पर क्योंकि दोनों में हठयोग में पूर्ण रूप से और राजयोग की प्रचलित प्रणाली में आशिक रूप से यह माना जाता है कि मन शरीर ओर प्राण पर अवलम्बित हे अतएव दोनो ही प्रणालियों में आसन और प्राणायाम का अनुष्ठान समविष्ट हे, पर एक मे ये सम्पूर्ण क्षेत्र पर अधिकार किये रहते है, पर दूसरी में इनमे से प्रत्येक केवल एक ही सरल प्रक्रिया तक सीमित रहता है और दोनों का सम्मिलित प्रयोजन एक सीमित और मध्यवर्ती कार्य को ही पूरा करना

1 वही पृ 615

होता है। योग का मनोभौतिक विज्ञान हमारे लिए मुक्ति साधित कर सकता है क्योंकि वह इस बात को ध्यान में रखता है कि हमारी स्थूल सत्ता के पीछे एक चैत्य या मानसिक शरीर है और हमारा यह भौतिक शरीर स्थूल आकार में उसकी एक प्रकार की प्रकृति है: और उस मानसिक शरीर के द्वारा वह भौतिक शरीर के उन रहस्यों को खोज सकता है जो निरे भौतिक अनुसन्धान के द्वारा प्रकट नहीं हो सकते। इस मानसिक या चैत्य शरीर को आत्मा मृत्यु के पश्चात भी धारण किये रहती है, इसमें एक प्रकार की सूक्ष्म प्राण शक्ति भी है जो इसके अपने सूक्ष्म स्वभाव और उपादान के अनुरूप है। राजयोग भी प्रणायाम का उपयोग करता है उन्हीं प्रधान मानसिक उद्देश्यों के लिए करता है जिनके लिए हठयोग परन्तु अपने सम्पूर्ण सिद्धान्त में से एक मानसिक पद्धति होने के कारण, यह उसे अपने क्रियात्मक अभ्यासों की श्रंखला में केवल एक अवस्था के रूप में तथा एक अत्यन्त परिमित सीमा तक तीन या चार व्यापक प्रयोजनों के लिए ही प्रयुक्त करता है।[1] यह आसन और प्राणायाम से आरम्भ नहीं करता, बल्कि पहले मन की नैतिक शुद्धि के लिए आग्रह करता है। यह प्रारम्भिक साधन परम महत्वशाली है, इसके बिना शेष राजयोग का मार्ग कष्टों और बाधाओं से संकुल और प्रत्याशित मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक संकटों से पूर्ण हो सकता है। उसकी प्रचलित प्रणाली में यह नैतिक शुद्धि पाँच यम और पाँच नियम इन दो वर्गो में विभक्त है। इनमें से यम व्यवहार सम्बंधी नैतिक आत्म संयम के नियम है। जैसे सत्य-भाषण करना, पीड़ा पहुँचाने या हिंसा या चोरी करने से विरत होना (सत्य, अहिंसा, अस्तेय) आदि पर वास्तव में उन्हें नैतिक आत्म संयम एवं पवित्रता की सामान्य आवश्यकता के कुछ मुख्य लक्षणमात्र समझना होगा। अधिक व्यापक रूप में यम का अभिप्राय है ऐसा कोई भी आत्म अनुशासन जिसके द्वारा मनुष्य के राजसिक अहंभाव और इसकी उत्तेजनाओं एवं कामनाओं को विधित तथा शान्त करके पूर्ण रूप से मिटा दिया जाय। इसका उद्देश्य नैतिक शान्ति अर्थात आवेश शून्य स्थिति को उत्पन्न करना है और इस प्रकार राजसिक मनुष्य में अहंभाव की मृत्यु के लिये तैयारी है। इसी प्रकार नियम का अभिप्राय कुछ एक नियमित अनुष्ठानों के द्वारा मन को अनुशासन में लाता है जिनमें से सर्वोच्च है भागवत सत्ता का ध्यान करना (ईश्वर प्राविधान)। उनका उददेश्य सात्विक शान्ति और पवित्रता को जन्म देना तथा एकाग्रता के लिए तैयारी करना है जिसकी नींव पर शेष सारे योग का सुरक्षित रूप से अनुष्ठान किया जा सकता है।

राजयोग की एकाग्रता चार क्रमिक अवस्थाओं में विभक्त है, इनमें से आरंभिक अवस्था है मन और इन्द्रियों दोनों को वाह्य वस्तुओं से पीछे खींच लेना (प्रत्याहार)

1. वही पृ० 618

इससे अगतो है अन्य सब विचारों आर मानसिक क्रियाओं को त्यागकर चित्त को एकाग्रता क एक ही विषय पर स्थिर करना (धारणा) इसके बाद है - मन का इस विषय में सतत निमग्न रहना (ध्यान) अतिम हे - चेतना का पूर्ण रूप से अदर चल जाना जिसके द्वारा यह समाधिक के एकत्व में पहुँचकर समस्त वाह्य मानसिक क्रिया से बेसुध हो जाती है। इस मानसिक साधन का वास्तविक लक्ष्य मन को वाहय तथा मानसिक जगत स हटाकर भगवान के साथ मिलन की अवस्था में ले जाना है। अतएव पहली तीन अवस्थाओं म किमी मानसिक साधन या अवलम्बन का प्रयोग करना होता हे जिसके द्वारा एक विषय से दूसरे की ओर इधर-उधर दौडते रहने का अभ्यासी मन, एक ही विषय पर स्थिर हो जाय, और वह कोई ऐसा विषय होना चाहिए जो भगवान के विचार को निरूपित करे।

महर्षि अरविन्द विभिन्न योगों का विवेचन करते हुए और उसका समन्वय करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि पूर्ण योग के लिए राजयोग और हठयोग की विशिष्ट विधियॉ प्रगति की किन्हीं विशेष अवस्थाओं में समय-समय पर उपयोग हो सकती है, पर वे अनिवार्य नहीं है। यह ठीक हे कि उनके प्रधान लक्ष्यों को योग के सर्वांगीण स्वरूप में सम्मिलित करना होगा। पर इन्हें अन्य साधनों से भी प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि पूर्णयोग की विधियॉ मुख्यत आध्यात्मिक होनी चाहिए, और भौतिक विधियां अथवा नियत चेत्य या चेत्य-भोतिक प्रक्रियाओं पर बडे परिमाण में निर्भर रहने का अर्थ उच्चतर क्रिया का स्थान निम्नतर क्रिया को देना होगा।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन को देखते हुए स्पष्ट है कि महर्षि अरविन्द पूर्णतया पातञ्जल योगदर्शन के अनुयायी हें। उनके द्वारा निर्दिष्ट योग का अर्थ है मानव व्यक्तित्व तथा विश्वव्यापी सत्ता का मिलन। उनकी राजयोग की धारणा पतञ्जलि द्वारा विवेचित असम्प्रज्ञात समाधि से सर्वथा अभिन्न है। उनके द्वारा निर्दिष्ट योग के तीन सोपान - शुद्धि, एकाग्रता ओर मुक्तता - मूल रूप में योगसूत्र में ही विस्तार में विवेचित हे। हठयोग का भी मूल तो योगसूत्र ही है पर अन्तर इतना है कि जहॉ पतजलि शरीर तथा शारीरिक दृढता को साधन मात्र मानते हैं हठयोगी शारीरिक दृष्टता को साधन मानते हुए भी उस पर अधिक महत्व प्रदान करता दिखाई देता है। महर्षि अरविन्द दोनो के समन्वय के समर्थक है। जिस दिव्य चेतना को अरविन्द ज्ञानयोग का लक्ष्य बताते है वही पतजलि की सम्प्रज्ञात समाधि है। इसमें प्रवेश करने के पश्चात साधक राजयोग में प्रवेश पाता है जो असम्प्रज्ञात समाधि का ही नामान्तर है।

1 वही पृष्ठ 618

3 महर्षि महेश योगी

महर्षि महेश योगी ज्योतिर्मठ के ब्रह्मलीन जगद् गुरू शकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी के शिष्य हैं। महेश योगी जी के 'भावातीत ध्यान' और उसके सैद्धान्तिक पक्ष 'चेतना विज्ञान' से समग्रत विश्व परिचित है। सर्वप्रथम सैद्धान्तिक पक्ष चेतना विज्ञान का विवेचन अपेक्षित है जोकि इस प्रकार है - चेतना के दो स्तर हैं - एक क्रियाशील चेतना तथा दूसरी शान्त चेतना। व्यवहारिक (क्रियाशील) चेतना ही शान्त होकर भावातीत (चतुर्थ) चेतना की स्थिति को प्राप्त करती है। ''तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्'' (योग सूत्र 1/3) शान्त चेतना में मन अपने स्वरूप में, अपने आप में स्थित हो जाता है। इस स्थिति में किसी भी पदार्थ का चित्र चेतना में नहीं आता है और चेतना अपने आप में जाग्रत है। इस जाग्रत चेतना में समस्त सम्भावनाए होती है। समस्त सम्भावना होने के कारण ही जो भी चेतना का स्पन्दन होगा- एक सूक्ष्य स्पन्दन होगा, जो समस्त सम्भावनाओं में से एक सम्भावना के लिए स्पन्दन होगा। तुरन्त उसकी पूर्ति के लिए शब्द, अर्थ के रूप में प्रगट होकर इच्छा की पूर्ति कर लेगा। चचल मन, शान्त चेतना- चेतना की लहर और लहर का शान्त हो जाना। चेतना की स्थिति में अनन्त सामर्थ्य है अखण्ड ज्ञान है, जीवन की पूर्णत है।

एक तो शब्द होता है, उस शब्द का अर्थ होता है और उस अर्थ का भाव होता है और उस भाव की भावातीत सत्ता होकर अनन्त, अखण्ड सत्ता में अपना जीवन होता है। तो केवल हम भाव समझते है। भाव समझकर भावातीत होकर सारे ब्रह्माण्ड का जो वृक्ष है उसकी सत्ता होकर, उसका रस होकर शुद्ध सत्ता स्वरूप होकर आनन्द लते है।

पहले शुद्ध चेतना स्पन्दन हीन चेतना, उस चेतना में हल्का सा स्पन्दन और उस हल्के से नाम के स्पन्दन में नाम के रूप का प्रकट होना, यह सारी सृष्टि के प्रकट होने का क्रम है। एक अखण्ड अनन्त शाश्वत चेतना और उसका स्पन्दन जो है वही शुद्ध ज्ञान का रूप है। वेद- उस वेद का रूप यह जगत है। तब नाम और रूप जो चेतना का स्पन्दन है, वह पूर्ण ज्ञान का स्पन्दन हुआ और स्पन्दन होने से शब्द का रूप हुआ और शब्द होने से अर्थ का रूप प्रकट हुआ। उसी शुद्ध चेतना से सूक्ष्माति सूक्ष्म स्पन्दन हुआ उसी को कहते है ''यस्य निश्वसित वेद''- वेद जिसका विश्वसित रूप है, जिसका विश्वास है उससे सहज स्वाभावित रूप से पूर्ण ज्ञान प्रस्फुटित होता है।

जैसे जैसे चेतना भाव की सूक्ष्मता में जाती है- बाहर का सब भूलता जाता है अर्थात अनुभवकर्ता ज्ञानकर्ता का कर्तापन समाप्त हो जाता है और जब सब समाप्त हो जाता है तब ज्ञानकर्ता अपने आप में आ जाता है और वह निर्भय हो जाता है। यह भावातीत ध्यान शैली का स्वरूप है कि चचलता शान्त होते होते शान्त हो गयी।

यही चेतना की शान्त स्थिति भावातीत स्थिति हे इसी को चतुर्थ चेतना कहते हे- जाग्रत- स्वप्न- सुषुप्ति से परे शुद्ध शान्त। बाहर से चेतना शान्त हो गयी लेकिन भीतर से जाग्रत हे। एसी शान्त नही हुई भीतर से भी सो गयी, बाहर से भी सो गयी यह तो गाढा नींद हो गयी। भावातीत ध्यान से भावातीत चेतना भीतर से जाग्रत अवस्था में ही रहती है यही भावातीत चेतना अर्थात चतुर्थ चेतना है।

जब जाग्रति-स्वप्न-सुपुप्ति तीनों चेतनाएँ तुरीया की चेतना के साथ आती जाती है तब यह चतना बराबर बनी रहती हे 'यह चौबीसो घण्टे जब वह शुद्ध, स्वत प्रमाणित चेतना, स्वय भू चेतना, सर्वव्यापक अखण्ड चेतना सत्ता जब स्थायी हो जाती है तब उसी शुद्ध चेतना के प्रागण मं जाग्रति, स्वप्न, तथा सुषुप्ति ये तीनों चेतनाए आती जाती रहती हे लेकिन वह विशुद्ध चेतना की अखण्डता बनी रहती हे। उसे तुरीयातीत चेतना कहते हे। तुरीयातीत चेतना और जाग्रत दोनो चेतनाए साथ-साथ रहे अर्थात चेतना की शान्त स्थिति और क्रियाशील स्थिति दोनों स्थितिया बनी रहती है, इसी को कहत है 'जीवन मुक्ति' की चतना। अर्थात जीवन भी है मुक्ति भी है। जीवन का लक्षण है क्रिया, मुक्ति का लक्षण है स्तब्धता। स्वत स्वरूपता तो है जीवन और मुक्ति तुरीयातीत स्थिति अर्थात तुरीय स्थिति जागृत-स्वप्न और सुषुप्ति की स्थिति के साथ-साथ आये जाये। बराबर भावातीत ध्यान का अभ्यास करके एक बार तुरीया चेतना म जाते है। मन की क्रिया शान्त होते होते तुरीय में चले गये। न कोई विचार है न मन्त्र है भीतर की जागृति बनी रहती है। शान्ति की चेतना और क्रिया की चेतना दोनो चेतनाए इकट्ठी होती ह इसमें एक व्यापक रूप है एक एक व्यक्ति रूप हे। इसी को तुरीयातीत चेतना कहते हैं।

जब हम मन, बुद्धि और भावना मं अन्तर करते है तब बुद्धि अधिक आधारभूत जान पडती हे। मन बुद्धि से अधिक स्थूल है इसलिए महेशयोगी जी ने बुद्धि और भावना की अपेक्षा मन की वृत्ति पर पहले विचार किया। इसके लिए भावातीत ध्यान की प्रक्रिया बतायी। यह भावातीत ध्यान को गोता लगाने के समान बताते हैं। मन स्थूल स्तर पर और बुद्धि सूक्ष्म स्तर पर होने के कारण जब हम मन के स्तर पर साधना आरम्भ करते है तब वह बुद्धि के स्तर को स्वय में व तत्काल भेदकर आगे बढ जाती हे। बुद्धि का कार्य निर्णय करना है और निर्णय करना एक सूक्ष्म प्रक्रिया है, हॉ या नही की। बुद्धि के स्तर पर कोई दुविधा नहीं होती। मन के स्तर पर बहुत दुविधा होती रहती हे। बुद्धि की स्थूल और सूक्ष्म सीमा होती है और स्थूल बुद्धि वही होती है जिसके निर्णय अस्थिर होते है। बुद्धि का सूक्ष्म स्तर वह होता है जिसके बिल्कुल सही निर्णय होते है परन्तु स्थूल और सूक्ष्म स्तरों को समझने के लिए मन का क्षेत्र बहुत अधिक उपयुक्त है। अत निष्कर्ष पर निक्ला कि मन की क्रिया का क्षेत्र बुद्धि की क्रिया के क्षेत्र से अधिक विस्तृत है इसलिए हमारे लिए

मन के स्तर से अभ्यास आरम्भ करें सूक्ष्म स्तरों का अनुभव करके उससे भी आगे का अनुभव करना अधिक सुविधाजनक और सरल हैं।

विचार के क्षेत्र की अपेक्षा भावना का क्षेत्र अधिक सूक्ष्म है। वह अनुभव के क्षेत्र की अपेक्षा कुछ अधिक स्थूल है। यथार्थ में वह अपनी चेतना का स्तर है जो विचार के स्तर का आधार है इसका अर्थ यह हुआ कि अनुभव का क्षेत्र विचारों के क्षेत्र का सचालन करता है।

जीवन के विकास का अर्थ है अधिक उन्नत हृदय और अधिक विकसित मन, जिससे उत्तम व्यवहार और अधिक मूल्यवान उपलब्धियॉ होती है। अधिक मूल्यवान उपलब्धियों का अर्थ है जीवन का उच्च स्तर। इस प्रकार जीवन विकसित होता है अत ये सभी साधन जो मन की अपेक्षा हृदय से अधिक सम्बन्धित है, उपयोगी और मूल्यवान है। जब हम कहते है कि मन का झुकाव आनन्द के और बडे क्षेत्र का अनुभव करने की ओर है तब हृदय उससे सम्बन्धित रहता है जैसे कि मन हृदय के लिए काम कर रहा है। मन बुद्धि के लिए भी काम करता है। मन बौद्धिक रूप से निर्णय लेने के लिए तथ्य सग्रह करता है। इसलिए स उचित और अनुचित का निर्णय होता है।

भावनात्मक साधना का यथार्थ उपयोग सीधे तुरीय चेतना के स्तर से आरम्भ होता है। यह स्वयमेव होने वाली क्रिया है। व्यक्ति स्वभावत विकास करता है। शरीर का स्वभाव है कि एकत्र हुये तनावों को दूर कर देता है। बाहरी वस्तु को बाहर फेंक देने का उसका स्वभाव है। मन के लिए सीमा में बाहरी वस्तुए है। मन का प्रमुख स्वभाव असीमता और अनन्ता है। इसीलिए मन का स्वभाव ही सीमाओं से दूर रहने का प्रयत्न करने का है। इसीलिए भावातीत ध्यान में मन असीमता की ओर स्वयमेव चला जाता है। किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है।

भावातीत ध्यान में मन के अधिक से अधिक आनन्द लेने के स्वभाव का उपयोग करते है। इसी तरह हृदय का भी स्वभाव अधिक आनन्द लेने का है और बुद्धि का भी स्वभाव अधिक आनन्द लेने का है। बुद्धि के सभी निर्णय अधिक आनन्द लेने के पक्ष होते है। बुद्धि के गुण, मन के विचार करने के गुण से बहुत अधिक भिन्न नहीं होते। केवल इतना ही है कि विचार करना एक स्थूल स्तर है कम परिष्कृत है जबकि निर्णय करना मानसिक क्रिया अधिक परिष्कृत क्षेत्र है।

भावातीत ध्यान एक गहरी भावनात्मक साधना है। मन की स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने की दिशा का निर्देश कौन करता है ? वह काफी बढे हुए आकर्षण का प्रत्यक्ष अनुभव करता है और वह हृदय के क्षेत्र की वस्तु है। यहॉ समता की अवस्था है जो हमें जीवन के पदार्थ विषयक ज्ञान के मार्ग में और भाव विषय ज्ञान के मार्ग में मिलता हैं भावातीत ध्यान जितना पदार्थात्मक है उतना ही भावनात्मक है। हम

भावनात्मक आधार से जीवन की पूर्णता की ओर पदार्थातमक आधार से सभी कर्मो के सगठन, समग्रता की बात कह सकते है।

जब हम मन्त्र का विचार करते है तब अपने को एक असीम चेतना की स्थिति में पाते है। वह इतनी रवत परिपूर्ण होती है कि हम सब कुछ भूल जाते हैं। हमें आनन्दमयी चेतना की उपलब्धि होती है जोकि जीवन की समस्त भावनात्मक प्रेरणा का लक्ष्य है। हम परमानन्द का अनुभव करते है और वह अधिक आनन्द पाना चाहते हैं। हम अपनी चेतना को आनन्द रूप ही रखना चाहते है इसीलिए भावातीत ध्यान शुद्ध रूप से पदार्थात्मक अनुभव के बढते हुये आकर्षण से निर्देशित होता है और वह मन को इतना आकर्षित करता है कि हम कह सकते है कि भावातीत ध्यान शुद्ध रूप से भावनात्मक भी है।

भावातीत ध्यान में मन स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता है। बहुत बार वह सही दिशा की ओर जाता है और स्थूल की ओर गलत दिशा में भी जाता है। जब मन उचित और अनुचित दिशा में जा सकता है और जब हम देखते है कि ध्यान में मन स्थूल से सूक्ष्य की ओर जाता है तब यह कह सकते है कि मन भावातीत ध्यान में अत्यन्त बुद्धि प्रधान होता है।

इस पकार भावातीत ध्यान अत्यन्त बुद्धि प्रधान साधना है। क्योंकि बिना बुद्धि के उपयाग के मन सही दिशा में नहीं जायेगा ओर वह अपनी क्रियाओं का अन्तिम लक्ष्म 'असीमता' प्राप्त नहीं कर पायेगा। भावातीत ध्यान बहुत पदार्थात्मक है वह बहुत भावात्मक है वह भावना एव बुद्धि प्रधान दोनो है। जीवन की पूर्णता में मन की पूर्णता, सभी अनुभवों की पूर्णता, बुद्धि की पूर्णता, भावनाओं की पूर्णता सभी सम्मिलित है। यह मार्ग न केवल उन सब व्यष्टि जीवन के विभिन्न पक्षों का ब्रह्माण्डी जीवन के स्तर तक विकास ही करना का है जहॉ पूर्ण क्षमता प्राप्त होती है, वरन इस पूर्ण तथा विकसित जीवन को जीने का भी है। भावातीत ध्यान व्यक्ति की पूर्ण क्षमता के विकसित स्तर पर जीवन जीने का ब्रह्माण्डी चेतना के स्तर पर जीवन जीने की योग्यता देता है।

इसीलिए भावातीत ध्यान में पूर्ण के भावनात्मक और बौद्धिक सभी मार्ग समाहित है। भावना के विकसित करने के और बुद्धि के विकसित करने के चाहे जो साधन हो कोई अन्तर नहीं पडता। इन सब अनेक मार्गो में भावातीत ध्यान ज्यादा लाभदायक है। चूकि जीवन के भावनात्मक स्तर के और जीवन के बौद्धिक स्तर के बहुत से मार्ग है तथापि भावातीत ध्यान का अभ्यास इन सब मार्गो के लाभ प्राप्त करा देता है। अत. अनेक मार्गो का स्वीकारत हुये भी यदि भावातीत ध्यान का अभ्यास करत है तो वह एक सर्व समाहित मार्ग है - सभी मार्गो के लक्ष्य को समाहित करता है। किसी मार्ग की कुशलता लक्ष्य की प्राप्ति में है।

महेश योगी ने कर्म के सिद्धान्त का विवेचन भावातीत ध्यान के माध्यम से प्रतिपादित किया हे जिससे कि मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त रहकर आत्मा में स्थित होकर कर्म करके स्वय को मुक्त कर सके। उक्ति है कि 'जैसा हम बोते है वैसा काटते हैं'। यह एक कहावत कर्म का पूरा सिद्धान्त उपस्थित करती है। इसलिए हम महान कार्य करना चाहते है और महान कार्य करने के लिए कर्ता को महान बनना पडता है (मन की असीमता और अनन्ता की स्थिति होती है) और अनन्त विस्तारित चेतना वाला कर्ता कुछ भी कर सकने में समर्थ होता है। कर्म का सारा दर्शन हमारे कर्म करने की योग्यता के चारो ओर घूमता है। इसीलिए कर्म करने की उक्ति है - 'योगस्थ कुरू कर्माणि'। समता की स्थिति में प्रतिष्ठित होकर कर्म करना चाहिए तथा आत्मा में स्थित होकर कर्म करना चाहिए।

आत्मा में स्थित होने का अर्थ है जीवन के अनन्त मूल्य में स्थित होना। जीवन की अनन्ता में स्थित होकर कर्म करना चाहिए इस स्थिति में कर्म करने से बडे कार्य करन के लिए बडा परिश्रम नहीं करना पडता है। एक शक्तिशाली व्यक्ति बिना प्रयास के बडा वजन उठा सकता है। एक कमजोर व्यक्ति उसी को बडा परिश्रम करके भी नहीं उठा सकेगा।

इसीलिए कर्ता को जीवन की अनन्त में स्थित होकर कर्म करना चाहिए क्योंकि इस अनन्त चेतना में मन स्थित होता है। जो प्रकृति के समस्त नियमों के आधार है। अव्यक्त चेतना सृष्टि ओर विकास के लिए प्रकृति के सभी नियमों का आधार है। जिस प्रकार अव्यक्त रस उन सभी नियमों का आधार है जो कि डण्ठल पत्ती, फल और फूल उत्पन्न करते है। उसी प्रकार प्रकृति के सभी नियम अव्यक्त सत्ता के स्तर पर क्रियाशील है।

जब हमारी चेतना उस अव्यक्त सत्ता के स्तर पर स्थित हो जाती है तब प्रकृति के अनन्त नियम हमारी सहायता को तत्पर हो जाते है। एक बार आत्मा में स्थित होने पर बिना प्रयत्न के सर्वशक्तिमान प्रकृति की सहायता मिलने लगती है। इसीलिए आत्मस्थ होकर कर्म करना चाहिए। भगवत गीता में कहा है "योगः कर्मसु कौशलम्" अर्थात कर्म में कुशलता ही योग है। मन की आत्मा के साथ योग की स्थिति ही कर्म की कुशलता है क्योंकि इसमें मन असीम शक्ति ज्ञान और आनन्द से कभी वचित नही होता जो कि उसने भावातीत अवस्था में प्राप्त किया था। यह कर्म की युक्ति या कर्म करने की कला है। कर्ता के अनन्त शक्तिमान बनने में ही कर्म की कला निहित है।

हम जो कुछ देखते करते या अनुभव करते है उससे हमारी अनन्ता की चेतना आच्छादित होती है। यही कर्म बन्धन कहलाता है। तुरीय चेतना से कर्म करने का दर्शन तभी है जब व्यक्ति की अनन्त चेतना कर्म करते समय भी सदा बनी रहे।

अनन्त चेतना को आत्म चेतना भी कहते है क्योंकि आत्मा अनन्त है। आन्तरिक सत्ता समय और स्थान से सीमित नहीं है। तो जब वह चेतना सदा बनी रहती है। तब कर्म आत्मा की अनन्ता को आच्छादित नहीं करते। जब कर्म की अनन्ता को आच्छादित नहीं करते तब आत्मा कर्म के बन्धनकारी प्रभाव से मुक्त रहती है।

कर्म में कुशलता का पूरा क्षेत्र भावातीत ध्यान की सरल और प्रयासहीन विधि के एक ही चरण में उपलब्ध होता है मनुष्य जो प्राप्त करता है वह है सर्व शक्तिमान प्रकृति के पूरे सहयोग के साथ कर्म पर अधिकार। उसे प्रकृति पर अधिकार करने की सीमा तक प्रकृति का सहयोग प्राप्त होता है। अत दोनो पक्ष व्यक्ति का पूर्ण विकास और प्रकृति का पूर्ण सहयोग दोनो साथ-साथ कर्म में कुशलता प्रदान करते है जिसका परिणाम है कर्म पर अधिकार और कर्म के बन्धनकारी प्रभाव से मुक्ति। इससे हम हर तरह के कर्म के स्वामी हो जाते है। इस प्रकार महेश योगी जी से भावातीत ध्यान के द्वारा आत्मा में स्थित होकर कर्म करने की युक्ति की बात कही है जिससे मनुष्य कर्म बन्धन से सदैव मुक्त रहता है।

महर्षि महेश योगी के उपर्युक्त विवेचन के अनुशीलिन से स्पष्ट है कि उनका भावातीत ध्यान रहस्यमय अधिक है। उसका महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योगदर्शन के साथ दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

4 आचार्य रजनीश

आचार्य रजनीश विश्व के अद्वितीय रहस्यदर्शी चिन्तक और अभिनव विचारक के रूप में जाने जाते है आचार्य रजनीश ने पतन्जलि योग के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये है उनका विवेचन करने से पहले यह विवेचन ज्यादा महत्वपूर्ण है कि उन्होंने पतजलि को किस दृष्टिकोण स दखा है। आचार्य रजनीश ने जिस दृष्टि से महर्षि पतन्जलि को देखा हे वह दृप्टि कोण उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है - पतजलि अत्यन्त विरल व्यक्ति हें वे प्रबुद्ध है बुद्ध, कृष्ण और जीसस की भाति, महावीर, हजरत मोहम्मद साहब और जरथुस्त्र की भाति, लेकिन एक ढग से अलग है। बुद्ध महावीर, हजरत मोहम्मद साहब, जरथुस्त्र- इनमें से किसी का दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं हे। वे महान धर्म प्रवर्तक हें, उन्होंने मानव-मन और उसकी सरचना को बिल्कुल बदल दिया, लेकिन उनकी पहुँच वेज्ञानिक नहीं है। पतजलि प्रबुद्ध-पुरूषों की दुनिया के आइस्टीन हे। वे अदभुत घटना है। पतजलि सबसे बडे वैज्ञानिक हे अन्तर्जगत के। उनकी पहुँच एक वैज्ञानिक मन की है। वे कोई कवि नहीं है और इस ढग से वे बहुत विरल हे क्योंकि जो लाग अन्तर्जगत में प्रवेश करते है, वे प्राय कवि ही हाते हैं सदा । जो बहिजगत में प्रवेश करते है, अक्सर हमेशा वैज्ञानिक होते है। पतञ्जलि एक दुर्लभ पुष्प हे। उनके पास वैज्ञानिक मस्तिष्क है, लेकिन उनकी यात्रा भीतरी। इसीलिए वे पहले और अतिम वचन बन गये। वे ही आरम्भ और वे ही अन्त हे। पॉच हजार वर्षो में काई उनसे ज्यादा उन्नत नहीं हो सका। लगता है कि उनसे ज्यादा उन्नत हुआ ही नहीं जा सकता। वे अन्तिम वचन ही रहेंगे। क्योंकि यह जोड ही असम्भव है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना और आन्तरिक जगत में प्रवेश करना करीब असम्भव सम्भावना है। व एक गणितज्ञ, एक तर्क शास्त्रज्ञ की भाति बात करते हें वे है हरोक्लतु जैसे रहस्यदर्शी। उनके एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करो। यह कठिन होगा। क्योंकि उनकी शब्दावली तर्क की, विवेचन की है, पर उनका सकेत प्रेम की ओर, मस्ती की ओर, परमात्मा की ओर है। उनकी शब्दावली उस व्यक्ति की हे, जो वेज्ञानिक प्रयोगशाला में काम करता है, लेकिन उनकी प्रयोगशाला आन्तरिक अस्तित्व की है। अत उनकी शब्दावली द्वारा भ्रमित न हो और यह अनुभूति बनाय रखो कि वे परमकाव्य के गणितज्ञ है। वे स्वय एक विरोधाभास हे। लेकिन वे विरोधाभासी भाषा हरगिज प्रयुक्त नहीं करते। कर नहीं सकते। वे बडी मजबूत तर्क सगत पृष्ठभूमि बनायें रखते है। वे विश्लेषण करते, विच्छेदन करते, पर उनका उददेश्य सश्लेषण है। वे केवल सश्लेषण करने को ही विश्लेषण करते है। तो हमेशा ध्यान रखना कि ध्येय तो है परम सत्य तक पहुँचना, केवल मार्ग ही है वेज्ञानिक। इसलिए मार्ग द्वारा दिग्भ्रमित मत होना। इसलिए पतजलि

ने पश्चिमी मन को बहुत ज्यादा आभावित किया है। पतजलि सदैव एक प्रभाव बने रहे हे जहाँ कहीं उनका नाम पहुँचा हे, वे प्रभाव बने रहे हैं क्योंकि तुम उन्हें आसानी से समझ सकते हो। लेकिन उन्हें समझना ही पर्याप्त नहीं है। वे बुद्धि से बाते करते है, पर उनका उददेश्य, उनका लक्ष्य हृदय ही हे। वे चाहते हैं कि तुम तर्क के द्वारा तर्क के पार चले जाओ।

इस प्रकार आचार्य रजनीश पतजलि के तीखे तीरों का सहारा लेकर उनकी नोक से व अन्तर-कोष्ठ के ना-वापसी वाले मन के चौथे अवचेतन द्वार को मुक्त करने में जुटे हे। वे हमें अपनी आदतों ओर अभ्यासों के विरूद्ध लडाई के लिए सन्नद्ध करते हे। वैज्ञानिक उपलब्धियों वाली इस भविष्यान्ध शताब्दी को जिसमें पागल बुद्धिजीवियों की सभ्यता दीनता ओर हीनता ओर समृद्धि से भरी है तथा जिनमे तनाव ग्रस्त भटकन ओर अहकार पूर्ण रिक्तता मनुष्य की पहचान बनी है, वे नये जीवन के सन्दर्भ में आश्वस्त कराते हैं।

यह विवादास्पद दुस्साहसी और विद्रोही विचारक मनुष्य जाति के बाहरी-भीतरी ससार का पहली बार व्यापक सर्वेक्षण कर, मन के आन्तरिक रचनातन्त्र को समझ कर, शास्त्रीय उलझाव और भटकाव की प्रवचकतहो को काट कर तथा सच्चे-सीधे दो टूक तथ्य सामने सरकाकर 'पतजलि की तीसरी सम्भावना-युद्ध और पलायन के बोच जागरूकता को प्रतिष्ठित करते हें। ताकि साक्षी खडा हो जाए, वैराग्य की पहली अवस्था।

अब आचार्य रजनीश ने योग के सम्बध में जो विचार व्यक्त किये है उनका विवेचन इस प्रकार है - योग सत्य को उदघाटित करने की एक पद्धति है, योग तो एक विधि हे स्वप्न विहीन मन तक पहुचने की। योग विज्ञान है अभी और यहाँ होने का। योग का अर्थ है कि अब तुम तैयार हो कि भविष्य की कल्पना न करोगे। इसका अर्थ है कि तुम्हारी वह अवस्था है कि अब तुम न आशाए बाधोगे और न स्वय की सत्ता से, वर्तमान क्षण से आगे छलाग लगाओगे। योग का अर्थ है सत्य का साक्षात्कार जैसा वह हे। योग का अर्थ हे कि अब कोई आशा न बची, अब कोई भविष्य न रहा, अब कोई इच्छा न बची। अब व्यक्ति तैयार है उसे जानने के लिए, जो है। अब कोई रूचि न रही इस बात में कि क्या हो सकता है क्या होना चाहिए या कि क्या होना चाहिए था। जरा भी रस न रहा। अब केवल उसी में रस है जो है। क्योंकि केवल सत्य तुम्हें मुक्त कर सकता है, केवल वास्तविकता ही मुक्ति बन सकती हे।

योग में परिपूर्ण निराशा की जरूरत हे। ऐसी निराशा को बुद्ध ने दु:ख कहा है और अगर सचमुच ही तुम्हें दु:ख हे, तो आश मत बनाओ, क्योंकि तुम्हारी आशा दु:ख को ओर आगे बढा देगी। तुम्हारी आशा एक नशा है जो तुम्हें और कहीं

नहीं, केवल मृत्यु तक जाने में सहायक हो सकती है। अत पूर्ण रूप से आशा रहित होना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि योग तो अन्तस् की ओर मुडना है। यह पूरी तरह विपरीत मुड़ना है। जब तुम भविष्य में गति नहीं कर रहे हो, जब तुम अतीत में भटक नहीं रहे हो, तब तुम अपने भीतर की ओर गतिमान होने लगते हो, क्योंकि तुम्हारा अस्तित्व अभी और यही है वह भविष्य में नहीं है। तुम अभी और यहाँ उपस्थित हो अब तुम यथार्थ में आनन्दित हो सकते हो। तब मन का इसी क्षण में उपस्थित रहना जरूरी है।

आचार्य रजनीश कहते हे कि योग कोई धर्म नहीं है। योग हिन्दू नहीं है। योग मुसलमान नहीं है। योग तो एक विशुद्ध विज्ञान है - गणित फिज़िक्स या किमिस्ट्री की तरह। योग विज्ञान है पतजलि इसके लिए अग्रगण्य है। यह पुरूष विरल है। किसी अन्य के साथ पतजलि की तुलना नहीं की जा सकती। मनुष्यता के इतिहास में धर्म को पहली बार विज्ञान की अवस्था तक लाया गया। पतजलि ने धर्म को मात्र नियमों का विज्ञान बना दिया, जहाँ विश्वास की जरूरत नहीं है।

सब तथाकथित धर्मो का विश्वासों की जरूरत रहती है। धर्मो में परस्पर कोई विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर है तो उनकी अलग-अलग धारणाओं में और विश्वासों। योग किसी बात पर विश्वास करने को नहीं कहता। योग कहता है- अनुभव करो। जैसे विज्ञान कहता है - प्रयोग करो । प्रयोग और अनुभव एक ही बात है उनकी दिशायें अलग-अलग है। प्रयोग का अर्थ है कि तुम कुछ बाहर की ओर कर रहे है अनुभव का अर्थ है कि तुम कुछ अपने भीतर कर रहे हो। अनुभव है एक आन्तरिक प्रयोग। विज्ञान का अर्थ है- 'जो है' उसका अनुभव करना, किसी विश्वास की जरूरत नहीं तो दूसरी बात याद रखनी है कि योग अस्तित्वगत है, अनुभव जन्य है। वहाँ किसी विश्वास की अपेक्षा नहीं किसी निष्ठा की आवश्यकता नहीं, वहाँ केवल साहस चाहिए प्रयाग करने का। लेकिन इसी की तो कमी है।

विश्वास आसान है क्योंकि उसमें वास्तव में कुछ करना नहीं पडता। याग विश्वास नहीं है। योग एक अस्तित्वगत प्रयोग है। किसी विश्वास के द्वारा सत्य को नहीं प्राप्त किय जा सकता, उसे अपने ही अनुभव द्वारा तथा अपने ही बोध द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है अर्थात आमूल रूप से रूपातरित होना होगा।

आचार्य रजनीश योग को मृत्यु तथा नव जीवन दोनो ही मानते है। नये का निर्माण तब तक सम्भव नहीं है जब तक पुराना नष्ट न हो जाए। वृक्ष बनने के लिए बीज को नष्ट होना ही पडेगा। अर्थात नवजीवन, मृत्यु की पूर्वपेक्षा पर ही आधारित है। और मृत्यु जीवन की विरोधी नहीं बल्कि पूरक है। योग दोनो है- मृत्यु भी और जन्म भी।

योग व्यक्ति के अस्तित्व स एव जडो स सम्बन्धित हे। वह दार्शनिक नहीं हे। इसलिए हम पतजलि के साथ चितन-मनन नहीं करगे। पतजलि के साथ हम जीवन के और उसके रूपान्तरण के परमनियमों को जानने का प्रयत्न करेंगे। पुराने की मृत्यु और सर्वथा नये के जन्म के नियमों को अतस की एक नव लयवद्धता की कीमिया को जानने का प्रयत्न करना पडेगा। इसलिए आचार्य रजनीश योग को एक विज्ञान मानते है।

योग दिव्य सत्ता के साथ मन का मिलन ह इसीलिए इसे योग कहा जाता है क्योंकि योग का अर्थ है मिलना दो का जुडना। योग का अर्थ है अहकार का गिर जाना। अहकार ही बीच में बाधा हैं और जिस क्षण अहकार को गिरा दिया जाता है, व्यक्ति दिव्य सत्ता से जुड जाता है। अहकार ही हमे दिव्य सत्ता से अलग रखता है। पतजलि कहते हैं कि योग मन का अवसान हे, समाप्ति है। योग अन्मन होने की अवस्था हे।

निष्कर्षत आचार्य रजनीश योग को एक विज्ञान के रूप में लेते हैं क्योंकि विज्ञान और योग दोनों हो प्रयाग तथा अनुभव पर आधारित है योग एक विशिष्ट वैज्ञानिक पद्धति है क्योंकि इसमें याग का साधक ही स्वय प्रयोगकर्ता अर्थात अनुभवकर्ता तथा प्रयोग की विषयवस्तु बनकर अन्तर्जगत में प्रवेश करता हे। उसकी आन्तरिक अस्तित्व की अनुभूति ही प्रयोग की विषय वस्तु है। प्रेम, आनन्द और मस्ती इस अनुभूति के फल हे। आचार्य का यह मत सुसगत है कि योग सत्य को उदघाटित करने की तथा वर्तमान अस्तित्व के अनुभूति की पद्धति है। अभी और यहाँ होने की अनुभूति समस्त भविष्यगत आशाओं और कल्पनाओं से मुक्त कर देती है। क्योंकि आशाए दुख की जननी हे। योग हमको हमारे अतीत और भविष्य दोनों से हटाकर अन्तर्जगत की यात्रा पर गतिमान करता है जो अभी और इसी वर्तमान क्षण में प्रवाहित हो रही है चेतना का यह असाधारण अन्तर्मुखी प्रवाह वर्तमान अस्तित्वगत सत्य का साक्षात्कार कराता है प्रश्न उठता हे कि वह कौन सा सत्य है कौन सा यथार्थ है जिस का यौगिक अनुभूति में हम साक्षात्कार करते है। आचार्य के अनुसार वह यथार्थ है प्रतिपल आनन्दपूर्ण अस्तित्व की जहाँ काव्यात्मकता है लेकिन काव्य का विरोधाभास नहीं। आचार्य रजनीश की व्याख्या योग की परम्परागत स्थूल-व्याख्या की अपेक्षा अधिक यथार्थ हे जहाँ योग की अनिवार्य अवस्था ध्यान एक तलवार की तरह होता है जो समस्त ससार को काट गिराता है लेकिन अपने को बचाता है आचार्य के अनुसार यह आनन्दित चेतना का प्रवाह हे। जो प्रेमोत्सव में सचरित होती है।

आचार्य का यह सुसगतमत हे कि याग विश्वास नहीं है यह एक अनुभव है अपना अनुभव हे जबकि विश्वास दूसरे के अनुभव पर आधारित है जो अन्धविश्वास की ओर एक कदम हे। याग अस्तित्वगत अनुभव है।

जहॉ मृत्यु तो है लेकिन एक नव जीवन के रूप में जीवन का रूपान्तरण है। जिस क्षण दिव्यता की अनुभूति होती है। अहकार स्वय गिर जाता है। इसे गिराया नहीं जाता है बल्कि बहुमूल्य के प्राप्त होने पर तुच्छ छूट ही जाता है। समस्त दार्शनिक चिन्तनों का अवगम हो जाता है। जिस प्रकार योग में जीवन प्रतिपल एक नयी अनुभूति है उसी प्रकार आचार्य के योग की व्याख्या भी प्रतिपल नवीन है।

आचार्य रजनीश ने महर्षि पतजलि की महानता और उनके द्वारा प्रतिपादित योगदर्शन की महत्ता का जेसा मूल्याकन किया हे वह अनुपम होते हुए भी सत्य है। उसमें कहीं किसी प्रकार की अत्युक्ति नही हे। आचार्य रजनीश प्रशसा के पात्र है इसलिए कि उन्होने पतजलि और उनकी योगविषयक कृति को उचित महत्व प्रदान किया। इनसे पूर्ववती अथवा परवर्ती किसी भी योगाचार्य ने इतने उन्मुक्त हृदय से योगसूत्र अथवा उसके कर्ता की सराहना नहीं की हे। योग को भौतिक विज्ञानों के समकक्ष रखते हुए दोनो के बीच के सूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करना उनके जैसे सूक्ष्मदर्शी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले आचार्य ही कर सकते है। साथ ही उनके द्वारा उपस्थापित 'योग' की विविध प्रकार की व्याख्या भी चिन्ताकर्षक किन्तु सत्य है। तथा पतजलि सम्मत हे।

चतुर्थ अध्याय

योगसाधना तथा उसका मानवीय कल्याण में प्रयोग

योग साधना तथा उसका मानवीय कल्याण में प्रयोग

मनुष्य जीवन का सर्वोपरि उद्दश्य धर्म अर्थ, काम ओर मोक्ष की प्राप्ति है। इन चारों को पाने का वास्तविक साधन पूर्ण स्वास्थ्य हे। क्योकि अस्वस्थ मनुष्य न तो धर्म का यथावत पालन कर सकता है ओर न ही उसके लिए काम का आनन्द भोगना ही सम्भव हैं मोक्ष की तो कामना ही व्यथ हे । इसीलिए कहा गया है -
शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम्।

बहुत लोग भारी भरकम शरीर को भी स्वस्थ मान लेते है। तो कुछ लोग सोंचते है कि शरीर में किसी रोग के कीटाणु न हों वही स्वस्थ है। किन्तु ये दोनों बाते पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा में नहीं आती हे। आयुर्वेद में पूर्ण स्वास्थ्य के लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं वही मनुष्य पूर्ण स्वस्थ हे जिसके शरीर में तीनों दोष अर्थात्वात, पित्त, कफ, सम हो जिसकी अग्नि सम हो अर्थात् मदाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, समस्त धातुए रस रक्त मोक्ष भद, अस्थि, मज्जा , वार्य सम हो, मल अर्थात, टट्टी पेशाब, पसीना , श्वास निकलाने वाली प्रणाली सही कार्य करती हो और मन, इन्द्रिया तथा आत्मा सदा प्रसन्न रहे। ''

महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रणीत योगसूत्र में वर्णित अष्टाग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि का साधन पाद के अन्तर्गत विधान किया हे जिसकी साधना धैर्य युक्त एव नियमितता से करने वाले साधक का पूर्ण स्वास्थ्य निश्चित प्राप्त हो जाता हे। किन्तु वर्तमान भोतिकवादी युग में प्रकृति से विमुखता भोगवाद का बढावा एव दिन प्रतिदिन दमनात्मक चिकित्सा की औषधियों के प्रचार एव प्रसार के कारण आदर्श स्वास्थ्य स न केवल लोग वचित होते जा रहे हैं, बल्कि दिन प्रतिदिन अनेक प्रकार के रोगो स ग्रसित होते जा रहे हैं। इन समस्त रोगों से छुटकारा पाने का सही उपाय हे। रोगों क मूल कारणों की खोज करना, उन्हें दूर करते हुए उत्पन्न हुए विचारों का निकलना क्योंकि कारण को हटाये बिना कारण फल नहीं मिटता हे। हमारे शरीर की प्रकृति में जब विकार उत्पन्न हो जाते है तो शरीर रोग ग्रस्त हो जाता हे। ये विकार पॉच प्रकार के होते है- 1 मल विकार 2 रक्त विकार 3 नाडी विकार 4 मन विकार 5 वृद्धि विकार ।

---

1 सम दोष समाग्निश्च समधातु मलक्रिया ।

प्रसन्नात्मन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधपत ।। (सुश्रुत) उद्धृत सुभाषितमाहित्यम् पृष्ठ23

इस सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय योगियों ने अपने चिन्तन एवं अनुभव के द्वारा '' शोधन योग '' की खोज की जिसके अन्तर्गत उन्होंने षट्कर्म का विधान किया। इस शोधन योग के द्वारा इसका लक्ष्य था केवल्य प्राप्ति किन्तु आधुनिक भौतिकवादी वैज्ञानिक विकासशील समाज मे शोधन योग को एक चिकित्सा पद्धति के रूप में अपनाया गया जिसके अन्तर्गत पट्कर्म चिकित्सा को एक साधन के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। ये पटकर्म निम्नलिखित है।

1 नेति[2] 2 वस्ती 3 धौति 4 नौलि 5 त्राटक 6 कपाल भाति

(क) षट्कर्म

1 नेति हमारे शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंक हमारा जिसके अन्तर्गत मस्तिष्क, कान, आँख , दाँत जिह्वा आदि अंग आते है। इन अगो में कफ आदि विकार जब एकत्र हो जाते है तो इन अगो की क्रियाओं को सुचारू रूप से कार्य करने में बाधा उत्पन्न हो जाती है। जिससे अनकों प्रकार की बीमारियाँ हो जाती है। इन अगों को विकार मुक्त करने के लिए नेति क्रिया अत्यन्त अद्वितीय है। यह तीन प्रकार की होती है-[2]

1 धृत नेति या तेल नेति

2 रबर नेति

3 जल नेति या [illegible]

किन्तु अभ्यास द्वारा सस्तुत नेतियों का उपर्युक्त क्रम हमारी दृष्टि मे उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि जलनेति द्वारा पहले नासिका की सफाई के करने के पश्चात तेल नेति द्वारा नासिका में चिकनाई हो जाती है जो कि रबर नेति क्रिया से पहले आवश्यक है तथा जलनेति क्रिया में जल के दुष्प्रभाव को भी समाप्त कर देती है।

हमारे विचार से वैज्ञानिक रूप से सर्वप्रथम जलनेति, तेल नेति पुनश्च रबर नेति करना अधिक लाभप्रद होगा। अत. हम उसी क्रम में इन नेतियों की व्याख्या क्रमश करेगें।

1 जल नेति - जिस प्रकार मनुष्य के जीवित रहने के लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार स्वस्थ रहने के लिए अच्छी नींद का आना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि नींद ठीक से न आने की वजह से शरीर में भारीपन रक्त चाप का उतर चढाव मानसिक उलझन आदि होने से दिनचर्या अस्त-व्यस्त हो जाती है। इसके विपरित रात की अच्छी नींद से शरीर के

---

1 धौतिर्वस्तिनस्तथा नेति नालिस्त्राटक स्तथा।
कपाल भातिरचैतानि षट् कर्माणि समाचरेत ।। (गोरक्ष संहिता)

2 योग द्वारा [illegible] डॉ0 ओम प्रकाश [illegible] पृ0 39

सम्पूर्ण स्नायु शक्ति एव आनन्द से भर जाते है। आज मनुष्य जितना भौतिक सुख सुविधाओ एव विलासितापूर्ण जीवन से युक्त होता जा रहा है वह उतना ही अधिक अच्छी नींद या शान्ति से दूर होता जा रहा है। वस्तुत वह जब धीरे-धीरे अनिद्रा का शिकार होता जाता है तो सही मार्ग दर्शन के अभाव में नीद के लिए वह अनेक प्रकार के दुर्व्यसनो, स्मैक, चरस , गाजा, अफीम, शराब आदि का शिकार हो जाता है। इनका सेवन तनाव के लिए हानिकार हे यह सर्वविदित है योग चिकित्सा में अच्छी नींद के लिए जल नेति एक अद्वितीय क्रिया है जिसका नियमित प्राय एव साय अभ्यास करने से निम्नलिखित लाभ होते है।

1 अच्छी नींद आने लगती है।
2 नेत्रों की ज्योति बढ जाती है तथा चश्मा से छुटकारा पाने में अत्यन्त सहायक है।
3 नासिका मार्ग का श्लेष्मा (कफ) साफ हो जाता है ।
4 स्मरण शक्ति बढ जाती है।
5 बाल का झडना रूक जाता है।
6 बाल काले बने रहते है।
7 समस्त प्रकार के दुर्व्यसन जैसे धूर्मपान सिगरेट बीडी शराब आदि से छुटकारा दिलाने में उस क्रिया का महत्वपूर्ण योगदान है।

जलनेति की पूर्व तैयारी -

जल नेति क्रिया को करने के लिए एक विशेष प्रकार का प्लास्टिक का लोटा आता हे यह लोटा स्टील या पीतल की धातु का भी हो सकता है। परन्तु प्लास्टिक का विशेष लोटा जो कि बहुत वैज्ञानिक ढग से बनाया गया है उसे ही हम प्राथमिकता देते है क्योंकि उसे दो जगह से खोला जा सकता है। उसकी सफाई ज्यादा अच्छी तरह से की जा सकती है जो कि अन्य धातु निर्मित लोटो की नही की जा सकती हे या करने में कठिनाई होती हैं मेरा अनुभव यह बताता है कि योग की क्रियाओं को यदि सावधानी पूर्वक ठीक से न किया गया तो लाभ की जगह हानि होने की सम्भावना बढ जाती है। अतः परम्पराओं से ऊपर उठकर वैज्ञानिक शोध का सहारा लेते हैं जिससे कि वर्तमान समय में उनका ठीक से प्रयोग कर सकें ।अब लोटे के अतिरिक्त नमकीन गुनगुना पानी चाहिए। पानी का तापमान शरीर के सामान्य तापमान से कुछ अधिक होना चाहिए। मेरे विचार से 40 डिग्री तक

तापमान ज्यादा उचित रहेगा। क्योंकि यदि पानी ठण्डा रहेगा तो नाक के अन्दर पानी लगेगा और उलझन व परेशानी होगी तथा गरम होने पर नाक के अन्दर से जल जाने का खतरा भी बढ जायेगा जिससे और ज्यादा परेशानी बढ जायेगी। नाक में उलझन या परेशानी न हो तथा ठीक से नाक की सफाई हो सके उसके लिए आवश्यक है कि गुनगुने पानी में थोडा नमक अवश्य मिला दें। एक किलो पानी में लगभग दो छोटे चम्मच नमक की मात्रा पर्याप्त रहती हैं यह साधारण खाने का नमक या सेंधा नमक कोई हो सकता है।

जलनेति करने की विधि -

जल नेति करने से पहले हम अपने नासिका के स्वरों के ऊपर विचार करते है, कि हमारा कोन सा स्वर चल रहा है। स्वर दो होते है 1 सूर्य स्वर 2 चन्द्र स्वर। सूर्य स्वर दायें स्वर को कहते हे तथा बायें को चन्द्र कहते है। मान लीजिए आपकी दायें नासिका से सरलता पूर्वक श्वास चल रहा हे तो उपर्युक्त ढग से तैयार गुनगुना नमकीन पानी भरें टोटीदार लोटे को निम्न चित्र के अनुसार पकड लें। तथा 'वाश बेसिन ' के सामने खडे जो जायें या नाली के पास या किसी चबूतरे में बैठ जायें अथवा नाक से निकालने वाले पानी को
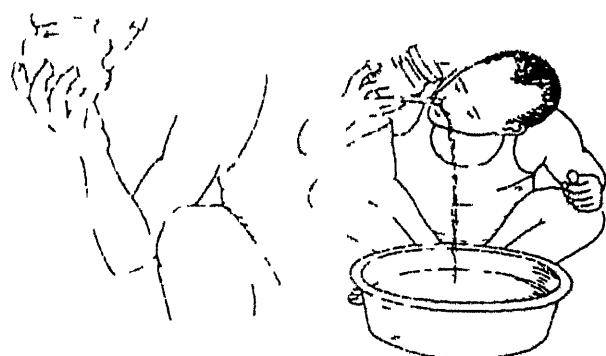
गिरने के लिए अपने सामने एक बर्तन रखें। अब गर्दन को थोडा सा घुमाकर सिर को थोडा बायी और झुकायें और दायें छिद्र से सटाकर जल अन्दर हाने दें। कुछ ही छडों में जल स्वतः बायी नासिका से बाहर निकलने लगेगा। इसी प्रकार से दूसरी ओर गर्दन घुमाकर बायी नासिका में टोटी लगाकर दायी नासिका से जल बाहर निकालिए।

सावधानियाँ

जल नेति क्रिया करने से पहले निम्नलिखित सावधानियॉ बरतनी चाहिए जो इस प्रकार है -

1 जल नति प्रात कुल्ला दातुन के पश्चात या शाम के भोजन के पहले करना चाहिए किन्तु अनिद्रा के कष्ट मं सोने के पहले भी क्रिया जा सकता है।

2 प्रारम्भ मं आधे लोटे के जल से दायी नाक से जल नेति करनी चाहिए तथा लोटे के शप जल से बायी नाक से क्रमश धीरे-धीरे दोनोा एक ओर नाक से एक-एक लोटा जल से जल नेति करनी चाहिए।

3 जल नेति करते समय आरम्भ में कभी-कभी नाक के छिद्र से ऊपर की तरफ चढता हुआ, नाक के ऊपर से पीछे की ओर बढता हुआ दर्द महसूस होता है। कई बार यह दर्द थोडा असहनीय भी हो जाता है ऐसी दशा में जल नेति बन्द करके 'कपाल भाति' प्राणायाम करने से थोडी देर में भी दर्द निकल जाता हे। एसा सायनस में कफ जमाव के कारण होता है। नित्य सुबह शाम नाक में दो चार बूँद कडुआ तेल या घी या ओट्रोबिन नोजल ड्रॉप डालने से तथा भस्त्रिका प्राणायाम करने से जेसे-जेसे सायनस का कफ हटता जायेगा जल नेति में उत्पन्न दर्द धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा।

4 इसी प्रकार से जल नेति का प्रभाव ऑखों की ओर बढता है तब ऑखे गरम हो जाती हे तथा ऑखों से पानी भी गिरने लगता है। इससे घबराये नहीं। कुछ दिन नियमित अभ्यास करने ऑखों का पानी गिरना बन्द हो जायेगा तथा ऑखों की रोशनी भी बढ जायगी।

5 यह भी ध्यान रखने योग्य बात हे कि जिन लोगों को गर्दन में तीव्र दर्द या सरवायकल स्पाडलार्यटिस का तीव्र दर्द होने की दशो में जल नेति न करें क्योंकि इस तकलीफ में गर्दन को दायी ओर बायी ओर झुकाने में कष्ट बढ जाता है चूँकि जलनेति गर्दन को बिना झुकाये नहीं हो सकती है।

6 जब चुकाम ज्यादा हो और कफ जम गया हो तो जलनेति नहीं करना चाहिए। पहले तेल नेति या रबड नेति से कफ को साफ करने के बाद ही जलनेति करे ऐसा न करने या नाक बन्द होने के कारण पानी नहीं निकलेगा।

7 जलनेति करने के पश्चात् नाक की सफाई विशेष तौर से ठीक ढग से करना चाहिए क्याकि जल से जहॉ इतने फायदे हैं वही पर नाक में पानी रह जाने से रोग बढ जाने की भी सम्भावना भी रहती है अत नाक को खूब अच्छी प्रकार से चारो दिशाओं में गर्दन मोड कर तेजी से हवा निकालते हुए करना चाहिए। तथा बाद में भस्त्रिका प्राणायाम दस-दस बार करना चाहिए। भस्त्रिका प्राणायाम करने से गर्मी उत्पन्न होती है जो कि नाक को एक दम सुखा देता है और बाद में तेल नेति अवश्य करना चाहिए।

नाक की सफाई निम्न चित्र के अनुसार करें।
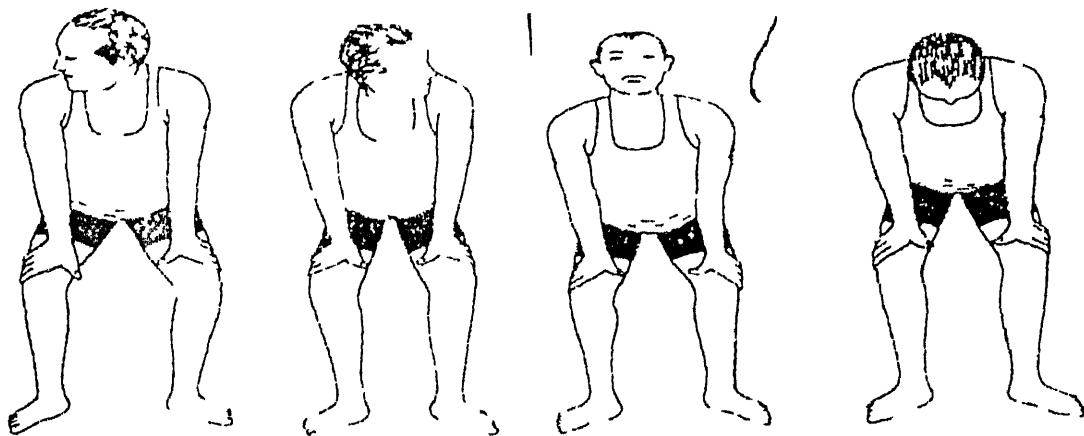
नासायान भी जलनेति के लोटे से ही किया जाता है। आजकल देखने में आ रहा कि छोटे छोटे बच्चों स लेकर वृद्धों तक में ऑख की रोशनी में कमी ओर कम उम्र में चश्मा चढ जा रहा हे। इसके अनेक कारण है। किन्तु कारण जान लेने पर भी पुन ऑखों की रोशनी पूर्ववत वापस लाने का कोई भी उपाय किसी ओषधि चिकित्सा पद्धति में नही हैं। आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों ने चश्मा की खोज करके इस समस्या को दूर करने का प्रयास तो किया है किन्तु यदि चश्मा एक बार लग गया तो वह उतरता तो कभी है ही नहीं, हाँ उसका नम्बर जरूर बढता चला जाता है और यदि चश्मा बचपन या किशोरावस्था में ही लग गया तो यौवन व प्रौढ अवस्था तक आँखों की रोशनी अति दयनीय हो जाती है। आँखों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए ऋषि वाणभट्ट ने कहा है कि " जब तक जीते रहने की इच्छा हो, मनुष्य को अपनी ऑखों की रक्षा का सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए क्योंकि धन होने पर भी अधे मनुष्य के लिए रात दिन एक से होते है और ससार उसके लिए व्यर्थ होता है।1नासापान करने से चश्मे से छुटकारा पाया जा सकता है। स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। बालो का झडना भी रूक जाता है।

नासापान की पूर्व तैयारी .

जलनेति की तरह नासापान के लिए एक टोटीदार लोटा चाहिए। किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें गुनगुने नमक युक्त पानी के स्थान पर सादा ताजा जल या घडे का पानी अधिक उपयुक्त होता है।

नासापान की विधि

नाक से जल पीने को नासापान कहते है। नासापान करने से पहले यह देख लें कि नासिका के किस छिद्र स मास आ जा रहा हे। अब जिस छिद्र से सास आ जा रही हो, उसी नाक स छिद्र में जल भरे टोटीदार तोटे को चित्र क अनुसार लगा दें।

ऐसा करते ही जल नाक व गल से होते हुए पेट में स्वय जाने लगता है। यह ध्यान रखना आवश्यक हे कि नासापान करते समय मुँह बन्द रखते हे।

नासापान

ओर जिस नाक से पानी पीत हे उसके दूसरी ओर से छिद्र को अँगूठे से बन्द कर लते हे जितना पानी पीना हो पी लें। इसके बाद इसी प्रकार से दूसरी नाक से जल पीते हे। नासापान मं जल के स्थान पर गाय का दूध भी प्रयोग कर सकते है। दूध का नासापान करने से मस्तिष्क को ताकत मिलती है। और तरोताजगी उत्पन्न होती है। नासापान करने के बाद जलनेति की ही भाति नाक की सफाई कपालभाति एव भस्त्रिका प्राणायाम के द्वारा करना अति आवश्यक होता हे। नासापान करते समय कुछ सावधानियॉ बरतनी आवश्यक होती हे जिसका वर्णन निम्न प्रकार से हे-

सावधानियॉ -

1 नासापान के पूर्व थोडे जल स जलनेति करना न भूलें। इससे नासिका मार्ग का कफ व श्लेष्मा बाहर निकल जाता है

2 प्रारम्भ में चोथाई-चोथाई लोटा या थोडा-थोडा जल पियें। कुछ दिनों के पश्चता धीरे-धीरे एक लोटा जल पी सकते है।

3 नासापान करते समय , न नाक से सास लेते है और न ही मुँह से अत कुछ देर बाद लाटे की टोटी को नासिका छिद्र से हटा लेत हे और दो चार श्वास-प्रश्वास के बाद पुन नागापान करने लगते है ऐसा अनेक बार बीच-बीच में करते हुए नासापान की क्रिया पूर्ण करते है।

4 नासापान में जल के स्थान पर गाय का दूध पीने से नेत्रों की ज्याति बढाने में विशष शीघ्रता होती ह। नासापान के लिए गाय का कच्चा दूध ही उपयुक्त हाता है किन्तु बिना मीठा, चीनी या गुड मिलाये ही पीना चाहिए। यदि कच्चे दूध की इच्छा न हा ता दूध का बहुत ही हल्का गर्म कर लें। किन्तु मलाई की परत न पड इसलिए एक बार उबाल करके ठण्डा करके छान ल तब दूध नासापान क काम म लें।

5 तीव्र या जीर्ण जुकाम के रोगियों का नासापान नहीं करना चाहिए उन्हें पहले नित्य तेलनेति, रबड नेति, जलनेति द्वारा जुकाम से छुटकारा पा लेने क बाद ही नासापान करना चाहिए।

2 रबड नेति

मोसम परिवर्तन होने पर तो देखा जाता हे कि जुकाम होने पर गले में खटास आदि हो जाती हे परन्तु आज के धूम्रयुक्त वातावरणया प्रदुषित वातावरण में जुकाम होना एक स्वाभाविक बात हो जा रही हे। सच दखा जाय ता जुकाम स्वय में कोई रोग नहीं होता है बल्कि जब शरीर क अन्दर हमारे श्वास नली एव फेफडो में विकार उत्पन्न हो जाते हे तो उन विकारों को शरीर से बाहर निकालने की शरीर की स्वाभाविक प्रकृति की एकमात्र प्रक्रिया होती हे जिसे जुकाम का नाम दिया जाता हे यदि हम शरीर क विकारों को निकालने में शरीर के अन्दर के तन्त्र का सहायता करें ता वह विकार अतिशीघ्र निकल जायेगा और शरीर रोगयुक्त हा जायेगा। जुकाम द्वारा भी शरीर के विकार बाहर निकलते है हम विकार का बाहर निकलने में जिस प्रक्रिया का सहारा लेते है उसमें रबर नेति या सूत्र नेति का प्रधान स्थान हे। प्राचीन काल मे सूत्र नेति का प्रचलन था। एक फीट लम्बे दस पन्द्रह मुलायम सूतों को गॉठकर उसे एक नासिका से अन्दर डालकर मुख के बाहर निकालते की विधि को सिद्ध योगी सूत्र नेती कहते है।1 सूत्र इतना मोटा हो कि आसानी से नासिका छिद्र में जा सकें। सूत्र का एक सिरा नासिका में डालिए , दूसरी नासिका को अँगूठे से बन्द करें तब खुली नासिका से पूरक करें ओर मुँह स रेचक । उसी प्रकार बार-बार करने से सूत्र मुख के अन्दर प्रवश करेगा तब सूत्र से दूसरे सिर को पकड लीजिए और दोनों हाथों स दानों सूत्रों को आगे पीछे खीचिए। इसी प्रकार दूसरी नासिका से दुहराईये यह क्रिया द्वारा दोनों नासिकाओं में उत्पन्न अवरोध दूर किये जाते ह । जिससे प्राण वायु के आवागमन में

सूत्र वितस्तिसुस्निग्ध नासानाले प्रवशयत्।
मुखान्निर्गमियच्चपा नति सिद्धोनिघित ।। 2/19 हठयागप्रदीपिका

सुविधा होती हें परन्तु यह उपरोक्त विधि जा हठयोग प्रदीपिका में बतायी गयी हे वह कठिन हे सूत्र क स्थान पर अब रबर की टयूब या जिस केथेड्र कहते हे जो किसी भी आपषि, विक्रता की दुकान में आसानी से उपलब्ध हो जाती है। य कई साइज की हाती है आप मोटी पतली जैसी चाह तो लें। परन्तु प्रारम्भ मं 4 5 6 नम्बर की कैथेडर ज्यादा उपयुक्त होती हे बाद में धीरे-धीरे बढायी चाहिए। यह रबर टयूब बहुत उययोगी हे । इसकी सफाई आसानी स की जा सकती हे। सूत नेति करने के लिए सबस अच्छी स्थिति उकडू बठना हे परन्तु इसे खडे होकर भी इसका अभ्यास किया जा सकता हे।

करने विधि - रबड नेति यदि ठोस वाली हे तो किसी भी सिरे से कितु यदि केथेडर हे तो पतल वाले सिर को नासिका के दाये छिद्र में डालकर धीरे-धीर बढाते जाईये। आग बढाते-बढाते जब वह सिरा गले तक पहुँच जाये तो दायें हाथ की तर्जनी ओर मध्यमा अँगुलियों को गले तक डालकर अँगुलियों से रबर नेति के सिरे को पकडकर के तथा बायें हाथ से रबड नेति को धीरे-धीर अन्दर सरकाते जाइये और दाये हाथ की अँगुलियों से पकडे हुए उस सिरे को धीरे-धीरे मुँह से बाहर खीचिए अब मुँह से बाहर निकाले सिरे को दाये हाथ से पकडिये और नाक से बाहर निकले सिरे को बाये हाथ से पकडियें। अब बहुत धीरे-धीरे दाय हाथ ओर बायें हाथ से बारी-बारी से खींचकर हल्क-हल्के मठ्ठे की तरह बिलोयें । प्रारम्भ में दस-बीस बार कीजिए। धीरे-धीरे बढाते हुए हु0 50-50 से 100-100 बार तक कर सकत हे। अब रबर नेति को मुंह के रास्ते से अथवा नासिका के रास्ते से खीचकर बाहर निकल लीजिए। इसी प्रकार बायी नासिका के छिद्र को रबड नेति डालकर करें। रबड नेति करत समय मुँह को नीचे की ओर करक खोले रखें जिससे लार, कफ तथा गन्दगी बराबर गिरती रहे। नाक की दीवारों में रगड नही पैदा होगी और लाभ जल्दी हागा।

खास ध्यान देने की बार यह भी हे कि रबड नेति करने से पहल नाक में दा चार बॅद कडुआ तेल अवश्य डाल दें तथा रबड में भी लगा दें जिससे रबड आसानी से अन्दर जायेगी। निम्न चित्र को ध्यान से देखें
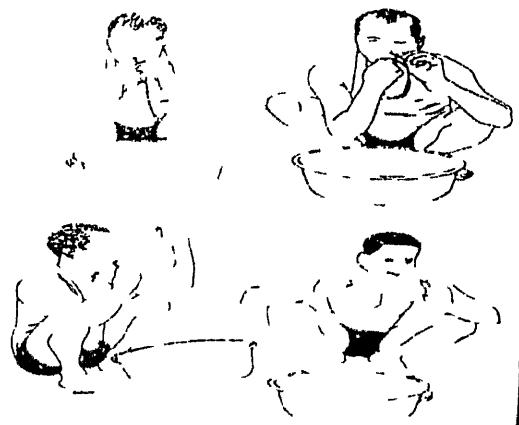
सावधानियॉ

1 कभो-कभी रबडनेति गले म चिपक जाती हे जिससे पकडन में नही आती ह। ऐसे में गल स ख ख शब्द का उच्चारण करने स नेति पकड में आ जाती है।

2 रबड नेति की शुरूआत 4 नम्बर कैथेडर से करनी चाहिए । यदि न 4 की रबड नेति जाने में कठिनाइ कर रही हो ते न 3 से प्रारम्भ करें। फिर धीरे-धीर न 5 व 6 तक बढायें किन्तु नम्बर बढाना आवश्यक नहीं है।

3 रबड नेति करते समय यदि खासी आने लगे तो इसको हिलाना बन्द कर दें। घबरायें नहीं, खासी रूक जाने पर फिर उसी प्रकार धीरे-धीरे हिलायें।

4 रबड नेति करते समय नकली दॉत व चश्मा अवश्य उतार देना चाहिए।

5 महिलायें मासिक धर्म में पॉच दिन तक एक तीन माह के गर्भ के बाद रबड नेति न करें।

6 किमी भी प्रकार के बड आप्रेशन के 6 माह बाद तक बिना योग चिकित्सक के पूछे रबड नेति न करें।

7 रबड नेति करते समय शुरू में यदि दो चार बॅ खून आ जाय नो घबराये नहीं तुरन्त तेल नेति करके ठीक हो जायेगा।

8 यदि नाक में सूजन हो गा मवाद अथवा किसी कारण घाव हे तो कुछ दिन तक पहले इन कष्टों की चिकित्सा करें। जब से कष्ट ठीक हो जाय तब रबड नेति करें।

9 रबड नेति करने वाले रात को सोते समय धृत नेति या तेल नेति अवश्य करें।

10 रबड नेति के बाद छिडक-छिडक कर खूब नाक साफ करें तथा भस्त्रिका प्राणायाम द्वारा भी सफाई करे। अधिक कष्ट में प्राय खाली पेट के अतिरिक्त शाम को भोजन के पूर्व भी रबड नेति कर सकते है।

रबड नेति से लाभ –

1 जुकाम एव दमा तथा कफ के विकारों को शरीर से निकालने में यह अद्वितीय क्रिया हे।

2 नेत्रा की ज्योति बढ जाती हे। अधिक नम्बर या चश्मा कम हो जाता है। कम नम्पर का चश्मा छूट जाता ह। भविष्य में मोतियाविन्द की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

3 नाक का बढा मास घट जाता हे। सायनस के कष्ट ठीक हो जाते हे।

4 मस्तिष्क शुद्ध हो जाता ह , सिर की खुजली तथा गर्मी शान्त हो जाती है। बाल झडना रूक जाते हे, बाल सफेद नहीं होते है तथा स्मरण शक्ति बढ जाती है।

5 प्रारम्भिक कान का बहरापन एव साय-साय की आवाज भी ठीक हो जाती हे।

6 खासी स्नाफीलिया , ब्राड्काइटिस, माइग्रेन, सबल वायु, अनिद्रा, अवसाद, उत्तेजना तथा टी0 वी0 जैसे रोगो में रबड नेति बहुत ही उपयोगी क्रिया है।

7 शरीर को धीरे-धीरे खोखला बनाने वाले और कैंसर तक ले जाने वाले व्यसन जैसे चाय, तम्बाकू, बोडी सिगरेट , गाजा , भाग , अफीम इत्यादि की आदत नियमित रबड नेति या जलेनति करने वाले की स्वय छूट जाती है।

8 इसके अभ्यास के बाद झझलाहट एव गुस्सा भी नहीं आता ह

धृत नेति या तेल नेति

जल नेति, रबड नेति क्रिया के बाद धृत नेति या तेल नेति का विधान किया गया ह। क्योंकि जलनेति करने के बाद नासिका की ठीक स सफाइ करने के बाद तेल नेति अवश्य करनी चाहिए। जिसस कि यदि किसी वजह स नाक के अन्दर पानी रह गया हो तो उसका दुष्प्रभाव न पडे। रबड नेति करने के पूर्व तेल नेति करना चाहिए कि रबड आसानी से नासिका द्वारा से चली जाय और बाद में भी ठीक से सफाई करने के बाद भी तेल नेति करनी चाहिए। तेल नेति का आयुर्वेद पचकर्म विज्ञान में नस्य क्रिया के अन्तर्गत विधान किया गया है। वास्तव में सिर विकारों या रोगों से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए धृत नेति या तेल नेति विशेष उपयोगी सिद्ध हुई ह। क्योंकि

नासिका का सिर का द्वार समझा जाता है ओर द्वारों से जब धृत या तेल प्रवेश करते हें तो सम्पूर्ण सिर में उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पडता हे। और सिर क्षेत्र के विकार निष्कामित हो जाते हे। फलस्वरूप कुपित कफ के कारण उत्पन्न जुकाम, सिर दर्द, सृजन, गिरती स्मरण शक्ति, बालों का सफेद होना आदि रोग धीरे-धीरे नष्ट हो जात हे ओर नित्य करने वालो को उपरोक्त रोग हाते ही नहीं नाक में गाय का घी डालने को घृत नेति कहते है। बादाम का तेल, सरसों को तल आदि डालन को तेल नेति कहते है।

करने की विधि -

उपराक्त चित्र की भाति किसी तख्त या चारपायी पर पीठ के बल लेट जाइये अथवा कुर्सी पर सिर ऊपर की तरफ उठाकर बैठ जाइयें। ध्यान रहे कि गर्दन नीचे की तरफ उठाकर बेठ जाइये। ध्यान रहे कि गर्दन नीचे की तरफ लटकी रहे तब नाक में घी या तेल डालें। घी या तेल डालने के बाद दा-चार बार श्वास का जार जार से अन्दर की आर खींचें। गले या नाक में चिपका हुआ कफ छुट जाता हे अत उस खखार कर बाहर निकाल दें। एसा भी हो सकता है कि धृत नति या तल नेति क कारण दिन में अनक बार कफ निकलो। इसलिए परेशान न हा। धृत नात में घी जाड में पिघलाकर डालना चाहिए।

ध्यान दें

1 तीव्र कफ क रागिया का सरसों या लाही के तल के नति अधिक लाभकारी हागी।

2 नकसीर के रागियों का चारतल की नेति अधिक लाभकारी हागी।

3 स्मरण शक्ति बटान क लिए एव अनिद्रा के रागी गाय के घी या बादाम क तेल क नति अधिक लाभाकारी हागी

4 जीर्ण कफ के रोगियों को षटबिन्दु तेल की पेति अधिक लाभकारी होगी।

5 जिन लागों का सरसों या लाही क तेल स एलर्जी हो उन्हें बादाम का तेल प्रयाग करना चाहिए।

विशेष - कडुवे तेल का आँख के पास लगाकर देख लेना चाहिए यदि चिरमिराहट अधिक हो तो पहल मो ग्राम तेल में दो-चार बूँद नीबू का रस मिलाकर धीमी आँच में रखकर पका ल। आग समाप्त होने पर छानकर रख लें। एसा करने स चिरमिराहट दूर हो जायेगी।

धौति - शरीर शोध के निमित्त षटकर्म के अन्तर्गत नेति क्रिया पहल आती हे। जिसके द्वारा सिर के समस्त अगों का प्रक्षालन करने के पश्चात गले से

लेकर आमाशय तक का भाग आता हे । आमाशय शरीर का वह अक है जिसमें खाए हुए भोजन का पाचन होता हे तभी अगों से उसका पोषण होता है। आमाशय की उपमा हम रसोईघर के पतीले से कर सकते है। जेसे पतीले को भोजन बनाने के पूर्व स्वच्छ रखना जरूरी हे। अन्यथा भोजन विकार युक्त हो जाता ह। उसी प्रकार स आमाशय का कुपित कफ पित्त आदि से मुक्त रहना आवश्यक हे। धोति आमाशय की गन्दगी को स्वच्छ करने में अद्वितीय हे क्योंकि आमाशय की सफाई के बाद ही हमारी छोटी-बडी आँतों की सफाई का क्रम आता है। अत वस्ति क्रिया धोति क्रिया के बाद करने की आवश्यकता होती है। धौति क्रिया के बाद सम्पूर्ण आतों की सफाई के लिए शख प्रक्षालन एक अद्वितीय क्रिया है जो कि मुख से लगाकर गुदा माग तक की सफाई एक साथ करती हे। वर्ष में दो वार या चार बार धौति क्रिया अवश्य करनी चाहिए ।1 धोति क्रिया तीन प्रकार की होती है -

1 जल धौति या कुजल क्रिया । इसे गजकरणी भी कहत हे।

2 दण्ड धोति

3 वस्त्र धौति

4 जल धौति

जल धोति को कुल या वमन क्रिया भी कहत ह । सम्भवन कुजल कुजर (हाथी) शब्द से बना हे क्योंकि जेसे हाथी खूब पानी पीन के बाद मुख से ही सारा पानी निकाल देता है, उसी प्रकार इस क्रिया में योगाभ्यासी भी पानी पीकर निकाल देता है। इस क्रिया को गजकरणी भी कहते हे।

करने की विधि.

निम्न चित्र के अनुसार उकड़ू बैठकर पानी पीना चाहिए।

[1]पंच कर्म विज्ञान। याग द्वारा कायाकल्प डॉ0 आम प्रका

[1] विश्वकुरू कल्पतरू पृष्ठ 510, यागसम्राट कल्पत

सर्वप्रथम पीने लायक गुनगुना पानी लगभग 4 से 5 किलो तक पानी कपडे से छान कर तैयार कर लें। ज्यादा अच्छा होगा यदि पहले पानी को ठीक से उबाल जें और पीने लायक होने तक ठडा होने दे तथा पानी को छान लें तो ज्यादा उचित होगा। प्राय सादे पानी से लोगों को सफेद नमक के स्थान पर यदि सेंधा नमक डाला जाय तो ज्यादा उपयुक्त होगा। वैसे यदि कुजल बिना नमक के करें ता ज्यादा अच्छा है।

पुनश्च अब पीठ और छाती के चारों आर कोई पतली चादर या कपडा कम से कम दो या तीन बाद लपेट कर ऊपर से नारियल या सूत की डोरी से चादर को छाती से कसवा लें। किन्तु ध्यान यह रखें कि कसाव इतना अधिक न हो कि दम घुटने लगे। परन्तु इतना ढीला भी न हो। कि कोई दबाव हो न पडें। यदि कोई विशेप परेशानी न हो तो इस प्रकार से कपडा बाधने की कोई आवश्यकता नहीं है। पुन तलुओं के बल बैठकर गिलास से उपरोक्त चित्रानुसार जल्दी-जल्दी पानी पीते चले जाय। जब तक पेट खूब भर न जाय अर्थात पानी पीते-पीते उल्टी या वमन न होने लगे। यह ध्यान सदेव बना रहे कि घुटने यथा सम्भव छाती से लगे रहें।

खूब डटकर पानी पी लेने के पश्चात जब उल्टी की तीव्र इच्छा होने लगे तो निम्न चित्रानुसार
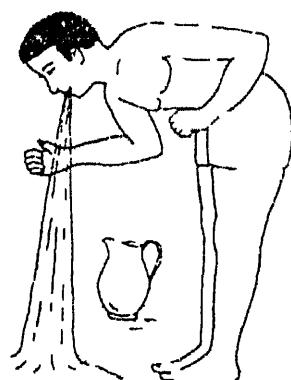
यथा सम्भव नाभि व कमर पर 90 अश का कोण बनाते हुए आगे की ओर झुक इस प्रकार खडे हो कि दोनो पैर आपस में मिले रहे ततपश्चात बायें हाथ को पेट पर रखते हुए दाहिने हाथ की तीन अँगुलिया(तर्जनी मध्यमा और अनामिका) को मिलाकर मुख के भीतर गले तक डाले और जहॉ छोटी सी जीभ को तरह कौआ या घण्टी लटकती रहती हे, उसी छोटी जीभ या कौआ पर मध्यमा अगुली को धीर-धीरे सावधानी के साथ घुमाने या केवल छूने से उल्टी होने लगेगी, लेकिन जब पानी बाहर निकलने लगे तब अगुलियों को मुख

से बाहर हटा लें। पानी निकालना बन्द होते ही पुन उसी प्रकार तोनों अगुलियो को भीतर ले जाकर छोटी जीभ या कौआ को पहले की तरह छूयें। बार-बार ऐसा करने से पेट का सारा पानी बाहर निकल जायेगा। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि यदि नमक युक्त पानी पीकर कुज्जल कर रहे है। तो बाद मे सादे पानी अर्थात बिना नमक वाल पानी को पीकर एक या दो बार कुज्जल अवश्य करें क्योंकि यदि नमक युक्त पानी अन्दर रह जायगा तो दस्त आने की सम्भावना बढ जाता हे। तथा नमक युक्त पानी गुद्रे के लिए हानिकारक भी होता है।

सावधानियॉ –

1 दाहिने हाथ के नाखन पूर्णतया कटे होने चाहिए अन्यथ। गले में नाखून लग सकता हे।

2 अगुलियें। को मुख में गले तक डालने पर पानी पेट से बाहर न निकले, केवल मचली या उबकाई आवे तो समझना चाहिए कि पेट का सारा पानी निकल चुका हे या आमाशय के आगे बढ गया है।

3 यदि कभी ऐसा मालूम पडे कि कुछ पानी पट में रह गया हे तथा निकल नहीं रहा हे ता पुन दो-चार गिलास पानी पीकर कुञ्जल क्रिया दाहरायें। वेसे भी कम स कम दो या तीन बार पानी पीकर 'कुञ्जल' क्रिया करें।

4 अन्त में खट्टा या कडुआ पानी (पित्त) निकले तो एक या दो गिलास कुञ्जल का पानी ओर पीकर पुन कुञ्जल करें।

5 कुञ्जल समाप्ति क वाद छाती से कपडा खोलकर सिर को ठण्डे पानी से दा मिनट तक अच्छी तरह धायें। विशष कर तालू धोयें तथा दा-तीन घॅट (अधिक नहीं) पानी पिये।

6 कुञ्जल क्रिया प्रारम्भ करन से पहले शौच पेशाब आदि से भली भॉति निवृत्त हा जाये। यदि एनीमा या वस्ति करनी हो तो कुज्जल से पहल ही कर लें।

7 कभी-कभी कुज्जल से पूरा पानी नहीं निकल पाता । इसलिए कुछ समय बाद या तुरन्त पाखाना लग सकता हे। पाखाना दो-तीन बार भी हो सकता हे। इससे घबराने की कोई बात नहीं है।

8 कुञ्जल के बाद पाच-दस मिनट के लिए शवासन में लेटना आवश्यक है ताकि पेट के अवयव में उत्पन्न हलचल शान्त हो जाये।

9 किसी -किसी को कुञ्जल होता ही नहीं चाहे जितना प्रयास करें ऐसे लोगो को दण्ड धोति से कुञ्जल करना चाहिए।

लाभ -

जिस बर्तन में खाना पकाया जाय उसे अन्दर से प्रतिदिन साफ न किया जाय तो उसकी अन्दर की दीवारों से पकवान का अश चिपकता चला जायेगा। और कुछ दिनों में उसमें सडन पैदा हो जायेगी। पुन उसमें कितना ही पौष्टिक व सुन्दर विधि से भोजन क्यों न पकाया जाय भोजन अस्वाददार व नुकसानदेह ही होगा। वैसे ही आमाशय को स्वच्छ एव स्वस्थ बनाये रखने के लिए हमारे भारतीय योग मनीषियों ने षट्कर्म में कुञ्जल क्रिया का विकास किया है। कुञ्जल मुँह पर फोडे, फुन्सियों, दात, जीभ व ऑख के रोग, रक्त विकार , हदय व छाती के रोग, पित्त कफ के प्रकोप मन्दाग्नि आदि को जड से दूर करने में विशेष सहायता करती है।

महत्वपूर्ण तथ्य

सामान्य स्वस्थ अवरथा में सप्ताह में एक बार कुञ्जल करना पर्याप्त होगा। उपवास के दिन अथवा भाजन सम्बन्धी गडबडी के कारण उत्पन्न अजीर्ण कष्ट में कुञ्जल बहुत ही लाभकारी क्रिया हे। चिकित्सा के दौरान लगातार तीन चार दिन वस्ति क्रिया क बाद कुञ्जल करने से रोगी को उसके कष्ट में चमत्कारी लाभ होता हे। तत्पश्चात् सप्ताह में एक दिन कुञ्जल पर्याप्त होगा। छाती में जलन (एसिडिटी) के कप्ट में कुञ्जल करके रोगी तुरन्त लाभ प्राप्त कर सकता है। किन्तु किसी विशेप प्रकार के अल्सर (आन्तरिक घाव) के कष्ट में उच्च रक्त चाप में कुञ्जल नहीं करना चाहिए।

दण्ड धौति -

दण्ड धाति भी कुञ्जल के समान ही हे। जो लोग हाथ से उल्टी नहीं कर पाते हैं, वे लोग दण्ड टयूब जा कि बारह नम्बर का एक केथेडर होता है। से सरलता से उल्टी करने में सफत हा जाते हे। इसलिए इसका नाम 'दण्ड धौति' है।

दण्ड धौति की पुरानी विधि

निम्न चित्र के अनुसार

छोटी अगुली के बगल वाली अगुली (अनामिका) के बराबर मोटी तीन लरों वाली कच्चे सूत की रस्सी बनावें, जो लगभग 30 इच लम्बी हो। उसके अन्तिम छोर से करीब चौथाई इच पहले एक धागा इस प्रकार बॉधे कि रस्सी का वह सिरा फूल के समान खिल जाय। तब समूची रस्सी को गर्म जल के पात्र में कुछ समय के लिए डुबो ले।

दण्ड धौति की नई विधि -

आजकल इस रस्सी के रथान पर रबर की बनी इसी गोलाई की टयूब भी आती है। जो अन्दर से खोखली होती हे, जिससे दण्ड धौति करने में आसानी होती है।

करने की विधि - अब कुञ्जल की तरह सहने योग्य गरम पानी यथासभव अधिक से अधिक पिये। तत्पश्चात कुञ्जल करने की स्थिति से कुछ ऊँचें खडें होकर उपर्युक्त दण्ड धौति की रवर टयूब को मुँह द्वारा धीर-धीरे भीतर डालें और निकालें यदि बार-बार भीतर स पानी निकले ता निकालन द। दा-चार दिन के अभ्यास क बाद टयूब यथा जरूरत अन्दर ल जान में काई कठिनाई नही होगी।

महत्वपूर्ण तथ्य -

1 टयूब का चार अगुत दूसरा सिरा मुख क बाहर ही रख

2 उपरोक्त बाहर निकल सिरे की रस्सी पकडकर रस्सी या टयूब हिलाने से भीतर का पानी काफी मात्रा में बाहर निकलेगा।

3 यह क्रिया बिना अनुभवी योग्य प्रशिक्षक क निर्देशन क न करे। योग्य निर्देशन के बाद इस क्रिया का अभ्यास कुञ्जल क्रिया से भी ज्यादा आसान हो जाता है।

4 यदि गले मे घाव हो, सूजन हा ता दण्ड ट्यूब न करें।

वस्त्र धौति - वस्त्र धौति वह क्रिया है जिसम चार अगुल चोडा ओर पाँच से पन्द्रह-बीस हाथ लम्बा महीन, सूती एव सफेद कपडा मुख से आमाशय में डाला जाता है।

लाभ - इस क्रिया के अभ्यास से प्लीहा, गुल्म ज्वर, कण्ठ, कफ पित्त दूर होते है तथा मनुष्य निराग एव बलवान होता है।1 इसके अतिरिक्त मैनें यह अनुभव किया है कि वस्त्र धौति जुकाम, खासी, दमा, टी0 वी0, अपच, मन्दाग्नि व किसी भी असाध्य रोग में बहुत लाभकारी हे।

तैयारी - चार अँगुल चोडी, पन्द्रह-बीस हाथ लम्बी महीन, सूती सफेद मलमल की पट्टी तैयार करे। यदि किसी चौडे मं से फाडकर बनावें तो किनारे के दो-दो धोगे अवश्य निकाल दें। तत्पश्चात साबुन से भली भाति साफ करके उस कपड को गरम पानी मं कम से कम पॉच मिनट तक उबाल लें। फिर उसे निचोडकर ऐसी जगह में सुखायें जहॉ मक्खी वगैरह उसमें न बैठें। रात में पट्टी सुखाने में मक्खियों नहीं बेठेगी। अच्छी तरह सुखाने के बाद उसका गोला बनावें और अब वस्त्र धौति करने बेठ तो एक स्वच्छ कटोरे में 250 ग्राम दूध में 250 ग्राम पानी लं तथा कपडें को डाल दें।

करने की विधि

निम्न चित्रानुसार

तुलओं के बल बैठकर वस्त्र धौति के कपडे के एक सिरे को खोलकर बहुत छोटी से गोली बना लें और दाहिने हाथ की तर्जनी व मध्यमा दानों ॲगुलियों के आगे के भाग के बीच उस गोली को इस प्रकार से रखें कि मुख के भीतर छोटी जीभ(गोली) तक ले जाकर रखने में कोई कठिनाई न हो। इसके

1 प्लीहा गुल्म ज्वर कुण्ठ कफ पित्त विनाशयति ।

आरोग्य बल पुश्टिश्च भवेतस्य दिने-दिने ।। 'योगशास्त्र'

बाद दोनों अँगुलियों को इस सावधानी के साथ बाहर निकालें, कि भीतर डाला हुआ वस्त्र बाहर न आवे। तत्पश्चात जीभ से धीरे-धीरे वस्त्र धौति का भीत गले के नीचे उतारें। जिस प्रकार भाजन करते समय जीभ पर पडा हुआ कोर निगलते हे।

ध्यान रहे कि वस्त्र धौति का कपडा तालू में न लगने पावे। बल्कि जीभ पर ही रहे। इसलिए कटोरे में भरा पानी मिला दूध घूँट-घूँट कर इस प्रकार पियें कि गले के नीचे घूँट के साथ वस्त्र धौति भी बढती जाय। साथ ही साथ मुख इस प्रकार चलावें जेसे कोई चीज खा रहे हों ओर उस चबी चीज को निगल रहे हों। ऐसा करने से वस्त्र धोति भीतर चली जायेगी।

प्रथम दिन एक-डेढ हाथ से अधिक वस्त्र नहीं निगलना चाहिए। निगलते समय जी मचलाने तो दात बैठाकर मुख का बन्द करके , मनोबल से रोकना चाहिए, किन्तु यदि उल्टी आय तो रोके नही, जल्दबाजी न करें। धीरे-धीरे दस-पन्द्रह हाथ धौति आसानी से चली जायेगी।

महत्वपूर्ण तथ्य –

1 पूरी वस्त्र धौति कभी न निगलें। करीब एक फुट या एक बालिस (9इच वस्त्र मुख के बाहर अवश्य बची रहें।

2 जिन्हें कफ की शिकायत हो, व लोग पानी से यह क्रिया कर, दूध न मिलावें। लेकिन यदि कफ की शिकायत न हो पित्त की ही अधिकता हो या पित्त बिगडा हा तो पानी के स्थान पर गुनगुने दूध से वस्त्र धौति करें।

3 यदि वस्त्र को निगलने में जी मचलाये या उबकाई आये तो वस्त्र के अगले भाग पर शहद लगा लें।

4 कुछ लोग वस्त्र धौति का पेट में ले जाने के बाद नौलिक्रिया करते है, ऐसा करना नुकसान देता हे।

5 वस्त्र धौति के बाहर बचे भाग को पकडकर धीर-धीर वस्त्र को बाहर खीचें। जब तक यह आसानी स बाहर निकलती जाय, निकालत जाइये, किन्तु यदि रूके तो तुरन्त खीचना वन्द कर दें आर पहले की तरह फिर से वस्त्र को निगले। दा-तीन ग्रास निगलने के बाद पुन मुख को पूरा फैलाकर पूर्ववत वस्त्र का खीचना शुरू करें।

6 यदि किसी कारण वस्त्र धोति बाहर न आवे तो जितना जल पी सकें, पी लें और कुञ्जल की तरह खडें होकर मुख में अँगुली डालकर वमन करें। ऐसी आवश्यकता शायद ही किसी को पडें। फिर भी जानकारी जरूरी है।

7 अच्छी प्रकार से कुञ्जल एव दण्ड धोति के अभ्यास के बाद ही वस्त्र धौति करना चाहिए।

8 वस्त्र धौति के बाद कुञ्जल अवश्य करें।

9 वस्त्र धौति तब तक करना चाहिए, जब तक आमाशय स्वच्छ न हो जाय। इसकी पहचान यह हे कि कुछ दिनों के बाद वस्त्र में कोई कफ या चिकनाहट नहीं मिलती।

वस्ति क्रिया -

महर्षि पतञ्जल द्वारा प्रणीत योग सूत्र में साधनवाद के अन्तर्गत शोधन योग की चौथी क्रिया वस्ति क्रिया हे। प्राचीन योगियों ने शाधन योग क अन्तर्गत षटकर्म की क्रियाओं मे वस्ति क्रिया को दूसरे स्थान पर रखा हे। परन्तु मेरामत कुछ भिन्न हे। मे इसे शोधन की क्रियाओं में तीसरे स्थान पर रखता हूँ क्योंकि योग एक विज्ञान हे, के अन्तर्गत योग की वैज्ञानिकता एव प्रमाणिकता की प्रासगिकता पर जोर दे रहा हूँ चूँकि नेति क्रिया के द्वारा मस्तिष्ट, धौति क्रिया के द्वारा आमाशय की सफाई के बाद बडी ऑत की सफाई का नम्बर आता है। इस प्रकार वस्ति क्रिया मेरे मत से तीमरे स्थान पर ज्यादा तक्र सगत एव उचित है।

बडी ऑत शरीर का वह अग हे जिसस खाये भोजन का पचना एव पाषक के बाद अवशेष मल एकत्र हो जाता है यदि वह मल अपने प्राकृतिक समय पर नहीं निकलता तो अनेको प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते है। आजकल कब्ज की समस्या बहुत ज्यादा देखा को मिलती है। शारीरिक रोगों की जड में कोष्ठबद्धताया क्रब्ज ही मूल कारण के रूप में होता हे और किसी भी चिकित्सा पद्धति से एक सीमा के बाद या कुछ दिनों के बाद लाभ न मिलने के कारण कब्ज का दूर न करना या होना। कारण स्पष्ट है कि कब्ज के कारण ऑतो में मल रुक जाता ह ओर वह जब सडता हे तो दूषित वायु उत्पन्न हाती हे अार वह दूपित वायु शरीर के किसी भी भाग में पहुँच कर दर्द या उसके स्वाभाविक क्रिया में बाधा उत्पन्न करती हे। मरे अनुभव में आया है कि कब्ज का पहला प्रभाव पाचन एव दूसरा पापण की कमजोरी के रूप में पडता हे। इस प्रकार धीरे-धीर पोषक एव निष्कामक अगों में कमचोरी इतनी हो जाती हे। कि मदाग्नि एव अर्जीर्ण के कष्ट रहन लगते है। मदाग्नि व अजीर्ण के सम्बन्ध में आयुर्वेद का कहना है कि सब रोग मल सचय और मदाग्नि से होते है। सब विकारों का आदि सम्बन्ध उदर(ऑतो) से है। अजीर्ण मदाग्नि का कारण होता हे ओर वह अजीर्ण मलिनता (कोष्ठबद्धता) के कारण होता है। ।

हमारी आतो में खाद्य पदार्थो का रस चूसने का कार्य अविराम गति से चलता रहता हे पर जब उन्हीं आतो में मल जमा होकर सडने लगता हे तब हमारी आते उस जमा हुये मल से उसक विष को चूसती हे ओर चूसकर उस विष को रक्त में मिला देती हे जिससे रक्त विषाक्त हो जाता हं जा अनेकों प्रकार के रोगों का कारण होता हे।[3] कब्ज क अनकों कारण हे परन्तु मै। उनमें प्रमुख कारणो को ज्यादा महत्व देता हँ

95

वे कारण इस प्रकार है -शौच के वेग को रोकना , शौच में जल्दबाजी एव जोर लगाना, शौचालय की गन्दगी , भोजन में अनियमितता, बिना भूख या कम भूख में खाना भर पेट या भरपेट से अधिक खाना, चोकर निकले आटे की रोटी एव छिलका निकली दालों का सेवन, मात्रा से अधिक खाना , दिन भर में तीन किलों से कम पानी पीना, भोजन जल्दी-जल्दी व बिना खूब चबाये खाना, शारीरिक श्रम या उदर शक्ति विकासक व्यायाम की उपेक्षा, मानसिक तनाव की अधिकता एव मानसिक विश्राम का अभाव , रात्रि दर मं साना एव प्रात देर से जागना, नाभि का हट जाना, नशीली गोलियों आदि का सेवन , अपानवायु का न खुलना उत्तेजक व दस्तावार औषाधियों का सेवन अनुचित विधि से उपवाम या व्रत करना।

इस कब्ज को दूर करने के लिये एनीमा का सहारा लेते हे क्योकि एनीमा से रूका हुआ मल निकल जाता हे। फलस्वरूप रूके मल के कारण उत्पन्न कष्ट, गर्मी व गैस शान्त हो जाती है और रोगी को तुरन्त सुख का अनुभव होता हे।

एनीमा की भाति प्राचीन काल से ही वस्ति क्रिया के द्वारा योग साधक अपनी आतो की गन्दगी साफ करते थे। जिससे योगाभ्यासी विशेष नाप एव गोलाई (बॉस) की नली गुदा में डालकर नाभि तक जल में खड होकर आतों में पानी भर लेते थ। तत्पश्चात पानी से बाहर आकर मल को निकाल देत थे। लेकिन यह क्रिया न केवल सीखना ही कठिन है बल्कि वर्तमान समय में करना भी अव्यावहारिक है।

वस्ति युवावस्था को बनाये रखती हे, अयोग्य , आयु बल, अग्नि, मधा, बुद्धि तथा वर्ण को सुन्दर करती है। इसलिए वस्ति क्रिया को चरक सहिता में समस्त चिकित्सा का आधार कहा गया है। वस्ति कर्म से वायु गोला, तिल्ली उदर ओर

---

[1] रोगा सर्वोऽपि मदऽनो सुतरामुदराणिच।

2 हैण्ड बुक आफ फिजियालॉजी पृष्ठ 407 डब्ल्यू0 ए0 हली वटन एम0 डा0

वात, पित्त ,कफ से पैदा[96] हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते है।1 मेरा स्वय का अनुभव है कि वस्ति क्रिया से तत्काल आर्तो को सफाई को जाती हे, कब्ज टूट जाता हे। जिससे गैस नहीं बनती है। मल की सडान मिट जाती हे। जिसके कारण सम्भवत सभी रोगों में जल्दी लाभ मिलता हे।

वस्ति क्रिया के प्रकार

1 गणेश वस्ति

2 सेल्फ वस्ति

3 डायरेक्ट वस्ति

4 लेट करके वस्ति

5 बच्चो की वस्ति

1 गणेश वस्ति (गणेश क्रिया)

गणेश वस्ति या गणेश क्रिया शौचालय में ही शौच के बाद की जाती हे। किसी कारण यदि शौच खुलकर न हो रहा हो अथवा ऐसा लगे कि अभी मल और हे जिसे निकल जाना चाहिए तो तुरन्त गणेश क्रिया करें। कब्ज, गैस, बवासीर, चक्कर, रक्तचाप, हदय कष्ट जेसे कठिन रोगियों को शोच के बाद नियमित गणेश क्रिया अवश्य करनी चाहिए। यह क्रिया करने वाले आसानी से बीमार नहीं पडते । मेरी राय यह है कि बीमार न भी हों तो भी गणेश क्रिया नियमित करनी चाहिए।

मै यह भी बताना चाहूँगा कि इसे गणेश क्रिया क्यों कहा जाता हे। हमारे रीड-रज्जु में चक्र स्थित है जिनमें मूलाधार चक्र का स्थान प्रथम हे और वह हमारी रीड के अग्रिम छोर अर्थात हमारे गुदा मार्ग में ही स्थित है और मूलाधार चक्र के देवता गणेश जी कहे जाते हे । अत उन्हीं के नाम से इस क्रिया को गणेश क्रिया कहा जाता है। **गणेश क्रिया की विधि** - इस क्रिया को शौचालय के स्वभाविक शौच के बाद करते है। जिसमें पहले बाये हाथ के अँगूठे के बगल वाली उगली ओर फिर बीच वाली उगली में अण्डी, गरी या सरसों का तेल लगाया जाता हे। फिर छोटी उगली को आगे

---

[96] गुल्म प्लीहोदर चापि बात पित्त कलादभाग।
वस्ति कर्म पप्रभावन क्षीयन्त सकलाभया ।। चरकसहिता

[97] गुल्म प्लीहादर चापि बात पित्त कलादभाग।
वस्ति कर्म पप्रभावन क्षीयन्त सकला या ।। चरकसहिता

की ओर से गुदा के अन्दर धीरे से डालकर धीर-धीरे चारों आर घुमायों। इसके बाद इस उगली को निकाता कर दूसरी अर्थात केवल बीच वाली उगली को उसी प्रकार गुदा के अन्दर डालकर गालाई से धुमायें। उगली मे चढाने के लिए एक विशेष प्रकार की रबर फिगर आती है। शुरू में रबर फिगर चढाकर करना ज्यादा अच्छा है। उगलियां के नाखून कटे होने चाहिए। सुविधा के लिए शोचालय में ही किसी चोडे मुँह की शीशी मे तेल भर कर रख लें। किसी कारण तेल की सुविधा न होन पर उगलियों को पानी में डुबाकर गणेश क्रिया का बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। लेकिन बवासीर, भगन्दर , कॉच एव कब्ज के जीर्ण रोगियों को तेल, रबर फिगर दोनों चीजों का प्रयोग करना अनिवार्य हे। तलों मे केस्टर आयल (अण्डी का तेल) सबसे अच्छा होता हे।

सेल्फ वस्ति क्रिया (बैठ करके)

सेल्फ वस्ति क्रिया के लिए , एक विशप्प प्रकार का यत्र होता हे जिसे सेल्फ एनीमा सिरीज कहते है। इसमे दो सिरे होते हे। एक सिरा नुकीला होता है जिसमें आउटर वाल्व होता हे अर्थात इस बाल्व से पानी अन्दर नहींआ सकता । दूसरा सिरा चोडे मुँह का होता है जिसमें इनर वाल्व होता है। इसमें पानी बाहर से अन्दर ही जा सकता है। इस यत्र के बीच में गेंद की तरह गोलाई होती है, जिसक माध्यम से पानी भरते और निकालते है।

यदि ऐसा लगे कि शोच खुलकर नहीं हुआ है अथवा नहीं होगा या किसी कठिन रोग से पीडित हे तो इस क्रिया को उस दिन अवश्य करें। रात को सोते समय वस्ति क्रिया करने से बहुत लाभ होता है।

सेल्फ वस्ति क्रिया करने की विधि सेल्फ एनीमा के चौड सिरे को पानी भरे लोटे में डालकर बीच वाले गुब्बारे को चित्र के अनुसार धीरे-धीर दबाइये और जब दूसरे सिरे से पानी की धारा निकलना शुरू हो जाय ।

तो इस सिरे में तेल लगाकर धीरे से डेढ मे ढाई इच गुदा के अन्दर करके
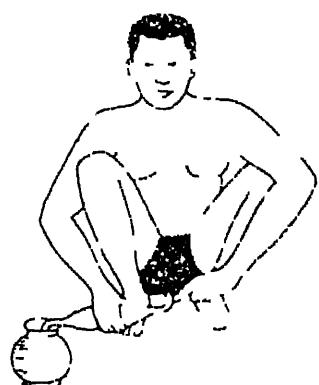
उपरोक्त चित्रानुसार धीरे-धीरे बीच के भाग को दबा -दबा कर आधा पाव या पाव भर पानी चढा ले। शोच का अनुभव होने पर गुदा के अन्दर का प्रवेशित सिरा बाहर निकाल लें। फलस्वरूप पानी के साथ बडी आत का मल तुरन्त बाहर निकल जायगा। अब पुन गुदा के अन्दर पहले की तरह पानी भरना शुरू करें। यह ध्यान रखना जरूरी है। कि जब पानी ओर मल स्वय निकलने की कोशिश करें तो गुदा के अन्दर का प्रवेशित सिरा हटा द। इस प्रकार पानी के साथ ऑत का रूका या पुराना मल धीरे-धीरे निकल जाता है। बवासीर भगन्दर के रागी वस्ति यत्र में किसी प्रकार की चिकनाहट अवश्य लगा दें। सभी लोग लगायें तो ओर भी अच्छी बात हे।

यदि इस क्रिया के बाद गणेश क्रिया से मलाशय में तेल की चिकनाहट कर दी जाय तो ओर जल्दी लाभ होता हे। जिनकी नोलि क्रिया चलती हो वे पानी भरकर अपने स्थान पर खडे हो जाय और कुछ देर तक नौलि चलाए नौलि न चलने पर उपनोलि चलायें तो विशेष लाभ होगा।

वस्ति क्रिया के लिए पानी - जेसे पानी नल अथवा कूँए से निकले। वही पानी वस्ति क्रिया के लिए ठीक हे। किसी विशेष रोग की अवस्था में पानी में स्वमूत्र, गौ-मूत्र, चिरायता , कुटकी का पानी आदि मिला सकते हे। बहुत ठडे मौसम तथा पहाडों में जहॉ पानी बहुत ठण्डा हो तो पानी को थोडा गुनगुना कर लेना चाहिए। यदि पहले या दूसरे दिन भी सन्तोषजनक मल न निकले तो परेशान न हो। जब मल फूलेगा तो स्वय निकलेगा।

डायरेक्ट वस्ति क्रिया -

डायरेक्ट वस्ति क्रिया में एक लम्बी रबर की टयूब का प्रयोग होता है जिसे एनीमा टयूब अथवा एनीमा केन कहकर प्राप्त कर सकते है। इसके दोनों सिरे एक से होते है। सेल्फ वस्ति की ही भॉति इसे भी शौचालय में करते है।

विधि - निम्न चित्र के अनुसार एक हाथ से एक सिरा पकडकर टोटी
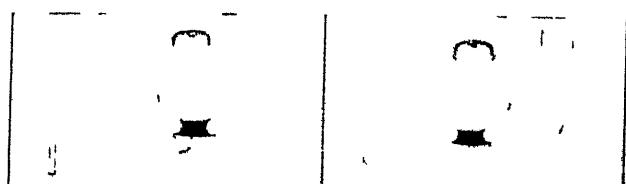
खोलदें और दूसरे हाथ से टयूब को नीचे पकड लें। अब नल की टोटी खोल दें आर पानी की धार की ऊँचाई कम से कम छ इच कर लें। अब इस सिरे को गुदा के अन्दर धीरे से प्रवेश करा दे। इस विधि से गुदा

के माध्यम से नल या पानी बड़ी आँत में स्वयं जाने लगता है। कुछ देर बाद गुदा का द्वारा अपने आप फैल जायेगा या खुल जायेगा। गुदा के फैलने से पानी के साथ -साथ रूका हुआ मल अपने आप बाहर अपने लगेगा। इस प्रकार पानी बड़ी आँत में जायेगा और साथ ही पानी व मल बाहर निकलेगा। जब पानी व मल निकलने लगे तब दायें हाथ से गुदा के अन्दर प्रेवशित टयूब को अवश्य पकड़े रहें जिससे टयूब बाहर न निकले। यह क्रिया दो-चार मिनट करना ही पर्याप्त होगा।

लेट करके वस्ति क्रिया:- इस विधि के लिए सेल्फ एनीमा या एनीमा केन या एक डिब्बा जिमें एक लम्बा लगभग दो मीटर लम्बा टयूब लगा होता है जिसे लगभग जमीन से एक मीटर की ऊँचाई पर पानी भर कर रख देते है। यहाँ पर दो उपकरण सेल्फ एनीमा टयूब व एनीमा केन दोनों के चित्र निम्नवत है। सुविधानुसार वस्ति क्रिया करें।

करने की तैयारी :-

1. इस विधि में वस्ति लेने वाले को पीठ के बल लेटना होता है।
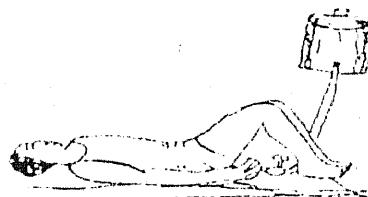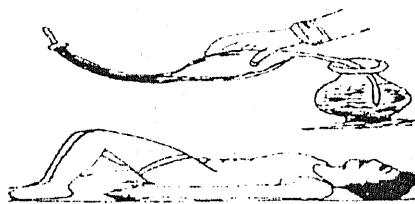
अत: इसके लिए अलग कमरा या बड़े बाथरूम की जरूरत होती है।

2. लगभग एक दो लीटर गुदगुना पानी।
3. चार बड़े नीबू का रस।
4. एक चम्मच नमक साधारण।
5. सेल्फ वस्ति यंत्र या एनीमा केन टयूब युक्त
6. कमर के नीचे लगाने के लिए तकिया।

सर्वप्रथम कमरे या बाथरूम में पीठ के बल लेट जाइये। दोनों पैरों को 45 डिग्री में मोड़ दें। कमर के नीचे के कपड़े उतार दें या ढीले करके घुटने के नीचे तक खिसका दीजिए। गुनगुने पानी का बड़ मुंह वाला लोटा दाहिनी जाँघ के निकट इस प्रकार से रखें कि सेल्फ एनीमा के चौड़े सिरे को जब इसमें डाले तो दूसरे सिरे को गुदा के अन्दर डालकर पम्प करके आंतों में पानी भरने में कोई कठिनाई न हो। पानी भरते समय यदि चौड़ा सिरा यदि लोटे के बाहर आ जाता है तो किसी रस्सी के इस सिरे को गांठ लगाकर लोहे के मुंह पर लपेटकर बांध दे। इससे वह सिरा लोटे से बाहर नही

निकलेगा। अब सेल्फ एनीमा के बीच वाली गेंद को कई बार दबाए, जब नुकीले सिरे से पानी की धारा निकलन लगे तो इस सिरे को गुदा के अन्दर प्रवेश करा दें । यदि कोई कठिनाई हो तो इस सिरे को गुदा के अन्दर प्रवेश करा दें। यदि कोई कठिनाई हो तो इस सिरे को किसी तल जेस गरी, सरसों, या अण्डी के तेल से चिकना कर लें। अब बराबर पम्प करते जाये। और धीरे-धीरे आधा लीटर तक पानी चढा लें। बीच में यदि शोच जाने की इच्छा हो तो कुछ समय के लिए पानी भरने की क्रिया रोक दें। पर्याप्त पानी चढाने के बाद नुकीले सिर को गुदा स बाहर निकाल लें। इस अवस्था में कुछ देर लेटे रहें ओर लेट-लट ही पेट की हल्की मालिश बायें से ऊपर फिर ऊपर से दायी ओर की दिशा में करें। थोडी -थोडी देर में करवट बदलें एव पैर सिकोडकर पेट म हाथ से दबायें व मालिस करें। तथा जब पानी रूक जाये तो किग एव क्वीन व्यायाम करें। पुन जाघों को पेट में सटाकर हाथों से पैर दबायें ओर जब पानी रूक जाये तो खडे होकर नौलि क्रिया का अभ्यास करे। इस प्रकार दस पन्द्रह मिनट तक यदि पानी रोका जा सके और फिर शौच जाया जाय तो बहुत सा मल निकल जाता है यदि पानी चढाने के तत्काल बाद शौच जायेंगे तो मल ज्यादा फूलेगा नहीं ओर ज्यादा नहीं निकलेगा। अत एनीमा के पानी में नीबू का रस और नमक मिला दने से मल जल्दी फूल जाता हे तथा आतो में चिपका मल शीघ्र छूट जाता है और ज्यादा से ज्यादा पेट साफ होता हे । मे अपने अनुभव से सेल्फ एनीमा के स्थान पर एनीमा पाट को ज्यादा महत्व दॅगा। इसमें केवल पानी भर कर दीवार में कील गाडकर डिब्बे को लटका देते है तथा रबर में नोजल से पानी निकलने पर गुदा मार्ग में प्रवेश करा देते है। इसमे पानी स्वत अन्दर जाने लगता है। यह ज्यादा आसान होता है वस्ति क्रिया करने के पहले निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्यों का क्रमबद्ध ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

महत्वपूर्ण तथ्य -

1. पानी में साबुन का भाग भूलकर भी न मिलाये।
2. यदि पेट में कीडे हो ऑव हो तो पानी में अधिक स अधिक अपना ही पेशाब जो कि प्रात काल का हो मिला लें।
3. उपवास के दिन प्रात ही यदि इस क्रिया से ऑत साफ कर ली जाय तो उपवास का लाभ कई गुना बढ जाता हे।
4. शरीर के किसी भी तीव्र कष्ट जस ज्वर, चुकाम, दरत या अम्ला दर्द गस आदि से वस्ति क्रिया क करने से तत्काल लाभ मिलता ह।

5 वस्ति क्रिया के एक घन्टे तक कुछ नही खाया जाय, यदि आवश्यकता हो तो गरम पानी में आधा नीबू का रस, दो चम्मच शहद मिलाकर पियें अथवा सब्जियों का सूप या फलों का रस पी सकते हे।

6 स्वस्थ व्यक्ति सप्ताह में वस्ति क्रिया से यदि एक बार ऑते साफ कर लिया कर ता शायद ही कभी कोई बीमार पडे। इसलिए मेरी राय है कि परिवार के सभी सदस्य चाहे बडे हो या बच्चे, स्वस्थ हा या बीमार, स्त्री या पुरूष काई भी सप्ताह में एक बार वस्ति क्रिया करके आजीवन अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता हे।

यह वस्ति क्रिया योग की अनूठी क्रिया है। अपने अनुभव के आधार पर तो मै इस बात को दावे से कहता हूँ कि यदि वस्ति क्रिया की उपरोक्त नवीन विधियॉ एव उपयोगिता का सही -सही प्रचार करा दिया जाय ता लोगों का बहुत सा चिकित्सकीय खर्च बच जायेगा। योगियों का अनुभव हे कि यदि रोगी की टट्टी नियमित और सही होने तागे तो रोगी जल्दी स्वस्थ हो जायेगा।

वस्ति क्रिया आर्तो में रूका' मल बिना जोर लगाये निकालने में सहायता करती है। कमजोर आर्तो को शक्तिशाली बनाने में सहायता करती हे। इसी प्रकार जब बच्चे बीमार होते हे तो उन्हें भी टट्टी की गडबडी हो जाती हे। इसलिए छोटे बच्चे चाहे वे एक महीने के हो या चार साल के वस्ति क्रिया उन्हें भी उतनी ही लाभपाद हे जितनी जवानों एव वृद्धों को।

छोटे बच्चों की वस्ति क्रिया -

इसके लिए एक प्रकार की पिचकारी हाती हे। जिसे ग्लीसरीन सिरींज कहते हे । यह पिचकारी की तरह होता है।
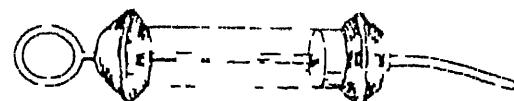
करने की विधि

सर्वप्रथम ग्लीसरीन सिरीज में नीबू नमक युक्त हल्का गुनगुना पानी भर ले। पानी भरत समय यह देख ले कि पानी क अन्दर एक भी बुलबुला न हो यदि हो ता पलट कर अर्थात नुकीला सिरा आसमान की ओर करके नीचे मे दबाव डालकर हवा का निकाल दें। जैसे चिकित्सक इजक्शन लगाने से पहले करते हे। अब बच्चे को लिटाकर धीरे-धीरे पानी भरें। सिरिज क

नुकीले सिरे में चिकनाई अवश्य लगा देना चाहिए। एक बार मं यदि पर्याप्त पानी न भर पाये तो पुन इसी प्रकार पानी भर दें ।

अब बच्चे को पानी को रोकन की प्रेरणा दें या उसके नितम्ब आपस म चिपका कर पकड लें ओर उसके पट में मुलायमियत से मालिश करें। शौच लगने पर शौच जाने दें।

छ महीने की उम्र तक बच्चे की ऑत में 100 ग्राम से 200 ग्राम तक पानी एक वर्ष से लेकर छ वर्ष तक के बच्चे की ऑत में 200 ग्राम स 500 ग्राम तक पानी चढाते है। छ वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक के बच्चे की ऑत में एक किलो तक पानी और उससे बडी उम्र वाले लोगों को एक किलो से लकर दो किलो तक पानी चढाते हे।

वस्ति के बारे में भ्रम

कुछ लोगों को वस्ति क्रिया के बारे में यह भ्रम हो जाता हे कि इसके करने से इसकी आदत पडत जाती हे परन्तु यह बात नितान्त सही नही हे। सही बात तो यह है कि लोगों की ऑते जब कमजोर होती हे अथवा आहार विहार में अनियमितता बरतते है तो स्थायी कब्ज की शिकायत होती है ओर जब वस्ति क्रिया करते हे तो मल आसानी से निकल जाता है। चूकि जो काम विरेचक पूर्ण इत्यादि कठिनता से नहीं कर पाते है, वस्ति सरलता से दो-चार मिनट मे कर देती है। जब उसका कब्ज जड से दूर हो जाता तो मल स्वय समय पर होने लगता है। तब वस्ति की कोई जरूरत नहीं पडती है। अत वस्ति के बारे में भ्रमित न हो।

नौलि क्रिया

अष्टाग योग में साधनपाद के अन्तर्गत शरीर शोधन की क्रियाओं नेति, धौति वस्ति क्रियाओं के उपरान्त नौलि क्रिया का क्रम आता है। नौलि क्रिया से पेट के अन्दर के समस्त विकार स्वत. दूर हो जाते है। पेट के अन्तर्गत आमाशय, यकृत , प्लीहा छोटी ऑत व बडी ऑत आदि आते है इसमें मल चर्बी अथवा शक्तिहीनता आ जाने से अनेको प्रकार के रोग रहन लगते है। इन अगो में रूके विकार निकालने के लिए एव उन्हें पूर्ण स्वस्थ रखने के लिए नौलि क्रिया अद्वितीय हे। 'योग शास्त्र में नौलिक्रिया को सभी क्रियाओं का मुकुटमणि कहा जाता है । योगाभ्यासी को नौलि क्रिया सिद्ध करना इसलिए आवश्यक है कि इससे बढा हुआ पेट सामान्य हो जाता हे। गोला

तिल्ली, मन्दाग्नि , वात पित, कफ आदि दोप एक साथ दूर हो जाते हे। 1 कब्ज, गैस , ऑव का पुराने से पुराना कष्ट धीरे-धीरे दूर हो जाता हे।

पेट को बायें से दायें से बाये , ऊपर से नीचे , नीचे से ऊपर इस प्रकार से घुमाया जैसे बाजीगर के हाथ में दो गेंद घूमती हे अथवा जल की भँवरी घूमती है। इस प्रकार पेट के अन्दर बडी ऑत को घुमाने की क्रिया को नौलि क्रिया कहते हे।

सर्वप्रथम पुरूष कपडे उतारकर शीशे के सामने खडे जो जाय। महिलाए धोती पहने हो तो काघ लगा ले। अब एडियों का आपसी अन्तर छ इच और अँगूठों का अन्तर नौ इच कर लें। नाभि से लँगोटा , चढ्ढी अथवा धोती नाभि से तीन चार इच नीचे खिसका ले। अब घुटनों को थोडा आगे झुकायें और घुटनों के ऊपर हाथो को इस प्रकार रखें कि अँगूठा अन्दर की ओर, चारों अँगूलिया आपस में अच्छी तरह सटी हुई बाहर की ओर रहें। झुकते समय हाथों को घुटने के ऊपर रखें नौलि क्रिया सिद्ध करने की यह पहली तैयारी हे अब नये अभ्यासी पहले नौलि क्रिया न करके 20-100 बार उपनौलि करें और उपनौलि के बाद देर तक उडिडयान बन्ध लगाने का अभ्यास करें। जितना अच्छा और जितना देर तक उड्डियान बन्ध होगा, उतनी ही अच्छी नौलि होगी। नौलि की यह दूसरी तेयारी है। अब नौलि जल्दी सिद्ध हो इसके लिए घुटनों से जॉघों तक आगे की तरफ थोडा कडुआ तेल चुपड ले जिससे हाथों को चलाने में कठिनाई न हो और जिनकी जॉघों में घने बाल हो तो टूटे नहीं नौलि की यह तीसरी और अन्तिम तैयारी है।

उपनौलि क्रिया की विधि

सर्वप्रथम पेट को धीरे-धीरे पहल अन्दर की ओर सिकोडिये और फिर बाहर की ओर छोडिये। यथाशक्ति इस क्रिया को पहले धीरे-धीरे फिर जल्दी -जल्दी करना ही उपनौलि है। इस क्रिया को करते समय श्वास बाहर निकाल दें। यह क्रिया कम से कम 50 बार या सौ बार अवश्य करनी चाहिए। [98]

उडिडयान बन्ध की विधि सर्वप्रथम सीधे खडे जो जाइये। हाथों को कमर के ऊपर इस प्रकार रखिये कि चारों अँगुलियॉ आपस में सटी हुई बाहर तथा अँगूठे पीठ

---

[98] विश्वगुरूकल्पतरू पृष्ठ 520 कल्पतरू महाराज

की ओर रहें। अब ठुडडी को ऊपर करते हुए गहरा श्वास नाक से भरकर तुरन्त कमर के आगे की ओर झुकते हुए श्वास को मुँह से यथासम्भव बाहर निकाले। अधिक से अधिक श्वास तभी निकल सकेगा जब जिह्वा की आकृति कोये की चांच की तरह बनाकर निकालेगें। अब श्वास बाहर निकाल कर बाहर ही रोक द । और पेट को अन्दर की ओर खींच कर पीठ से चिपका कर सीधे खडे हो जाये और लगभग 30 सेकेण्ड तक रोंकें। कम से कम इस क्रिया को पॉच बार दोहरायें।

नौलिक्रिया के प्रकार इसके तीन प्रकार हे।

1 दक्षिण वाम नौलि

2 मध्य नौलि

3 गोल नौलि

1 दक्षिण वाम नौलि

उपनौलि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
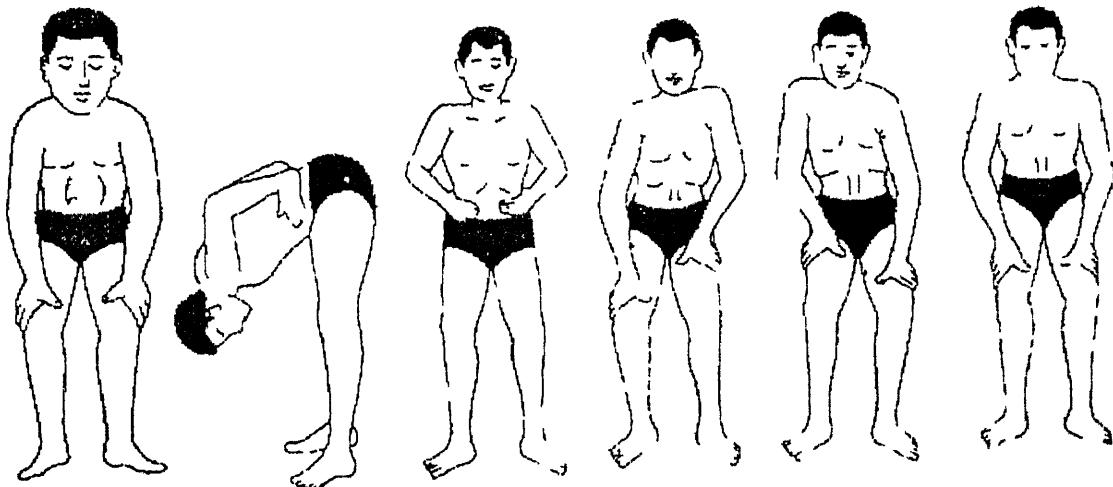
पूर्ण तैयारी के बाद श्वास को नाक से भरिये, मुह को चोंच की तरह बनाकर श्वास को यथासम्भव बाहर निकालिए। बाहर निकालकर श्वास को बाहर रोक दीजिए। अब निम्न चित्रानुसार घुटनों को आगे की ओर झुका लीजिए और तेल लगी जॉघों में मालिश शुरू कर दीजिए । मालिश करत समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अब थाडा जोर लगाते हुए हाथों से ऊपर स नीचे की ओर ल जाये, जब बायें हाथ बिना जोर स नीचे से ऊपर की ओर ल जायें और जव बायें हाथ को जोर लगाते हुए ऊपर स नीच ले जायें तब दायें हाथ स बिना जोर लगाये नीचे से ऊपर ले जाये। इसी क्रम को जब तक सरलता से श्वास बाहर रोक सकें, धीरे-धीरे केर और फिर उड्डियान बन्द करके उपरोक्त क्रम में मालिश करें । यही दक्षिण वाम नौलि हे। दक्षिण वाम नौलि इसे इसलिए कहते है।

क्योंकि जब दाये हाथ की हथेली से दायी जाघ की मालिश करते है तो पेट का दाया हिस्सा नल की तरह बाहर आ जाता हे और बाया हिस्सा और अन्दर की आर चला जाता है । इसी प्रकार जब बायी हथेली से बायी जाघ र मातिश करते है तो पेट का बाया हिस्सा नल पाइप की तरह आगे की ओर जा जाता हे और दाया हिस्सा ओर अन्दर की ओर चला जाता हे । इसी क्रिया को जल्दी जल्दी करने से भवरी या बाजीगर की गंदों की तरह पेट घूमता हुआ नजर आता है।

2 मध्य नौलि –

दक्षिण वाम नौलि के बाद मध्य नौल करनी चाहिए। दक्षिण वाम नौलि एव मध्य नौलि में केवल इतना ही अन्तर हे कि दक्षिण वाम नौलि में जब दायी जाघ की मालिश करते है तो बायी जाघ की नहीं करते और जब बायी जाघ की मालिश करते है। तो बायों जाघ की नहीं करते और जब बायी जाघ की मालिश करते है। तो दायी जाघ की नहीं करते। लेकिन मध्य नोलि में दोनों हाथों से एक साथ ऊपर से नीचे की ओर लेकिन नीचे से ऊपर की ओर नहीं करते जिससे पेट के बीच का हिस्सा मोटे नल की तरह आगे की ओर आ जाता है। और जब बिना रगडे हथेलियों को नीचे से ऊपर की ओर ले जाते है। तो पेट अन्दर की ओर चला जाता है।

3 गोल नौलि –

दक्षिण वाम नौलि और मध्य नौलि जब अच्छी तरह से सिद्ध हो जाय तब गोल नौलि का अभ्यास करना चाहिए। इसमें हथेलियों से जाघों पर मालिश नहीं करते बल्कि जाघ के मध्य में अपनी-अपनी तरफ की हथेलियॉ अच्छी प्रकार से चिपकाकर रख देते हे ओर

1 पहले दायी हथेली से दायी जाघ पर जोर दे तो बायी हथेली को बिल्कुल ढीला छोड दें। और फिर बायी हथेली से बायी जाघ पर जोर दे तो दायी हथेली को बिल्कुल ढीला छोड दें। कुल समय तक इसी प्रकार करना चाहिए।

2 दोनों हाथ से दोनो जाघों पर दबाव डालते हुए दोनों हाथेलियो को एक ही दिशा में अपनी जगह पर गोल घुमायें। पहले दायें से बायें, कुछ दे बाद बाये से दाये। इस क्रिया के फलस्वरूप पेट इस प्रकार घूमत। नजर आता है जैसे तेजी से चल रहा गोल झूला। जब श्वास न रूके तो पुन उड्डियान बन्दर करके उपरोक्त नौलि चलाये। यह क्रम कम से कम 10 बार अवश्य करना चाहिए।

महत्वपूर्ण तथ्य

1 अति दुर्बल , कमजोर, अल्सर इत्यादि के रोगी बिना चिकित्सक के परामर्श के नौलि न करें।
2 नौलि जल्दी सिद्ध करने के लिए तीन चार दिन रसाहार या फलाहार पर रहें।
3 यदि कुछ दिन वस्ति से बडी ऑत की सफाई कर डालें तो नोलि सिद्ध करने में कोई कठिनाई न होगी।
4 नौलि प्रात शौच के बादखाली पट का जाती है। तथा शाम को भोजन करने के पहले करना चाहिए।
5 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चे यह क्रिया न करें।
6 शख प्रक्षालन क्रिया के बाद नोलि क्रिया अतिशीघ्र सिद्ध हो जाती है।

शख प्रक्षालन -

महर्षि पातञ्जल एव गोरक्ष सहिता में षट्कर्मो का विधान शरीर शोधन के निमित्त धौति वस्ति नेति नौलि से लगाकर कपाल भाति तक किया गया है परन्तु शोधन की जिन क्रियाओं का प्रयोग किया गया है वे सब क्रियाए अलग-अलग अगों की सफाई अलग-अलग समय करती है। परन्तु परवर्ती योगियों ने एक ऐसी प्रक्रिया की खोज की जिसके द्वारा मुख से लगाकर गुदा मार्ग तक सफाई एक साथ एक ही समय में हो जाती है। इस क्रिया का नाम शख प्रक्षालन दिया गया। आज आधुनिक योगाचार्य प्राचीन विधियों के स्थान पर नयी विधियों का सहारा लेते है। मैं स्वय कम समय में मात्र दो व्यायामों के द्वारा ही इस क्रिया को सम्पादित करता व करवाता हूँ मेरे दृष्टिकोण में यह क्रिया शोधन योग की एक अद्वितीय क्रिया है। इस क्रिया को यदि माह में एक बार कर लिया जाय तो पेट के समस्त विकरों से शरीर सदैव मुक्त रहेगा। अब मै इस क्रिया की विस्तृत विवेचना करूँगा जिससे नयी एव पुरानी विधियों का समन्वयात्मक अध्ययन सम्भव हागा।

इस क्रिया से आमाशय की बीमारियॉ, कफ बनाना , भोजन का सही पाचन न हाना, अम्लता की परेशानी , मन्दाग्नि आदि के कष्ट , छोटा ऑत एव बडी ऑत चिपका पुराना मल, ऑव , कृमि गैस आदि के रोग तथा गुदा द्वारा से सम्बन्धित रोग जैसे बवासीर आदि सदा के लिए ठीक हो जाते ह ।योगशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार इस क्रिया को कायाकल्प भी कहते है।

इस क्रिया को करने से पूर्वकम से कम तीन दिन का उपवास कर लेना चाहिए। उपवास के पहले दिन सुबह शाम हरी सब्जी मिली खिचडी दूसरे दिन केवल सब्जी तथा तीसरे दिन , दिन में रसाहार आर रात्रि के भोजन के समय एकपाव या आधा लीटर पाचन शक्ति के अनुसार गुनगुना मीठा दुध पीते हे।

मीठे के लिए मै गुड को प्रमुखता दूँगा। चौथे दिन के आधा घण्टे पहले पुन एक पाव मीठा गुनगुना दूध जरूर पीते है। इसके बाद लगभग चार या पॉच लीटर पानी गरम करके पीने योग्य बना लेते है। प्राचीन योगी गुनगुने पानी मं और नीबू मिला देते थे परन्तु आज कल नमक के स्थान मेग्नीशियम सल्फेट का चूर्ण पॉच लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम मिला दिया जाता है। यह चूर्ण ऑतों की स्पन्दन क्रिया को बढा देता है। जिससे शख प्रक्षालन की क्रिया आसानी से होती है। दूसरे नमक शरीर के गुर्दे के लिए हानिकारक हाता हे तथा उच्च रक्तचाप के रोगियों का भी नुकसान दह होता हे।

अब उकडू बैठकर कुञ्जल की भाति दो गिलास पानी पीते हे। पानी पीने के पश्चात पाच मिनट तक टहलते हे। टहलने के बाद किग एव क्वीन व्यायाम पच्चीस-पच्चीस बार करते है। करने के पश्चात मेरे अनुभव में ऐसा आया है कि पिया हुआ पानी आमाशय की धुलाई करते हुए छोटी आत म पहुच जाता है। अब पुन पूर्ववत पानी पीकर उपरोक्त क्रियाए दोहराते हे। अब यहा पर किग एव क्वीन व्यायाम की प्रक्रिया की जानकारी देना ज्यादा महत्वपूर्ण होगा तथा बाद में आगे की प्रक्रिया के बारे में बताएगें।

किग एव क्वीन व्यायाम -

इन दोनां व्यायामों की खोज स्वामी देवमूर्ति जी महाराज ने की है। इस व्यायाम की रोगी निरोगी, बालक , वृद्ध , स्त्री-पुरूष सभी लोग सरलता से कर सकत है। इस एक मात्र व्यायाम से एक साथ इतने लाभ है कि सम्भवत उतने लाभ अन्य किसी व्यायाम या आसन से शायद ही हो। इसलिए इस व्यायाम का नाम पडा किग एक्सरसाइज ग योगासनों का राजा ।

करने की विधि -

तख्त या जमीन पर कम्बर या दरी बिछाकर पीठ के बल लेट जाये। हाथों को कधों की सीध में 180 डिग्री में फेलाकर सीधा कर लें तथा अगूठा अन्दर रखते हुए मुटठी बन्द कर लें। पैरों को चित्र के अनुसार घुटनों स
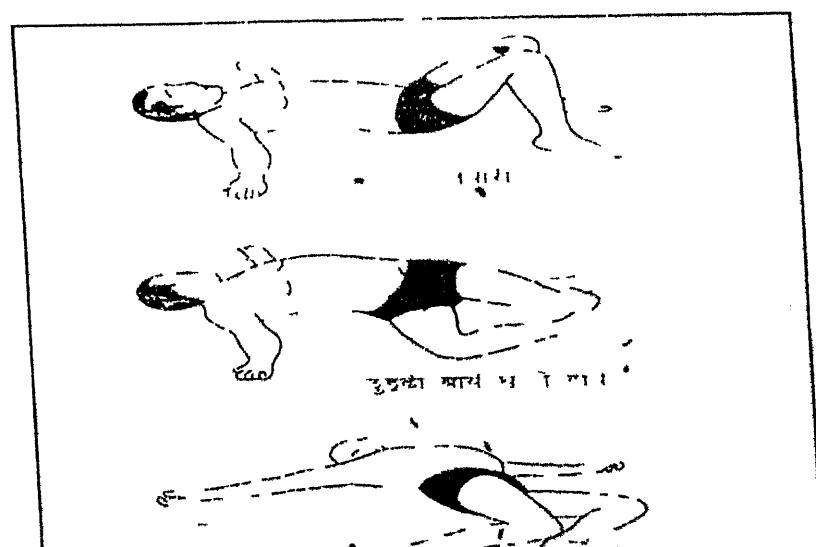
मोडकर आपस में इतना फासला करें जिससे कि जब घुटनों को दायी ओर की जमीन से लगाये तो एक पेर का घुटना दूसरे पेर की एडी से ठीक-ठीक लगें। उपरोक्त चित्र 2 एव 3 के अनुसार । अब ठोडी को बायें कध से लगाये और दोनों घुटनों को दायी ओर इस प्रकार झुकाये जिससे बाये पैर का घुटना दायें पैर की एडी से ठीक-ठीक लगे। चित्र दा के अनुसार स्थिति में कुछ देर रूके। इसके बाद अब ठोडी का दाये कन्धे से लगाये। चित्र 3 के अनुसार इस प्रकार ठोडी बाये तो घुटना दाये।, घुटना बायें तो ठोढी दायें।' प्रारम्भ के कम से कम 10 बार ओर क्रमश 15-15 बार तक बढाते हुए 50-50 बार तक कर सकते है।

महत्वपूर्ण तथ्य -

1 भोजन करने के एक घण्टे बाद तक यह व्यायाम न करें। हॉ इस व्यायाम के तुरन्त बाद भोजन किंया जा सकता है।

2 जिन व्यक्तियों के शरीर में बहुत लोच नहीं है। वह लोग प्रारम्भ में घुटने को एडी से बलपूर्वक लगाने का प्रयास न करे।

3 महिलायें मासिक धर्म के समय एव गर्भावस्था के तीन माह बाद इसे न करें।

4 जिन लोगो का हाल में कोई आप्रेशन हुआ हो या पेट या रीढ की नाडियों मे सूजन हो वे लोग भी किसी अनुभवी प्रशिक्षक के बिना इसे न करें।

क्वीन व्यायाम -

जिस प्रकार आसानों के विपरीतया पूरक आसन अनिवार्य रूप से करना पडता है। जिससे योगाभ्यासी को अधिक और पूरा लाभ होगा। जिस प्रकार सर्वागासन के बाद मत्स्यासन , सर्पासन व शलामासन के बाद पीठ के बल का नौकासन, धनुरासन के बाद पश्चिमोतासन आदि वैसे ही योग महर्षिस्वामी देवमूर्ति जी द्वारा अन्वेषित किग एक्सरसाइज के बाद क्वीन एक्सरसाइज अवश्य करना चाहिए। तभी पूरा लाभ मिलता है।

करने को विधि -

उपरोक्त चित्र के अनुसार ठोढी को बाये कन्धे से लगाये और दोनों
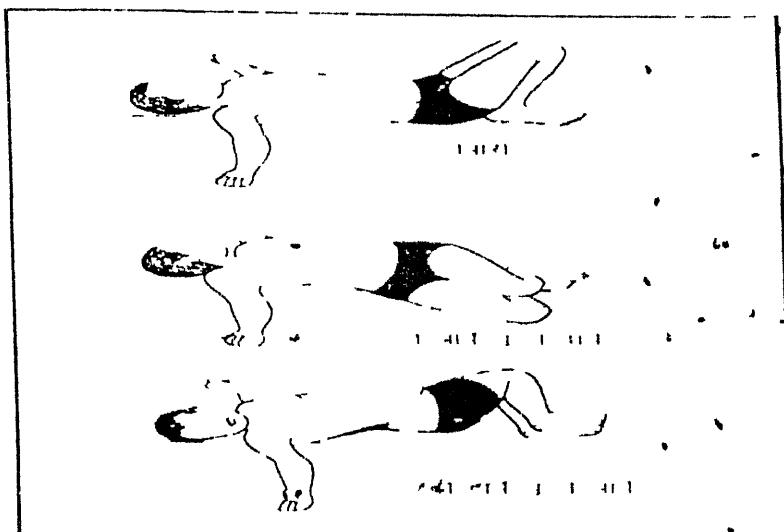
घुटनों अँगूठों एव एडियों को आपस में भली प्रकार चिपकाए हुए दायी ओर की जमीन से लगाये। इस स्थिति में कुछ क्षण रूके। इसके बाद ठोढी को दायें कन्धे से लगाये और पूर्ववत दोनों घुटनों , एडियों एव अँगूठों को आपस में चिपकाए हुए बायी ओर की जमीन से लगाये।

इस प्रकार किग्र एक्सरसाइज की तरह ही " ठोढी बाये तो घुटना दाये " घुटने बायें तो ठोढी दाये ." प्रारम्भ में कम से कम दस बार। बाद में धीरे-धीरे बढाते हुए 50-50 बार तक करने की कोशिश करें।

विशेष -

1 इन दोनों व्यायामों के सुबह शाम अभ्यास से या करने से न केवल हटी नाभि बैठ जाती है बल्कि वायु विकार की तकलीफों में भी नियमित प्रात शौच के पूर्व एव शाम को भोजन के पूर्व करने से बहुत लाभ होता हे।

2 शरीर की थकान मिटाने में ये व्यायाम अद्वितीय लाभकारी है। दिन भर भकान से चूर होने के बाद इन व्यायामों को धीरे-धीरे करने म कुछ ही समय में पुन थकान से मुक्ति एव चुस्ती का अनुभव होने लगता है।

3 अनिद्रा के रोगी इन व्यायामों को कुछ देर सोने के पूर्व करें। तत्पश्चात शवासन में लेटकर यदि साक्षी भाव से श्वास को आने जाने को देखने का अभ्यास करे तो उन्हें प्रथम दिन से ही नीद की गोलियों के खाने की आदत छूट जाती है।

4 रीढ मम्बन्धी कष्ट जैसे कमर दर्द, रीढ की हड्डी का टेढा होना उभरी याधसी होना आदि, इन व्यायामों के नियमित अभ्यास स निश्चित ठीक हो जाते है।

5 पहलवानी देशी व्यायाम , जिम्नास्टिक , ऊची कूद, लम्बी दोड , जागिग या किसी झटके के कारण डिस्क स्लिप जैसी तकलीफों में भी इस व्यायाम से बहुन लाभ होता है।

6 जिस पुरूष या महिला की कमर चौडी हाती जा रही हो अथवा पेट की चर्बी न घटती हे इन व्यायामों से बहुत लाभ होता है।

7 जिन बच्चों की लम्बाई बढती हो उसके लिए किग एव क्वीन व्यायाम बहुत लाभकारी सिद्ध हुई।

8 जो ध्यानाभ्यासी ध्यान में लम्बे समय तक स्थिर होकर नहीं बेठ पाते उन्हें इन व्यायामों को ध्यान के पहले अवश्य करना चाहिए।

अब किग एव क्वीन क्रियाओं की विस्तृत जानकारी हो जाने के बाद पुन शख प्रक्षाखन की क्रियाविधि को आगे कैसे बढाते है। इस पर पुन विचार करते हुए मुझ यह कहना हे कि पानी पीने से दूसरे क्रम के पश्चात अनुभव के अनुसार पहले पिया हुआ पानी बडी ऑत में ऑत में ओर नया पिया हुआ पानी छोटी ऑत में पहुँच चुका होता है। फलस्वरूप शौच की अनुभूति होती है। शौच को टालते नहीं बल्कि शौच क्रिया क लिए चल जाते है शौच के पश्चात गुनगुने पानी से हाथ धोकर पुन इच्छानुसार पानी पीकर पूर्ववत टहलने के बाद उपरोक्त आसन दुहराते हे। यदि शौच की अनुभूति हो, तो शोचालय चले जाते है। किसी किसी को इतना पानी पीने के बाद भी शोच नहीं आता हेअत घबराना नहीं चाहिए बल्कि चौथी बार पानी पीकर उपरोक्त क्रम' को दुहराते है ओर साथ में यदि आवश्यकता अनुभव करे तो वस्ति क्रिया भी कर लेते है। वस्ति क्रिया के कारण बडी ऑत के अन्तिम भाग में फसी मूल की गाठे निकल जाती है। और बार-बार शौच लगना प्रारम्भ हो जाता है। शोच में नया पुराना मल, आव कृमि इत्यादि निकलने लगते है। 1 महत्वपूर्ण बात यह है कि यह क्रम पानी पीने तथा व्यायाम करने का क्रम तब तक जारी रखते है। जब तक दस्त में एकदम साफ पानी अर्थात जैसा पानी पीते है वैसा ही पानी न आने लगें।[2]

99
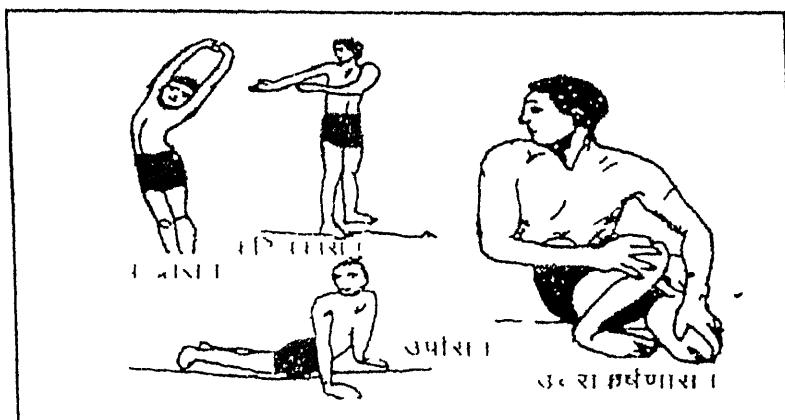
प्राचीन विधि के आसन

उपरोक्त चारों आसन चित्रानुसार क्रम से दोनों ओर जल्दी - जल्दी चार -चार बार प्रत्येक बार 2 -2 गिलास शख प्रक्षाखल का पानी पीने के बाद किये जाते है।

जैसा मैने अनुभव किया हे कि आजकल प्राचीन काल के चारों आसनों की जगह योग महर्षि स्वामी देवमूर्ति जी महाराज के किंग एव क्वीन आसन व्यायाम अधिक उपयोगी है।

जब यथावत पानी शौच मल के स्थान पर आने लगे और फिर पानी आना भी बन्द हो जाये तब 10-15 मिनट का श्वास्रन और उसके पश्चात बन्द जगह में ताजे पानी से स्नान करते है। उसके बाद दलिया या चावल, मॅग और उसमें घी 50 ग्राम से 100 ग्राम तक डाल कर खाते हे खाने के बाद नींद लगे तो सो जाते है ।फिर उस दिन शाम, को कुछ नही खाते। यदि बहुत भूख लगे तो पुन घी पडी खिचडी खा सकते है। अगले दिन दोपहर में भी खिचडी खाते हे तथा शाम को दो रोटी सब्जी के साथ ले सकते है। शख प्रक्षालन के बाद अगर प्यास लगती है तो सादा गुनगुना पानी पिया जा सकता है।

महत्वपूर्ण तथ्य.-

1 शख प्रक्षालन अकेले स्वय नहीं करना चाहिए किसी अनुभवी योग प्रशिक्षक के निर्देशन में करना चाहिए।

2 खिचडी के साथ पत्तीदार सब्जियॉ, खटाई, लाल मिर्च, गरम मसाले व अचार का प्रयोग न करें। खिचडी में धनिया, हल्दी और जीरा मिलाया जा सकता है। नमक की मात्रा कम रखें।

3 खिचडी को स्वादिप्ट एव पाचक बनाने के लिए पत्तीदार सब्जियॉ के अलावा मौसम की सभी मब्जियॉ डालकर बनाना चाहिए तथा जो जो दालें सम्भव हों जैस मूग , मसूर मूगफली आदि भी मिला सकते हे।

4 जिनके पेट में कृमि या कीडे हो उन्हे शख प्रक्षालन मं पिय जाने वाले पानी के साथ एक गिलास चिरायता कुटकी का गुनगुना काढा भी लेना चाहिए

कपाल भांति

प्रतिदिन योगियों द्वारा प्रतिपादित शोधन याग की छठी क्रिया कपाल भाति है। जिमे शोधन के लिए 5वीं क्रिया के रूप मे प्रतिपादित करना चाहूँगा क्योंकि पॉचवी क्रिया त्राटक हे। त्राटक चॅकि मस्तिष्क की एकाग्रता की क्रिया ह अत पहले यह ज्यादा आवश्यक होगा मस्तिष्क शोधन में जा पहले नेति क्रिया का विवेचन किया गया हे उन क्रियाओं के उपरान्त भी कुछ गन्दगी शेप रह जाती हे जिसे हम कपाल भाति की क्रिया द्वारा पूर्णरूपेण साफ करके मस्तिष्क का अधिक से अधिक स्वच्छ कर लेते है। जिससे त्राटक को करने में आसानी हो तथा उसके दुष्प्रभावों से भी बचा जा सकें। अतएव मेरे मत में त्राटक जो कि प्राचीन योगियों ने 5वें स्थान पर रखा है मैं उसे छठे स्थान पर रखने में सहमत हूँ ओर उससे पहले कपाल भाति को प्रथम वरीयता देता हूँ ओर इसी क्रम में कपाल भाति का विवेचन अब करने जा रहा हूँ

कपाल अर्थात मस्तिष्क शरीर का ऐसा अग है जिनकी बराबरी में मनुष्य के पास कोई भी दूसरा महत्वपूर्ण अवयव नहीं है। मस्तिष्क ही परमात्मा को जानने एव ससार की प्रत्येक वस्तु के पाने का एकमात्र साधन है जैसा कि यह सभी जानते है कि हाथ पैर के कटने से ऑख, कान आदि के बिगड जाने से तो मनुष्य जिन्दा रह सकता है। किन्तु मस्तिष्क के कट जाने पर मनुष्य का जीवित रह सकना असम्भव है। मोक्ष के सबध मे तो समालोचना ही नहीं की जा सकती है। योगियों ने इसका ही नाम ब्रहास्ध्र रखा हे। मनुष्य के जीवन की अमूल्य वस्तु को शुद्ध व पवित्र करने वाली योग क्रिया का नाम 'कपाल भाति ' है। यह क्रिया तीन प्रकार से होती है।

1 वातकर्म कपाल भाति

2 व्युत कर्म कपाल भाति

3 शीतकर्म कपाल भाति

इसके अभ्यास से मस्तिष्क के सभी रोग नष्ट हो जाते हे। इसमें आराग्यता का विकास होता है। विचार धारायें मलिनता को त्याग कर स्वच्छता की ओर बहने लगती है। ये विचारधारायें ही मनुष्य के मस्तिष्क को विकास में बदल सकती है।

आधुनिक विज्ञान ने भी यह सिद्ध कर दिया हे कि मनुष्य का पतन उमके अपने विचारों से हाता है और वह उन्नति के शिखर पर अपने विचारों से ही पहुँचता है। तभी तो हमारे उपनिपदों में कहा गया हे कि मनुष्य विचारों का ही बना हुआ है। गीता में भी महात्मा कृष्ण कहत हे कि हे अर्जुन जो कुछ भी तेरे पास हे वह तुझे श्रद्धाजलि से ही मिला है। आगे तू जैसी श्रद्धा करेगा वैसा ही तू बन जायेगा। विचारों के कारण ही आज नवयुवक वीर्य दोम से परेशान है और विचारों को शुद्ध करके ही इस कष्ट से मुक्ति पा सकता है।

मस्तिष्क गन्दा तो विचार गन्दे, मस्तिष्क स्वच्छ तो विचार स्वच्छ, बस यही जीवन कर सार है।

1 वात कर्म कपाल भाति

प्राचीन विधि – सर्वप्रथम पद्मासन या सुखासन में बैठकर बायीं नासिका से श्वास भरना फिर दायी नासिका से बाहर निकालना इसी प्रकार दायीं से भरकर बायीं से निकालना और बायीं से भरका दायी से निकालना । इस प्रकार पूरक रेचक करने को वातकर्म कपाल भाति कहते है। प्रारम्भ में पूरक रेचक बहुत गहरे करने चाहिए। अर्थात् लम्बा श्वास खींचना चाहिए।

सशोधित विधि .–
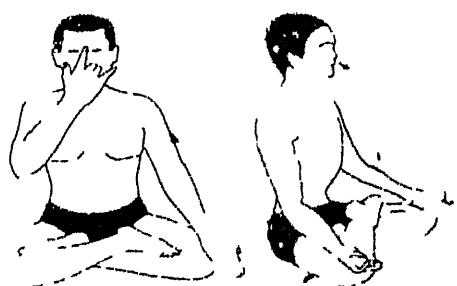
उपरोक्त चित्रानुसार दरी या कम्बल पर पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जाये। कमर पीठ तथा गर्दन सीधी रहनी चाहिए। दोनों हाथों को दोनों

---

[100] अथ कृतुमय पुरूप (उपनिषद)

घुटनों पर रखियें अब ऑख बन्द करके शान्त भाव से बैठ जाना चाहिए। फिर नासिका के दोनो छिद्रों द्वारा जोर स धक्का देकर श्वास को बाहर फेंकिये। बाहर फेंकने अर्थात रेचक करने के बाद पूरव करने की चिन्ता या प्रयास नहीं करना चाहिए। पूरक स्वत हो जायगा। शुरू में थोडा धीर-धीरे रचक करें। चार पॉच रेचकों के बाद गति को बढाकर जल्दी-जल्दी रेचक करते हुए जोर-जोर से श्वास को बाहर निकाले। ध्यान केवल श्वास के धक्के के साथ बाहर फेंकने पर ही रखें । प्रत्येक दो रेचकों के बीच पूरक तो अपने आप ही हो जाता है। कपाल भाति करते समय बीच में रूकना नहीं चाहिए। लगातार एक के बाद एक रेचक करते हुए अन्त में श्वास को बाहर निकाल कर बाहा कुम्भक लगा लें। कुम्भक लगाकर जालन्धर बन्ध उड्डियान बन्ध ओर मूल बध लगाकर महा बध लगा लीजिए। जितनी देर तक सरलता पूर्वक रूक सकें। रूक कर पहले तीनों बधो को खोलिये और धीरे-धीरे पूरक की जिए। यह एक कपाल भाति प्राणायाम हुआ। आरम्भ में दो बार ही करें। धीरे-धीरे बढाकर पॉच बार तक कर सकते हे। एक बार में आरम्भ में दस-बाहर बार रेचक करें। धीरे-धीरे बढाकर पचार बात तक कर सकते है।

महत्वपूर्ण तथ्य -

1 कपाल भाति प्राणायाम में रेचक करते समय पेट झटके के साथ अन्दर जाना चाहिए, क्योंकि वायु झटके के साथ बाहर निकलती है। पूरक करते समय पेट अपने आप अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जायेगा। कपाल भाति और भस्त्रिका प्राणायाम मे केवल इतना ही अन्तर हे कि कपाल भाति मे रेचक जोर से किया जाता है। आर भस्त्रिका में पूरक और रेचक दोनों ही जोर से किया जाता है।

2 बध का अर्थ बाधना है। बध तीन है।- जालन्धर बध उड्डियान बध और मूल बध। इन तीनों बधों के योग को महाबध कहत है। बध के अभ्यास से शारीरिक एव मानसिक शक्तियों के बाधने में सहायता मिलती है।

3 जालन्धर बध - किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर सारे श्वास को बाहर निकाल दीजिए। अब श्वास को बाहर ही रोक करके पेट को अन्दर की ओर इतना पिचकाइये। कि वह कमर में जा लगे। जितनी देर सरलता पूर्वक रूक सकते है। अन्त मे धीरे-धीरे पेट को ढीला छोड दीजिए और श्वास को अन्दर जाने दीजिए यह उड्डियान बध कहलाता है।

4 मूल बध - किसी भी सुखासन में बेठ कर गुदा (मलद्वार) को ऊपर की ओर खीच कर सकाचन करने को मूल बध कहते है।

5 महाबध - तीनों बधों के एक साथ लगाने को महाबध कहत है। क्रमश इस क्रिया को यथा शक्ति जल्दी-जल्दी भस्त्रिका प्राणायाम की तरह करते है इस क्रिया से नय पुराने , मस्तिष्क एव कफ सम्बन्धी सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हे।

व्युत्कर्म कपाल भति

दोनों नासिकओं से जल पीकर मुख से बाहर निकाल देने को व्युत्कर्म कपाल भाति कहते है।

शीतकर्म कपाल भाति

मुख में जल को भरकर दोनों नासिकाओ से बाहर निकाल देने को ही शीत कर्म कपाल भाति कहते है।

त्राटक -

त्राटक योग की शोधन योग के अन्तर्गत छठी क्रियां के रूप में वर्णित की गयी है। इसमें किसी भी स्वाभाविक गति या बिन्दु पर अविचल सूक्ष्म अथवा स्थूल दृष्टि गडा देने या नेत्र को उसमें स्थिर करक एकटक (बिना पलक झपकाये) देखने को त्राटक कहते है। त्राटक क्रिया को करने से पहले यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम पहले शरीर शोधन की पूर्व में वर्णित मभी क्रियाए नेति, धौति , वस्ति , नोलि शख प्रक्षालन आदि क्रियाओं के द्वारा शरीर शोधन खूब भली भाति कर लिया है। शरीर के समस्त विकार अथवा गन्दगा का निकल जाना अनिवार्य है।

त्राटक क्रिया से नेत्रों के समस्त रोग दूर हो जाते है। चचल मन को शान्त एव एकाग्र करने के लिए योग में यह क्रिया अद्वितीय हे। आध्यमित्मक उन्नति चाहने वालों को त्राटक क्रिया का अभ्यास करना बहुत जरूरी हे क्योंकि इस क्रिया के करने से स्वय में उत्पादक , अर्थात जो चाहे सो पायें; रक्षक एव सहारकारिणी शक्तियॉ स्वय आ जाती है।[1] किसी सुखासन में बेठकर धातु या पत्थर की बनी हुई नुकीली अथवा कागज पर काला बिन्दु बनाकर अथवा अगर बत्ती जलाकर बिना पलक झपकाये बैठे रहना त्राटक है इससे नेत्र ज्योति की वृद्धि के साथ स्वास्थ्य में सुधार एव मन स्थिर होता है। चित्त शान्त और प्रसन्न होता है।[2]

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी याद रखना चाहिए कि त्राटक के अभ्यास से नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता आ जाती है अत नेत्रों को त्रिफला हरण अथवा गुलाब के पानी से धोना चाहिए और नेत्रों के व्यायाम अर्थात् शान्तिपूर्वक दृष्टि को दायें, बाये

नीचे, ऊपर धीरे-धीरे चलाने की क्रिया करनी चाहिए। आचार्यों के मत में यह मुख्य रूप से इसके तीन प्रकार बतलाये है

1 आन्तर त्राटक

2 मध्य त्राटक

3 बाहा त्राटक

1 आन्तर त्राटक
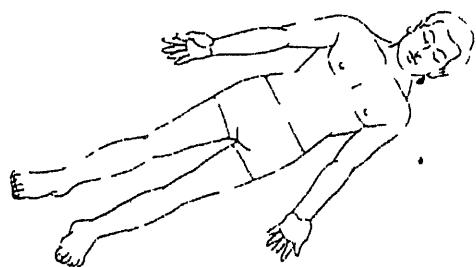
उपरोक्त चित्र की भाति शवासन में सर्वप्रथम पीठ के बल लेट् जाइये और श्वास सामान्य अवस्था में चलने दे। इसी प्रकार उसे किसी भी सुखासन में बैठकर के किया जा सकता है। अब भ्रूमध्य, अर्थात दोनो आँखों के मध्य आज्ञाचक्र में जहाँ महिलायें बिन्दी लगाती है पुरूष टीका लगाते है। हृदय की धडकन , नाभि के स्पन्दन आदि
आन्तरिक स्थानों की स्वाभाविक क्रिया की गति को मानसिक भावना से देखने को आन्तर त्राटक कहते है आन्तर त्राटक करने के पश्चात मत्र जाप या रूप दर्शन से ध्यान जल्दी सिद्ध हो जाता है।

यदि उच्च रक्त चाप , हृदय रोग, अनिद्रा, गठिया एव स्नायुविक पीडा से ग्रस्त रोगी सुबह शाम कम से कम 20 मिनट इस आन्तर त्राटक के अभ्यास को करें तो उनके रोग शीघ्र नष्ट हो जायेंगें।

2 मध्य त्राटक -

किसी धातु अथवा पत्थर की बनी हुई बस्ते जैसे थाल में पानी के बीच मे रखी शालिग्राम की काली बटिया अथवा काली स्याही से कागज पर बनागोला अथवा नासिका के अग्र भाग म भ्रूमध्य पर टकटकी लगाकर तागातार देखने

---

[101] याग द्वारा कायाकल्प पृष्ठ 77

2 पिश्व गुरू कल्पतरू पृष्ठ 520 कल्पतरू

रहना मध्य त्राटक कहलाता है यह ध्यान रखना चाहिए कि हमें करने से पहले नेत्रों के व्यायाम जलनेति रबर नेति आदि क्रियायें पहले कर लें तो ज्यादा फायदा मिलेगा।

एक फुट लम्बे तथा एक फुट चोडे बिल्कुल सफेद कागज के बीचों बीच एक अठन्नी या रूपये के बराबर बिल्कुल गोल चमकीले काले रग का गोला बनाय और उसे अपने सामने की दीवार पर इस तरह टाग दे कि वह गोला ऑखा के ठीक सामने पड अथवा किसी दीवार या तख्त पर जिसकी ऊँचाई नेत्रों के बराबर हो अर्थात ऑखों के ठीक सामने पडे ओर जहॉ हवा का झोंका अथवा तेज हवा न हो, घी का एक दीपक जला कर रखें । अब उस कागज या दीपक से एक मीटर की दूरी पर सिद्धासन या पद्मासन बेठ जाये।

अब पूर्ण खुले हुए दोनो नेत्रों मे कागज पर काले बिन्दु या उस दीपक की ज्योति को तब तक निरन्तर अपलक देखते रहें जब तक ऑखों में ऑसू न आ जाये। ऑसू गिरने या टपकने के पूर्व ही ऑखों को कसकर बद कर लें। इसी प्रकार कई बार इस क्रिया का अभ्यास करना चाहिए।

धीरे-धीरे इस क्रिया का अभ्यास हो जाने पर उस बिन्दु पर एक उजाला सा प्रतीत होने लगेगा और इसके चारों ओर छोटी-छोटी प्रकाश की किरणें दिखाई पडने लगेंगी। इसमें अनेकों प्रकार के रग भी दिखाई पडने लग सकते है । लेकिन हमें अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्य को ही देखते रहना चाहिए। यदि कभी भम वश या भूल से ऐसा हो जाय तो धैर्य खोना नहीं चाहिए । अपने लक्ष्य बिन्दु या ज्योति पर दृष्टि को पुन केन्द्रित कर देने पर पहले की भाति प्रकाश आ जायेगा। अब धीरे-धीरे मन नेत्रों में मिलाकर पूर्वोक्त प्रकाश की अपनी रूचि के अनुसार टिकाने का प्रयास करें। प्रारम्भ में इस प्रकाश की चचलता तो रहेगी । किन्तु 10-15 दिन के अभ्यास मे सकल्प के अनुसार प्रकाश ठहरने लगेगा। बस यही त्राटक की सिद्धि है।

3 बाहा त्राटक

चन्द्रमा , प्रकाशित , नक्षत्र , प्रात काल उदय होता सूर्य अथवा अन्य दूरवर्ती लक्ष्य जैसे नदी या दरिया, हरी घास या हरे पेड़ पर दृष्टि स्थिर करने की क्रिया को बाहा त्राटक कहते है।

षट्कर्म में भोजन सुधार एव उपवास

षटकर्म योग भोजन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। योगाभ्यासी को सयम व्रत का पालन करते हुए अपने आधार पर भी विशेष ध्यान देना पडता है। इसीलिय हमारे मनीषियों ने भोजन के सम्बन्ध में कुछ अनिवार्य नियमों के पालन की व्यवस्था की है जिससे कि याग साधना में कोई शरीर पर अनुचित प्रभाव न पड और शरीर शुद्धि के पाचन तन्त्र को आराम देने के दृष्टिकोण से उपवार पर भी ध्यान दिया है। आयुर्वेद में कहा गया हे कि जब हमारी .ऑतो को भोजन नही मिलता है तब वह शरीर के दोषों का पाचन करती है। युक्ति युक्त उपवास के बारे में भी सक्षिप्त व्याख्या करूँगा क्योंकि उपवास का अर्थ भूखों मरना नहीं है। बल्कि भोजन का फार्म बदला जाता है जिससे कि शरीर के अन्दर की निष्कासनात्मक व्यवस्था में हम सहयोग कर सकें। सर्वप्रथम भोजन के आवश्यक एव महत्वपूर्ण कुछ नियम निम्नवत है

1 शारीरिक श्रम या योगाभ्यास के पूर्व न कुछ खाये.और न पियें केवल सादा पानी पी सकते है।

2 बिना भूख में कम भूख में कुछ भी खाना व पानी नहीं चाहिए। जब भूख खुलकर लगे तभी भोजन करना चाहिए। प्रथम किया हुआ भोजन ठीक से पच जाने के बाद दूसरा भोजन करने वाले के पास व्याधि नहीं आती है।1

3 भूख से सदा थोडा कम खाना चाहिए और खूब चबाकर खाना चाहिए। दातो का काम आँतो से नहीं लेना चाहिए। इसीलिए कहा गया है कि पानी को खाओ और भोजन को पियो।

4 भोजन के साथ पानी कम से कम पीना चाहिए। इस सम्बन्ध में कहा गया हे कि अजीर्ण में पानी का सेवन औपधि का काम करता है। भोजन पच जाने

पर सेवन किया हुआ जल बलदायक होता हे भोजन पच जाने पर सेवन किया हुआ जल बलदायक होता है। भोजन में बीच में घॅट-घूॅट कर पिया गया जल अमृत के समान होता है और भाजन करके तुरन्त दिया गया जल विपमम होता है।2

5 अधिक पानी पीने से अन्न का पाचन ठीक नहीं होता ओर पानी न पीने से भी वही दोष होता हे। इसलिए जठराग्ति वर्धनार्थ मनुष्य बराबर थोडा-थाडा पानी पिया करें।3

6 ठोस अन्न से जठर का आधा भाग और जल (पेयों) से चौथाई भाग भर दिया जाय और वायु रूप दृष्यों के सचरण के लिए चौथाई भाग खाली रखा जाय। 1

7 भोजन करने पर एक मुहूर्त भर (42 मिनट) व्यायाम , मैथुन , दौडना जलयान, मल्लयुद्ध गाना और पढना ये कर्म न करें। 2

8 प्राय वसाय के जलपान में चाय के स्थान पर चने का सूप या सब्जी कर रस या फलों का रस पीजिए अथवा पाव भर गुनगुने जल में आधा नीबू कर रस व दो चम्मच शहर डालकर पीना चाहिए।

9 भोजन में सलाद व गेहूॅं की मात्रा अधिक से अधिक रखना चाहिए फुजले की पर्याप्त मात्रा भोजन में होने से पेट ठीक रहने लगता है। फुजला गेहूॅं के चोकर से तैयार किया जाता है। 100 ग्राम फुजले को 1किला आटे में मिलायें अधिक कब्ज में 200 ग्राम तक मितायें

10 शीघ्र स्वस्थ होने के लिए चीनी, चाट, लाल मिच गरम मसाला, नमक, खटाई , व तली चीजें न खाये। धनिया जीरा हल्दी, अदरक , हरी मिर्च , सेंधा नमक थोडा सा डाल सकते है।

11 भोजन के बाद पेशाब जरूर करना चाहिए। चाहे इच्छा न हा उसके बाद तत्काल कम से कम पाच मिनट वज्रसन में अवश्य बैठना चाहिए और यदि गैस की शिकायत रहती हो तो एक छोटी हरड मुँह में डालकर चूसना चाहिए।

12 अण्डा, मास, मछली, शराब, बीडी सिगरट, तम्बाकू, पान मसाला, आदि अति अम्लीय एव नुकसान देय व्यसन हे। इनका सेवन कदापि न करें । [102]

13 सप्ताह में एक दिन नवदुर्गा में नवदिन प्रात जलाहर दोपहर में रसाहार एव शाम को फलाहार पर रहना चाहिए। इससे पाचन क्रिया ठीक रहती हे।

उपवास के नियम

जिस प्रकार खूब थका हुआ व्यक्ति गहरी नीद सोकर ताजा हो जाता हे उमी प्रकार आहार-विहार की गडबडी से उत्पन्न पेट के राग उपवास करने से दूर हा जाते है। यही कारण है कि अजीर्ण , मनदाग्नि एव ऑतो की दुर्बलता दूर करने के लिए स्वास्थ्य प्रेमी उपवास का सहारा लेते है। किन्तु यदि उपवास की सही विधि न अपनाई जाय तो उपवास से लाभ नहीं होता है। उपवास के सम्बन्ध मे विस्तार से लिखा जाय तो एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायेगा। इसलिए उपवास के सम्बन्ध में सही विधि के लिए निम्नलिखित जानकारी पर्यम्त है।

1 उपवास का अर्थ भूखों मरना नहीं हे बल्कि कम भूख में या बिना भूख के खाना न खाना है

2 उपवास की शुरूआत तीव्र भूख या कम भूख के अभाव मु शुरू होती है। और तीव्र भूख लगने पर समाप्त होती है

[107] जीर्ण भोजिन व्याधिर्नोपसप्रति चाणक्यसूत्र वद्यकाय सुभाशित साहित्यम् पृष्ठ 97 तृताय सस्करण वि0 स्वत 2040

2 अर्जीर्णे भेपज वारि जीर्गे वारि बल प्रग्म ।(19)

भाजने चामृत वारि भाजनान्त विपप्रददम्। वृद्धचाणक्य वद्यकाय सुभाग्त साहित्यम डॉ0 परशुराम वद्य पृष्ठ67

3 क्षेय कुतुहल (20) वृद्धचारणक्य वैद्यकीय मुभापित साहित्य डॉ0 परशुराम वद्या पृष्ठ67

3 उपवास में ऐसे भोजन का चुनाव किया जाता है जिसमें उपवासी को उस भोजन के पचाने में शक्ति खर्च न हो या कम से कम हो।

4 रोटी, दाल, चावल के पचाने में शरीर को बहुत शक्ति की आवश्यकता होती है। पूडी , पराठा, खीर, आदि क पचाने क लिए तो और अधिक शक्ति की आवश्यकता होती हे।

5 यही कारण हे जानकार लोग उपवास के दिन उपरोक्त वस्तुयें नहीं खाते है। बल्कि सूप, जूस , फल , सब्जी का ही प्रयोग करते है।

6 उपवास के दिन कम से कम दिन भर चार-पॉच किलो जल के सेवन से ऑतो की धुलाई अच्छी एव शीध्र होती हे।

7 उपवास के दिन , दिन में तीन-चार बार नींबू ,शहर का गुनगुना शर्बत लाभकारी होती है। मात्रा -नीबू आधा एव शहेर दो चम्मच।

8 उपवास के दिन प्रात काल नेति क्रिया ,वस्ति क्रिया , कुञ्जर क्रिया , घषर्ण स्नान, एनिमा आदि के द्वारा शरीर की सफाई कर ली जाये तो उपवास का लाभ कई गुना बढ जाता है

9 उपवास के दिन कठोर श्रम या कठार व्यायाम न करके शवासन योग निद्रा एव ध्यान करना अधिक उपयोगी है

उपवास तोडते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता होती हे। अधिक या भारी भोजन से उपवास न तोडें।

आसन

महर्षि पतञ्जलि ने साधपाद में अष्टाग योग के अन्तर्गत आसन को तीसरा स्थान दिया है। शरीर को भिन्न-भिन्न स्थितियों में रखत हुये जिस किमी भी एक स्थिति विशेष रूप से सुखपूर्वक स्थिर रख सकें, उसे 'आसन' कहत हे।[1] हर आसन का अपनी-अपनी स्थिति आर अपना-अपना स्वरूप है। योगासनों के द्वारा हम अपने

रोगों को दूरकर सकते हैं आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं और स्वस्थ रह सकते हे, आसन एक ऐसा सरल व्यायाम है, जिसम तनाव नहीं हे।[1] योगासन का अभ्यास स्वस्थ एव सुखी जीवन जीने का सुन्दर साधन हे।

आसनों को साधने का अभ्यास बहुत धेर्यपूर्वक तथा सयम से करना चाहिए। धीरे-धीरे पहले एक आसन को आरम्भ करना चाहिए। यदि उस एक आसन के साधने में जल्दी की हो तो उससे तनाव बढने की आशका हो सकती है। तब पीडा से परेशानी भी हो सकती है अधीर होकर निराशा भी आ सकती है और आसना का अभ्यास बन्द करने की स्थिति भी आ सकती है। तब उन्नति की ओर बढने के स्थानपर पतन की ओर जा सकते है। इसलिए एक आसन को जल्दी जल्दी करना या अनेक आसनों को एक ही दिन में साधन का यत्न करना कदापि खते से खाली नहीं हे। ऐसे लोग, जो बहुत दुर्बल है हृदय रोग, गठिया, ब्लॉड प्रेशर, दमा, मोटापा जसे कष्टो से पीडित है या जिन्हें योगासन करने से तकलीफ बढ जाती हैं या जिनके शरीर की नाडियों में लचीलापर नहीं है ऐस लोगो को प्रारम्भ में अग व्यायाम का क्रम ही उपयोग हे। इन अग व्यायामों की सबसे बडी विशेपता हे कि ये शरीर को उन्नत श्रेणी के आसन एव मन को ध्यान के लिए तैयार करते है। इसके नियमित अभ्यास से शरीर की नाडियो एव मासपेशियों में लचीलापन आ जाता है। जोडो में एकत्र विकार शरीर मुक्ति के मार्गो से निकल जाते है। ये विकार सात रास्ता से होकर शरीर से बाहर निकलते हैं। 1 नासिका 2 ऑख 3 कान 4 मुँह 5 गुदाद्वार 6 जननेन्द्रिय 7 त्वचा द्वारा इन मार्गो से शरीर के मल मूत्र विकार पर्याप्त मात्रा में और नियमित रूप से शरीर से बाहर नहीं निकल पाते तभी अधिकाश रोग उत्पन्न हो जाते हैं। योगासन द्वारा ये विकार सातो मार्गो द्वारा पर्याप्त मात्रा में सरलता पूर्वक शरीर के बाहर निकलते रहते है। फलस्वरूप शरीर निरोगी रहता है।

योगासन शरीर के अन्तर्वाहय अगो को स्वस्थ रखने की क्रियाए है। जब तक हमारे शरीर के आन्तर्वाध्य अग स्वस्थ नहीं होते तब तक हम कोई भी कार्य अच्छी तरह नहीं कर सकते। तन और मन का परस्पर बडा गहरा सम्बध हे। किसी एक की उपेक्षा करके दूसरे की देखभाल नहीं की जा सकती है। कहा भी गया है कि

---

1 स्थिर सुखमासनम्। या सू 2/46

'स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मन' रहता है। आसना की सिद्धि करने स शीत, उष्ण, सुख दुख, मान, अपमान, हानि, लाभ, द्वन्दो का आघात नही होता है आसन सिद्ध होने से योगी का नाम जयासन हो जाता है।[1]

योगासन व्यायाम आज के अन्य व्यायामों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हे इसके निम्नलिखित कारण है -

1 अन्य पद्धतियों में शरीर के आन्तरिक अगो को योग्य व्यायाम नही मिल पाते जबकि योगासन से शरीर के आन्तरिक अगो को पर्याप्त मात्रा में व्यायाम मिल जाता है। फलस्वरूप योगासन से व्यक्ति अधिक समय तक स्वस्थ रह सकता है।

2 योगासन केलिए बहुत ही कम जगह और कम साधनों की आवश्यक होती हे।

3 व्यायाम की अन्य पद्धतियों की अपेक्षा योगासन का प्रभाव मन ओर इन्द्रियों पर अधिक मात्रा में पडता हे। इस कारण मन और इन्द्रियों को वश में रखने की व्यक्ति की तन मन की आन्तरिक शक्ति का विकास होता है।

4 योगासन में अधिक आहार की आवश्यकता नहीं पडती इसलिए विशेष खर्च नहीं करना पडता।

5 योगासनो के द्वारा मल ओर अन्य विकार भली भाति बाहर निकल सकते हे, जिससे शरीर को रोग प्रतिकारक शक्ति बढती है और शरीर रोग मुक्त बनता है।

6 योगासनों से शरीर लचीला बनता है। इससे शरीर में स्फूर्ति आती है, काम करने की शक्ति बढती है, व्यक्ति जवान लगता है और उसकी आयु बढती है।

7 भिन्न-भिन्न आसनो द्वारा शरीर को भिन्न-भी कोशिकाओं का रक्त शीघ्रता से शुद्ध किया जा सकता है।

8 योगासनो और प्राणायाम से फेफडो के सकुचन और प्रसरण की शक्ति बढती है। फलस्वरूप रक्त अधिक मात्रा में शुद्ध होता है।

9 आयु, यौवन और स्वास्थ्य मेरूदण्ड के लचीलेपन पर निर्भर है। आसनो द्वारा मेरूदण्ड को लचीला रखा जा सकता है।

---

1 ततोद्वन्द्वानभिद्यात । पतञ्जलियोग (2-48)

10 आसन करते समय बहुत हो कम शक्ति का व्यय होता है। फलत थकाल कम लगती है। यही कारण है कि यागासनों को अहिसक क्रियाए कहा जाता है।

11 योगासना से व्यक्ति सच्चरित्र बनता ह।

12 योगासनों से मन शक्ति का अनुभव करता हे। इस कारण मानसिक शक्ति बढती है और बुद्धि का विकास होता हे।

13 योगासनों से शरीर की विभिन्न ग्रन्थियां को जाग्रत किया जा सकता हे जिससे उनमें अपेक्षित मात्रा मं रस उत्पन्न होता हे। यही रस रक्त में मिताकर शरीर का सन्तुलित विकास करता हं।

14 योगासनों ओर प्राणायाम से कब्ज, वायु मधुमह, रक्तचाप, हार्निया मिरदर्द आदि रोग मिटाये जा सकते है।

15 योगासनो द्वारा शारीरिक और मानसिक विकास के साथ साथ बौद्धिक और आत्मिक विकास भी सम्भव है।

16 बडी उम्र के स्त्री पुरूष भी योगासन कर सकते है। यह पूर्णत भारतीय व्यायाम पद्धति है। हमारे ऋषि मुनियों ने हजारों वर्षो तक इस पद्धति को अपनाया था। फलस्वरूप वे लम्बे समय तक स्वस्थ रहा करते थे।

योगासन करते समय निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है -

1 योगासन प्रात काल शोच क्रिया से निवृत्त होकर ही करना चाहिए। यदि स्नान करने केबाद योग का अभ्यास किया जाय तो और भी अच्छा है क्योंकि स्नान से शरीर हल्का फुल्का और स्फूर्ति युक्त बन जाता है। साथ ही योगासन सरलता से किये जा सकते है। सन्ध्या काल में भोजन से पूर्व भी योगाभ्यास किया जा सकता है।

2 आसन करने की जगह समतल, स्वच्छ ओर शान्त होनी चाहिए। भूमि पर दरी या कम्बल बिछाकर योग का अभ्यास करना चाहिए।

3 योगासन करते समय मौसम के अनुसार कपडे पहनने चाहिए। पुरूषों के लिए लगोट या जागिया तथा स्त्रियों के लिए सलवार कुर्ता विशेष अनुकूल रहता है।

4 आसन करते समय बातचीत न करें। आसन करने वाले व्यक्ति का ध्यान श्वास और शरीर के उन अगो पर केन्द्रित हाना चाहिए जिन पर आसन करने से जोर अधिक पडता है। यदि आसन एकाग्रता से किये जाय तो शागीरिक ओर मानसिक लाभ अधिक होते है।

5 आसन प्रारम्भ करने से पूर्व श्वासन करके श्वास, शरीर ओर मन का शान्त करना चाहिए।

6 योगासन अहिसक क्रिया है, इसलिए झटके क साथ या बल- प्रयोग करक काइ आसन न करें।

7 योगासनों का अभ्यास धीरे-धीरे बढाना चाहिए। ऐसा करने से शरीर मं लचीलापन उत्पन्न होगा ओर थाड ही समय में सरलता से आसन की पूर्ण स्थिति प्राप्त की जा सकेगी।

8 योगासन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उसका सम्बध शरीर के आन्तर्वाहय अगा स है। इसलिए योग प्रशिक्षण के निर्देशन मे सीखने के बाद ही योग का अभ्यास करना चाहिए।

9 आसन करने वाले व्यक्ति को यथा सम्भव हल्का भोजन करना, चाहिए, जिसस शरीर में हल्कापन रहे।

10 जटिल रोगो में या अधिक ज्वर में आसन नहीं करना चाहिए। महिलाओं को गर्भ धारण के चार महीनों के बाद, प्रसूति के बाद तीन महीनो तक ओर मासिक धर्म के समय आसन नहीं करना चाहि। जिस आसनो में पूरे शरीर का वजन हाथ के स्नायुओं पर उठाना पडता हो, ऐसे आसन महिलाओं को काफी अभ्यास के बाद ही करने चाहिए।

11 आसनों की सख्या और उनकी अवधि में धीरे-धीरे वृद्धि करना चाहिए। पहले ही दिन बहुत अधिक आसन नहीं करना चाहिए।

12 किसी भी आसन की प्रारभिक स्थिति से अन्तिम स्थिति तक जाते समय आर अन्तिम स्थिति से प्रारभिक स्थिति तक आते समय बिल्कुल जल्दबाजी नहीं करना चाहिए।

13 योगासन करने के बाद थोडे समय के लिए श्वासन अवश्य करना चाहिए श्वासन एक सम्पूर्ण आसन है। इस से शरीर की थकावट बहुत जल्द दूर हो जाती है और शरीर में शक्ति का सचार होता है।

14 आसन करने के बाद थकावट का अनुभव न हो, शरीर हल्का फुल्का महसूस हो और कार्य शक्ति बढती जाय तो समझना चाहिए कि योगासन भली भाति और लाभप्रद ढग से किये जा रह हे।

योग-साधन और भाजन

योग का अभ्यास करने वाले का भोजन पूर्णतया सात्विक ओर सन्तुलित हाना चाहिए। जिस भोजन से बल, म्वास्थ्य स्फूर्ति और प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह साव्तिक हे। यह मधुर, शान्ति प्रद और शरीर के अनुकूलइ होता हे। राजसी प्रकृति के लोगों को बहुत खारे, कसैते चटपटे उष्ण, तीखे ओरर शुष्क भोजन प्रिय होते हे। बासी, सडे-गले अस्वाद और गन्देपदार्थ जिसस निद्रा, आलस्य, रोग आदि उत्पन्न हात है ये तामसिक वृत्ति के लोगों को पसन्द होते हे।

जैसा भोजन होता है, वैसे ही विचार बनते हे। भोजन का जो स्थूल अश होता है, वह मल बनकर मल द्वार से बाहर निकल जाता है। उसमें जो सूक्ष्म भाग होता हे, उससे रक्त, मॉस, मज्जा आदि बनते है और जो अति सूक्ष्म अश होता हे उससे मस्तिष्क बनता है। जैसे दही के मथने पर जो सूक्ष्म अश ऊपर आ जाता हे, वह मक्खन बन जाता है। इसी प्रकार भोजन पचने पर जो सूक्ष्म तत्व होता हे वह मस्तिष्क के तन्तु बनाता है इसलिए सात्विक मन के लिए सात्विक भोजन का बहुत महत्व है- 'छान्दोगयोपनिषद' में कहा हे कि - 'आहार की शुद्धि सत्व की शुद्धि होती हे सत्व की शुद्धि होने पर निश्चित स्मृति लाभ होता है ओर स्मृति लाभ हा जाने पर कैवल्य मोक्ष नितान्त सुलभ तथा सुगम हो जाता है।'[1] ध्यान साधना में भोजन केसम्बध में बहुत सचेत रहने की आवश्यकता होती है। भोजन पौष्टिक हल्का तथा शीघ्र पचने वाला सात्विक होना चाहिए परन्तु अधिक गरिष्ठ, उत्तेजक, आलस्य तथा भारीपन पैदा करने वाला भोजन योग के अभ्यास में बाधक होता है। तामसिक अथवा अधिक मात्रा में भोजन करने से आलस्य अथवा उत्तेजना पैदा होती हे, उससे मन ध्यान मे नहीं लाता। चेतनता दूर हाकर नींद और शिथिलता आने लगती हे। शराब आदि नशे के पदार्थ पीने या खाने से मन उत्तेजित और अस्थिर हो जाता हे उस पर नियत्रण नहीं रह पाता है।

---

1 आहार शुद्धौ सत्वशुद्धि सत्वशुद्धौध्रुवस्मृति ।
स्मृतिलम्भ सर्वग्रन्थीना विप्रभोक्ष ।। छान्दाग्य0 (7-26-3)

स्मरण रखना चाहिए कि कम खान स इतने आदमी नहीं मरते, जितन अधिक खाने से मरत हे। अधिक खाने से शरीर म अनेक रोग पेदा हो जाते हे। जेसे-जेस उम्र बढती जाय वैस वेसे भोजन का कम करत जाना चाहिए। जो शारीरिक श्रम नहीं करते है मात्र मानसिक श्रम करते हे उनका भोजन अधिक पोष्टिक परन्तु कम मात्रा में होना चाहिए। यह धारणा गलत हे कि अधिक घी खाने से से शरीर बलवान होता है। चिकनाहट की आवश्यकता शरीर को जितनी है, उतनी ही मिलनी चाहिए। अधिक चिकनाहट शरीर म अनेक रोग पैदा कर देती हे। भोजन कितना करे- इसक परिमाण वही हे कि शरीर आसानी से जितना भोजन पचा सकता है। यदि बिना पचा हुआ भोजन मल द्वार से जितना भोजन पचा सकता है। यदि बिना पचा हुआ भोजन मल द्वार से निकल जाय तो उसका लाभ तो नहीं होता, अपितु शरीर को हानि ही होती है। इससे पाचक अवयवों पर अधिक बोझ पडता हेऔर वे निर्बल हो जाते हे। जितने भोजन को ग्रहण न करता हो, वह शरीर को हानि कर होता हे। भोजन के साथ ही ज्यादा पानी पीना उचित नहीं हे। भोजन करने के एक घण्टे बाद समुचित पानी पीना चाहिए। प्रात काल खाली पेट पानी पीने से मल शुद्धि में सहायता मिलती है।

भोजन में कुछ चीजें काटने और चबाने वाली भी होती है। कुछ पेय हाती हे और कुछ चूसने वाली होती है। भोजन धीरे-धीरे चबा-चबाकर करना चाहिए, शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। भोजन का लक्ष्य शरीर को स्वस्थ रखना है और योगसाधाना के लिए स्वस्थ शरीर आवश्यक हे। दूध, मक्खन, अन्न, शहद, फलों के रस, सब्जी पत्तेदार साग, जैसे पालक तथा मेथी आदि - योग साधना के लिए उपयुक्त भोजन है। परन्तु यह समय पर तथा उपयुक्त परिमाण में ग्रहण करना चाहिए।

योगासनों का वर्गीकरण

योगासनों का सरलता से समझने आर उनका भली भाति क्रमबद्ध ढग से अभ्यास करने के लिए यह आवश्यक है कि योगासनों को समूहबद्ध किया जाय। जिससे उम्र के अनुसार एव आवश्यक उपचार की दृष्टि से अभ्यासी को आसानी हो जाय। योगासनो का वर्गीकरण निम्न प्रकार हे -

1 जागिग

2 योगासन करने से पूर्व तैयारी (वार्मअथ)

3 अग अग के व्यायाम (पैर की अगुलियों से लेकर ऑखो तक के अलग-अलग व्यायाम)
4 रीड के घुमावदार व्यायाम
5 खडे होकर किये जाने वाले योगासन
6 बैठकर करके किये जाने वाले योगासन
7 हाथ के बल किये जाने वाले योगासन
8 पीठ के बल लेटकर किये जाने वाले योगासन
9 पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन
10 सूर्य नमस्कार
11 महत्वपूर्ण बारह आसन

जागिग -

जागिग अर्थात एक ही स्थान पर मन्द गति से दोडना। प्राकृतिक वातावरण व खुले मैदान में दौडना स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है किन्तु आधुनिक व्यस्त जीवन में सभी के लिए यह सम्भव नहीहै इसीलिए स्वास्थ्य प्रेमियों ने दौडन की इस क्रिया को जागिग के रूप में विकसित किया। यदि इस क्रिया को नियमित पॉच मिनट किया जाय। तो पॉच किलोमीटर दाड के बराबर लाभ होगा। प्रारम्भ में निम्न अकित चित्र के अनुसार

1 अपने स्थान पर केवल 6-6 इच पेरो को उठाकर दौडेंगे। यह क्रिया लगभग 2 मिनट तक करना चाहिए।
2 तत्पश्चात लगभग एक फुट पैरो को उठाकर सामने की तरफ सीधे रखते हुये दौडना हे इसे भी लगातार 2 मिनट तक करे।

3 पैरो को साइड में दोनो तरफ उदलते हुये फेंकना है। इसे भी 2 मिनट तक करे।

4 पैर की एडी को नितम्ब में घुमात हुय दौडना है।

5 जॉघो को पेट में स्पर्श करते हुये 2 मिनट तक अपनी ही जगह पर उदलना है।

6 अन्त में खडे होकर श्वासन करे।

7 किग एव क्वीन व्यायाम अवश्यक करे जिससे जागिका के कारण रीढ की कोई वर्टीवरा यदि आपस में निकट हो गयी हो तो अपने प्राकृतिक स्थान पर आ जाय।

8 जिन लोगों को कमर में दर्द हो सर्वायकल स्पाण्लायरिस या लम्बर स्पाण्डलायरिस हो तो उन्हें जागिग नहीं करना चाहिए।

9 जिन महिलाओं को यूटरस में कोई दर्द या तकलीफ हो उन्हें भी नहीं करना चाहिए।

10 जिन के पेट का आपरेशन हुआ हो उन्हें तीन महीने तक जागिग नहीं करना चाहिए।

11 जिनके पैरो का आपरेशन हुआ हो उन्हें 3 महीने तक जागिग नहीं करना चाहिए।

12 गर्भावस्था में महिलाओं को जागिग बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

योगासन करने से पूर्व तैयारी (वार्मअप)

योग आसन से सम्बन्धित अनेक पुस्तका का अध्ययन करने के बाद यह देखने में आया है किसी भी पुस्तक में योगासन करने से पहले व्यायामो को किया जाय जिससे शरीर गर्म हो जाय, किसी भी पुस्तक मे किसी भी आचार्य ने इसका वर्णन नहीं किया है सीधे आसन करने की बात की गयी है। परन्तु बिना शरीर को गर्म किये यदि योगासन करेंगे तो लाभ कम हानि ज्यादा होती हैं। अत यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम योगासन व्यायाम के किमी भी समूह को करे पहले यह नितान्त जरूरी है कि शरीर को बर्म अवश्य कर लिया हे। शरीर को गर्म करने के लिए निम्न लिखित व्यायाम करने चाहिए जिससे शरीर गर्म होन के साथ-साथ जोड भी खुल जाय तदुपरान्त अन्य व्यायाम कर। वे इस प्रकार है -

1 जागिग करने के उपरात खडे होकर क दानो पेरो का लगभग 2 फीट तक दोनो फैलाकर कमर को गोल घुमाये। पहले दायें से बायें घुमाये फिर बायें स दायें गाल घुमाये। इसको करते समय शरीर का ऊपर का हिस्सा नही घूमना चाहि केवल कमर पर ही जोर देना चाहिए।

2 दोनो पैरो को 2 फिट की दूरी मे फलाकर सीधे खडे होकर के हाथों को ऊपर करे। तत्पश्चात श्वास लेते हुये पीछ की ओर जाय ओर श्वास निकालते हुये सामने झुकते हुये नीचे की ओर आयें। यह क्रम बार करना चाहिए। इमे भी कमर में दर्द होने पर तथा सरवायकल स्पाण्ड लायसिट के रोगी न करं।

3 दोनो पैरो को ज्यादा से ज्यादा फेलाकर सीधे खडे हो जाय। फिर दाहिने हाथ को धीरे-धीरे पसलियों से खिसकाते हुय। पेरो केपजो तक लाये तथा बायं हाथ को ऊपर की तरफ पसलियों की आर ते जाये तथा पुन इसी का विपरीत करे। इसको भी कम से कम पॉच बार करे। इससे पसलियॉ लचीली हाती हे तथा कूल्हों के ऊपर की चर्बी कम होती हे। इस क्रिया का नाम साइड स्लिप है।

4 दोनो पेरो के बीच लगभग 6 इच दूरी करक मीधे खडे हो जाय। दाय हथेलियों को नितम्बो में सटाकर नीचे की ओर खिसकाते हुये घुटने क पाछ क भाग को छूने की कोशिश करे। श्वास लते हुये पीछे की ओर जाये तथा श्वास निकालते हुये सीधे खडे हो। यह कमर के दर्द मे बहुत लाभकारी क्रिया है इसे बैकस्लिप कहते हें।

5 दोनो पैरो को सीधा करके खडे हा जाये। फिर दाहिने पेर को आगे की ओर तीन फिर तक बढाये तथा हाथो को ऊपर की तरफ करके अब आगे वाले पैर पर बेठना शुरू करे तब तक बेठे जब तक पीछे वाले पैर की एडी न उठने लगे और जब एडी उठ जाय तब श्वास लेते हुये हाथों को पीछे की तरफ ले जाये और क्षमतानुसार रूक। फिर धीरे-धीरे श्वास निकालते हुये सीध वापस आयें और आगे वाले पैर को पुन अपनी जगह पर वापस लाये। अब दूसरे पैर को इसी प्रकार से आग की आर लाकर दाहराय। इस भी पॉच बार करे।

6 दोनो पेरा का फैलाकर खडे हो जाय। दाहिन हाथ को सिर के पीछे तथा बायें हाथ को कमर के पीछे की अरे करके दाहिन हाथ का बायीं ओर मोडत्रे तथा

बायें हाथ को दायी ओर मोडे इसी प्रकार वो भी हाथ को सिर फ लगाकर दायें हाथ को कमर के पीछे लगाकर दोहरायें। अर्थात जिस प्रकार का डाइव करना हा।

7 दोना पेरा के बीच में दो फिट का फासला करके सीधे खडे हो जाये तथा हाथों को सामने की ओर सीधा करके दोनो हाथा की अगुलियों का निकट लाते हुये हाथ मोडकर लोटी की तरह सिर सामने की ओर रखते हुय सीन को दायीं व बायीं ओर घुमाये पहले पॉच बार धीरे-धीर फिर पॉच बार तज कर।

8 दोनो पेरो को सीधा करके दोनो पेरो के बीच दा फिर का अन्तर रखते हुय हाथों को सीधा करके, हाथो की अगुलिया को आपस में फसाकर पजा पलट करके, दोनो हाथों को गोल घुमायें। पहल दायें से बायें तथा पुन बाये से दायें। इसे कम से कम पॉच बार कर।

9 प्रिन्सेज एक्सरसाइज

10 कन्धों के व्यायाम - दोना हाथो को नीचे की तरफ लटकाकर सीध खडे हा जाये। एक एक कन्धे को गोल घुमाय, दानो कन्धो को साथ साथ गाल घुमाये, दोनो कन्धों को साथ साथ ऊपर नीच करे तथा अन्त में एक ऊपर एक नीचे करके करे। प्रत्येक को कम से कम पॉच बार अवश्य करे।

अंग-अंग के व्यायाम

पैरो के व्यायाम
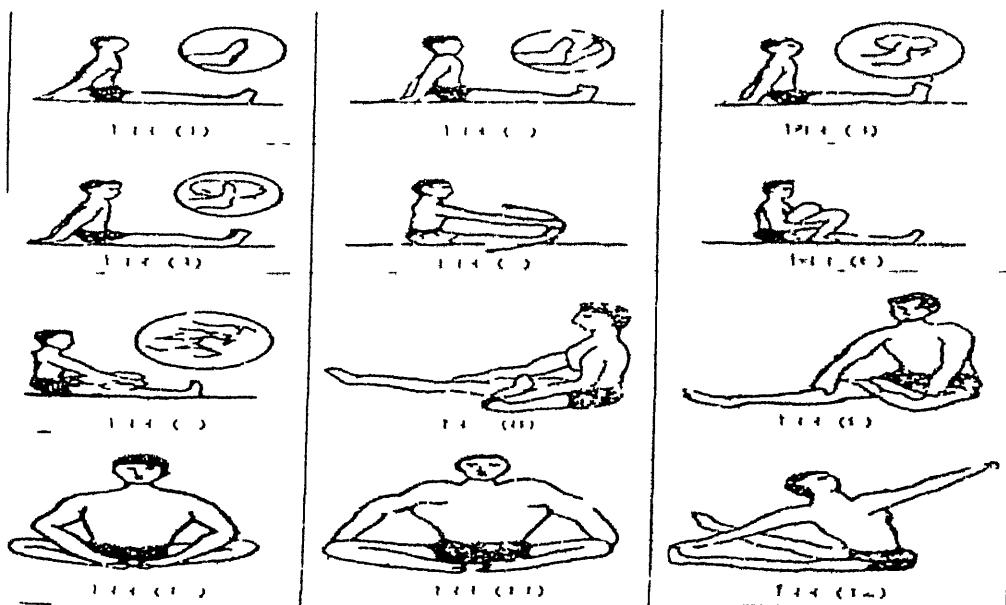
पैरों की अँगुलियाँ मोडना

पैरो को शरीर की सीध में सामने फैलाकर बैठ जायें। रीढ की हड्डी सीधी रखते हुए हाथों के सहारे थोडा सा पीछे की ओर झुकें। हाथ सीधे रखें, कोहनी न मुडने पाये। पैरो की अँगुलियों के प्रति जागरूक रहें। अब पजो को कडा रखते हुए अँगुलियों को आगे पीछे मोडें।

यह व्यायाम कम से कम 5 बार अधिक से अधिक 10 बार करना चाहिए।

टखने मोडना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में बेठकर चित्रानुसार टखने के जोडा से दोनो पजों को जितना सम्भव हो सके आगे पीछे करें। कम से कम 5 बार अधिक से अधिक 10 बार करना चाहिए।

टखने वृत्तकार घुमाना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में बेठकर पेरो को सीधा रखते हुये उनके बीच फासला कर लें। अब एडी को जमीन पर रखते हुए दाहिने पजे को पहले दायीं से बायीं ओर फिर बायीं से दायी ओर वृत्तकार घुमायें। इसी प्रकार बायें पजे से भी करें।

दोनों टखने एक साथ वृत्तकार घुमाना

दोनो पेरो के अगूठे व एडियाँ एक साथ मिलाकर व्यायाम सख्या तीन की तरह दायें से बायें घुमायें। 5 बार बायीं से दायीं आर ओर 5 बार दायीं से बायीं ओर घुमाये।

पैरो के अगूठे छूना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में बेठकर हाथों को पेट (कोख) के सामने लेकर जल्दी-जल्दी अपनी ओर के अगूठे को हाथा से छुयें व चित्र में दिखाये तीन के निशान की दिशा में हाथ को ले जाकर पुन काख के सामने लायें।

घुटने मोडना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में बेठकर दोनों हाथों को दाहिनी जाघ के नीचे आपस में फसाकर दाहिने पैर के घुटने से ऊपर की ओर धीरे-धीरे मोडते हुये दाहिने नितम्ब से लगाइये। अब पैर को धीरे-धीरे सीधा करें। लेकिन एडी को जमीन से स्पर्श न होने दें। लगातार पाँच बार करने के बाद एडी जमीन पर रखें, इसी प्रकार बायें पैर से करें।

पैर मोडकर टखने घुमाना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में आ जायें। बायें पैर को घुटने स मोडकर चित्रानुसार दायें घुटने पर रखें। अब दायें हाथ की सहायता से बायें पजे का 5 बार दायें से बायें वृत्तकारा घुमायें फिर बायें स दायं 5 बार घुमायें। इसी प्रकार पैर बदलकर दायें पजे से करें।

घुटने दबाना या अर्द्ध तितली आसन

मूल स्थिति में आ जाय। बायें पेर का मोडकर उसके तलवे का दायीं जाघ पर रखें। अब दोना हाथ से बायें पेर क घुटने को पकडकर क्रमश ऊपर व नीच हिलाये। (चित्र में घुटने को एक हाथ मे दबाते हुये दिखाया गया हे किन्तु दोनों हाथों से पकडना सुविधाजनक होता है।) इसी प्रकार दाहिने पैर से करें।

घुटने गोलाई में घुमाना

व्यायाम सख्या 8 की मूल स्थिति में बेठ हुये दायें घुटने को हाथ मे पकडकर पॉच बार बायें से दायें वृत्तकार घुमायें। इसी प्रकार पैर बदलकर करें।

दोनों घुटने एक साथ दबाना

मूल स्थिति में बैठकर दोनों पैरो के तलवे आपस में सटा लें ओर जितना सम्भव हो सके उन्हें शरीर के पास ले आयें। दोनों हाथों की अगुलियॉ एक दूसरे में फसाकर पजो को चित्रानुसार पकड लें। अब घुटनों को जमीन की ओर धीरे-धीरे दबाएॅ और ऊपर उठाएॅ।

विपरीत पैरो के अगूठे छूना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में बेठकर दोनों पैरों के बीच आसानी से जितना फासला रख सकें, रखें। पैर घुटने से सीधे रहेंग। हाथो को कन्धों की सीध में फैलाये। रीढ को सीधा रखते हुये दाहिन हाथ को बायें पैर के अगूठे के पास लायें और बायें हाथ को पीछे की ओर ले जायें साथ ही गर्दन मोडकर बायें हाथ की अरे देखें। ध्यान रहें कि दोनो भुजाएॅ एक दूसरे की सीध में रहेंगी। अब बायें हाथ को दायें पेर के अगूठे के पास लायें और दाहिनी भुजा पीछे की ओर फेलायॅ साथ ही गर्दन मोडकर दायें हाथ की ओर देखें। यह एक बार हुआ। कम से कम 5 बार अधिक से अधिक 10 बार करने के बाद विश्राम लें।

हाथों के व्यायाम
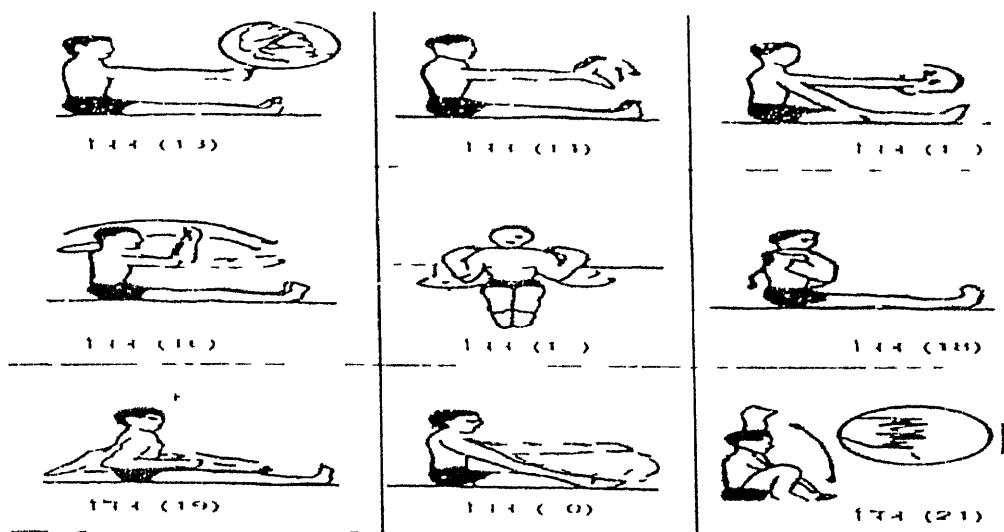
ताकत से मुटठी बाधना

पैरो को सामने की ओर फेलाकर बैठें, पीठ सीधे रहे। दोनो भुजाओं को जमीन के समानान्तर चित्रानुसार सामने की ओर फैला लें। अब दोनों हाथों की अगुलियों को खूब फैलाकर उनमें तनाव उत्पन्न करें ओर फिर अगूठे को अन्दर करते हुये ताकत से मुटठी बन्द करें। यह एक बार हुआ।

कलाई मोडना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में आ जाये। दानों हाथ की हथलिया का कलाई से इस प्रकार ऊपर की ओर से मोडे जेमे किस आप हथेलियों को दीवार से सटा रहे हों। अगुलियॉ न मुडने पायें अब हथलियों को कलाई से नीचे की ओर मोडे। यह एक बार हुआ।

मुटठी बन्द करके गोल घुमाना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में आ जाये। दायें हाथ को दाहिने पेर क घुटने पर रख लें। बायें हाथ को चित्रानुसार सीधा रखते हुए मुटठी बन्द करके उसे कलाई से कम से कम पाँच बार ओर अधिक से अधिक दस बार दायें स बायें ओर फिर बायें से दायें वृत्तकारा घुमायें। हाथों की स्थिति बदलकर इसी प्रकार दायें हाथ से करें। दोनों हाथों से एक साथ भी इसे कर सकते हे। कम से कम पॉच वार अधिक से अधिक दस बार करें।

कोहनी मोडना

व्यायाम सख्या एक की तरह से ही करत हैं। अन्तर केवल इतना है कि हाथा को कधों की सीध से फैलाते हैं।

कन्धे घुमाना

व्यायाम सख्या चार की स्थिति में ही उगलियों को कधों पर रखे हुए दोनों भुजाओं को (कधे के जोडों से) वृत्तकार दायें म बायें ओर फिर बायें से दायें घुमाये। कोहनियों से बनने वाले वृत्त का जितना सम्भव हो बडा बनाये और कोहनिया को सामने लाते समय सीने के सामने एक दूसरे से स्पर्श कराने का प्रयास कर।

नाव चलाना

दोनों पैरों को आपस में सटाकर सामने की ओर फेलाकर बेठ जायें। हार्थां की मुटिठयॉ बन्द करके दोनों हाथों को एक साध नाव चलाने के अदाज में सचालित करें अर्थात जितना सम्भव हो शरीर को उतना आगे पीछे झुकाते हुये हाथों से घेरे का आकार बनाते जायें। दस बार करने के बाद हाथों को विपरीत दिशा में घुमाएँ जेसे कि आप विपरीत दिशा में नाव को चला रह हें। इसे भी दस बार करें।

चक्की चलाना

पैरो को व्यायाम सख्या एक की स्थिति में ही सामन की ओर फैलाए रखें। हाथों को सामने सीधा फैलाकर अगुलियों को एक दूसरे से फसा लें। अब यह कल्पना करते हुये कि जैसे आप चक्की चला रहे हैं, हाथों को धीरे-धीरे दस बार दायें से बायें ओर फिर दस बार बायें से दायें वृत्तकार घुमायें।

लकडी चीरना

पजो क बल बेठ जाये। घुटने दूर-दूर रह। भुजाओं को घुटनों के बीच मे सामने की ओर सीधा फेलाकर हाथों की अगुलियों को एक-दूसरे में फसा ल और इस अन्दाज में ऊपर नीचे लायें जैसे कि कुल्हाडी से लकडी चीर रहे हो। हाथों ले जाते समय श्वास भरें और नीचे लाते समय श्वास छोडे। यदि पजो के बल बैठने में बहुत कठिनाई हो तो इस व्यायाम को खडे होकर भी कर सकते हैं।

गर्दन के व्यायाम

गर्दन झुकना

किसी भी ध्यान आसन में बेठ जाइये। नये अभ्यासियों को सुखासन अर्थात पत्थी लगाना सुविधाजनक होता है रीढ की हडडी को सीधा रखें। दोनों हाथों के

चित्र 2

पजो को अपनी-अपनी ओर की जाघ पर रख लें। अब धीरे-धीरे सिर को आगे की ओर झुकायें और फिर पीछे की ओर ले जाए। यह एक बार हुआ। कम से कम पॉच बार अधिक से अधिक दस बार करें।

गर्दन मोडना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति म बठकर सिर को पहले दायें ओर ओर फिर बायीं ओर चित्रानुसा घुमायें। यह एक बार हुआ। कम से कम पॉच बार आग अधिक से अधिक दस बार करें। इसके बाद विश्राम करें।

गर्दन घुमाना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में बेठकर बिना किसी तनाव के जितना सम्भव हो सक उतने बडे घेरे में सिर को धीर-धीर घुमाएॅ। पहले पाँच बार दायीं से

बायी ओर और फिर पॉच बार बायी से दायीं ओर घुमायें, इसके बाद विश्राम करें।

गर्दन को दायें-बायें करना

व्यायाम सख्या एक की मूल स्थिति में बैठकर बिना किसी तनाव के पहले गर्दन को दायीं तरफ झुकाते हुये दायें कान को दायें कधे से लगायें फिर सिर को

बीच में लायें और गर्दन को बायी ओर झुकाकर बायें कान को बायें कन्धे से लगाएं। यह एक बार हुआ। कम से कम पाँच बार अधिक से अधिक 10 बार करें। इसे पश्चात विश्राम करें।

दाँतो के व्यायाम

दाँतो को आपस में दबाना

ऊपर नीचे के दाँतों को आपस में मिलाकर मुटठी बन्द करते हुये आपस में दबाएँ। कुछ देर इसी स्थिति मे रूकने के बाद दाँतों को ढीला छोड़ दें, साथ ही मुटठी खोल दें। यह एक बार हुआ। इसी प्रकार कम से कम पाँच बार और अधिक से अधिक दस बार दबाएँ।

दाढ़ों को आपस में दबाना

ऊपर नीचे की दाढ़ों को क्रमशः दबायें और ढीला छोड़ें। कम से कम पाँच बार और अधिक से अधिक दस बार करें।

जबड़ों का व्यायाम

मुँह को फैलाना

सीधे बैठकर आँखे बन्द कर लें या खोले रखें। अब मुँह को यथासम्भव फैलाये, कुछ देर फैलाये रहें और फिर ढीला छोड़ दें। कम से कम दस बार अधिक से अधिक पच्चीस बार करें।

जबड़ा चलाना

निचले जबड़े को दायी तरफ ले जायें। कुछ देर रोकने के बाद बायीं तरफ ले जाएं। इसी प्रकार कम से कम पाँच बार और अधिक से अधिक दस बार करें।

गालों का व्यायाम

गालों को फुलाना

मुँह बन्द करके गालों को खूब फुलाइये। इस स्थिति में 15 गितनी तक रहिये यह क्रिया कम से कम पन्द्रह बार दोहरायें।

जीभ के व्यायाम

जीभ को ठुड्ढी से लगाना

सीधे बैठ जाइये। पूरा मुँह खोलकर जीभ को बाहर निकालें और जीभ से ठुड्ढ़ी को छूने का प्रयास करें। कम से कम पाँच बार अधिक से अधिक दस बार करें।

कान के व्यायाम

कानों को नीचे की ओर खींचना

सीधे बैठकर दायें हाथ के अगूठे व तर्जनी अगुली से दायें कान को तथा बाएँ हाथ के अगूठे व तर्जनी उगली से बायें कान को नीचे से पकड लें। अब दोनों कानों को धीरे से नीचे खीचे और तुरन्त ढीला छोड दें। यह एक बार हुआ। इसी प्रकार पाँच बार करें।

कानों को ऊपर की ओर खींचना

अब कानों को अपनी-अपनी ओर के हाथ से ऊपर की ओर से पकडें और क्रमश ऊपर खींचे और तुरन्त ढीला छोड दें। यह एक बार हुआ। इस प्रकार पाँच बार करें।

कानो को पीछे की आरे खींचना

अब कानों को अपनी-अपनी ओर के हाथ से बीच की ओर से पकड कर क्रमश पीछे की ओर खींचे और तुरन्त ढीला छाड दें। यह एक बार हुआ। इस प्रकार पाँच बार करें।

कानों को आगे की ओर खींचना

अब अपनी-अपनी ओर के हाथ की तर्जनी अगुली की सहायता से दोनों कानों के सामने के उभरे भाग को, हल्के से आगे की ओर दबायें और तुरन्त ढीला छोड दें। यह एक बार हुआ इसी प्रकार पाँच बार करें।

कानों की मालिश करना

हथेली से कानों को ढक्कर दबाव डालते हुए अपनी-अपनी ओर के हाथों स तेजी से मालिश करना, इतना कि कान खूब लाल हो जाए।

नेत्रों के व्यायाम

सामने देखना

पूर्व तैयारी करके ऐसे बैठिये कि आपके दाए हाथ का अँगूठा आपकी आँखों के ठीक सामने हो। अब दोनो आँखों से अपने अगूठे के ऊपरी भाग को दखना आरम्भ कीजिए। जितनी देर आप सरलतापूर्वक बिना पलक झपके देख सकत हे, देखते रहिए। अन्त में आँख बन्द कर लीजिए।

बायीं ओर देखना

अब अपनी बायीं भुजा को सामने की आर फेलाकर मुट्ठी बन्द कर लीजिए। अगूठ को खडा कर लीजिए। चेहरे को अपनी जगह रखत हुए अगूठे का धीरे-धीर अपनी बायीं आर ल जाना शुरू कीजिए। अन्त म अगूठे को बिना पलक झपके जितनी देर सरलतापूर्वक देख सकते है, दखतरहिय। अन्त में देखते हुये ही अपने अगूठ को धीरे-धीर सामने की आर वापस ल आइये। अब अपनी ऑखें बन्द कर लीजिए। अपन बायें हाथ का बायें घुटन पर रख लीजिए। कुछ क्षण आराम कीजिए।

दायीं ओर देखना

अपनी दायीं भुजा को सामने की ओर फेलाकर मुटठी बन्द कर लीजिए आर अगूठे को खडा कर लीजिए। अपने दाए अगूठे का देखना आरम्भ कीजिये। अब अपन अगूठे को धीरे-धीरे अपनी दायीं ओर ल जाना शुरू कीजिये ओर दायी ओर कधे के सामने ले जाकर रूक जाइये साथ ही चेहरे को अपनी जगह स्थिर रखिये।

दायीं तथा बायीं ओर देखना

अब दोनो भुजाओं को सामने फैला लीजिए। दोनों मुटिठयों को बन्द करक अगूठे को खडा कर लीजिये। चेहरे को अपनी जगह स्थिर रखतेहुए दाए अगूठे का दायीं ओर तथा बॉयें अगूठे को बायी ओर धीरे-धीरे ले जाना शुरू कीजिए। अन्त में दोनों भुजाओं को दोनों ओर सीधी फेलाकर दोनों अगूठों को बिना पलक झपके निरन्तर जितनी देर सरलतापूर्वक देख सकत हैं, दखते रहिये। अन्त में देखते हुए ही अपने अगूठे को धीरे-धीरे सामने की ओर वापस ल जाइये। अब अपनी ऑखें बन्द कर लीजिए। दोनों हाथों को घुटनों पर रख लीजिए। कुछ क्षण आराम कोजिये।

सामने ओर दायीं ओर देखना

अब दोनो भुजाओं को सामने की ओर फेलाकर दोनों मुटिठयॉ बन्द कर लीजिए और दोनों अगूठो को खडा कर लीजिए। चेहरे को अपनी जगह पर स्थिर रखते हुए बाए अगूठे को भी अपनी जगह स्थिर रखिए। अब दाए अगूठे को धीरे-धीरे अपनी दायीं ओर ले जाना शुरू कीजिए और दायीं भुजा को सीधी फैला लीजिए। साथ ही दाए और बाए दोनों अगूठों को बिना पलक झपक जितनी देर सरलतापूर्वक दख सकत है निरन्तर देखते रहिए। अन्त में दोनों अगूठो का देखतहुए ही अपने दाए अगूठे का धीरे-धीरे वापस घुमाकर बाए अगूठे के निकट ल आइये। अब ऑखे बन्द कर लीजिए। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रख लीजिए। कुछ क्षण आराम कीजिए।

सामने और बायीं ओर देखना

अपनी दोनों भुजाओं को सामने की ओर फेलाकर मुटिठयॉ बन्द कर लीजिए और दोनों अगूठों को खडा कर लीजिए। चेहरे को अपनी जगह पर स्थिर रखते हुए दाए अगूठ को भी अपनी जगह रखिये। अब बाए अगूठ को धीरे धीरे अपनी ओर ले जाना शुरू कीजिए और बायीं भुजा को बायी ओर सीधा फेला दीजिये। दोनों अगूठों को बिना पलक झपके जितनी देर सरलतापूर्वक देख सकते है निरन्तर देखतेरहिये। अन्त में दोनों अगूठो को देखते हुये ही अपने बॉये अगूठे को धीरे-धीरे वापस घुमाकर दॉये अगूठे के निकट ले आइये। अब अपनी ऑख बन्द कर लीजिये। दोना हाथों को घुटनों पर रख लीजिये। कुछ क्षण आराम कीजिये।

ऊपर की ओर देखना

दायीं भुजा को सामने की ओर फेलाकर मुटठी बन्द कर लीजिये ओर अगूठे को खडा कर लीजिये। चेहरे को अपनी जगह स्थिर रखते हुये दाए अगूठ को धीरे-धीरे ऊपर की ओर ले जाना आरम्भ कीजिये।

नीचे की आरे देखना

दायीं भुजा को सामने की ओर फेलाकर मुटठी बन्द कर लीजिये। चेहरे को अपनी जगह स्थिर रखते हुए दाए अगूठ को धीरे-धीरे नीचे की ओर ले जाना आरम्भ कीजिये। अगूठे को देखना शुरू कीजिए ओर बिना पलक झपके जितनी देर सरलतापूर्वक देख सकतेहै निरन्तर देखते रहिये। इसके बाद देखतेहुये ही धीरे-धीरे अगूठे को ऊपर की ओर लाते हुये अपने सामने कीजिए। ऑखें बन्द कीजिए। दाए हाथ को दाए घुटने पर रखिये। कुछ क्षण आराम कीजिये।

ऊपर तथा नीचे की ओर देखना

अब दोनो भुजाओं को सामने फैला लीजिये। दोनों मुटिठयों को बन्द करके दानों अगूठों को खडा कर लीजिये। चेहरे को अपनी जगह स्थिर रखते हुए दायें अँगूठे को ऊपर की ओर तथा बायें अगूठे को नीच की ओर धीरे-धीरे ले जाना आरम्भ कीजिए। दोनों अगूठों को बिना पलक झपके जितनी देर सरलतापूर्वक देख सकते हे निरन्तर देखते रहिए। अन्त में देखते हुए ही दोनो अगूठों को धीरे-धीरे वापस लाकर

सामने की आर स्थिर कीजिए। ऑखें बन्द कर लीजिए। अब दोनों हाथा का घुटना पर रख लीजिए। कुछ क्षण आराम कीजिए।

ऑखों को गोलाकार घुमाना

दोनो हाथों को दोनो घुटनों पर रख लीजिये। अब अपने चेहरे को सामन की ओर स्थिर रखत हुए, ऑखो को गालाकार घुमाना आरम्भ कीजिये। पहले नीच देखिये फिर धीरे-धीरे बायीं ओर, फिर धीरे-धीरे ऊपर की ओर, फिर धीरे-धीरे दायीं आर तथा फिर नीच को ओर देखिये। इस प्रकार एक चक्र पूरा हो जाएगा। बि पलक झपके जितने चक्र सरलतापूर्वक लगा सकत हें, दानों हथलियों को अपनी ऑखों पर रख लीजिये। ऐसा तीन बार कीजिये। अन्त में ऑखे खोल दीजिए। ऑखें खोलने के पूर्व मन में तीन बोर दोहरायें। शान्ति , शान्ति , शान्ति ।

मेरूदण्ड का घुमावदार व्यायाम

करने की विधि - इन व्यायामों को नित्य खाली पेट सुबह या शाम (आवश्यकता समझें तो दोनों समय) जमीन या तख्त पर लेट कर करते हैं। दसवें एव बारहवें व्यायाम को छोडकर प्रत्येक व्यायाम में सिर की ठोडी दायीं आर के कधे से लगावें तो पेरों या घुटनों को बायीं ओर की जमीन म लगावें अर्थात ''ठुड्डी दायें तो पेर बायें ओर ठुड्डी बायें तो पैर दाय'' करत हें। हाथों को बाजू की साध में चित्रानुसार मुट्ठी बन्द करके रखते हैं। व्यायाम करत समय आखें बन्द करके ओर सास को पट में नाभी के नीच तक भरकर करना चाहिए। कमजोर रागी शुरू में श्वास न भरें।

ध्यान रखिए कि प्रत्येक व्यायाम को अधिक से अधिक 5 बार दायें 5 बार बायें एक बार में करना पर्याप्त है तथा प्रत्येक व्यायाम करने से पहले शरीर का कुछ क्षण के लिए ढीला (श्वासन) छोड दिया कर कमजोर रोगी प्रत्येक व्यायाम के अन्त में तथा साधारण अवरथा 4-4, 6-6 व्यायाम के बाद मत्स्य विश्राम करना न भूले।

व्यायाम स0 1

तैयारी -

❖ दोनो पेरों का इतना अन्तर कि एक पैर की एडी दूसरे पैर का अगूठा मोडने पर छू सके।

❖ अब सिर बायें, तो पैर दायें घुमाय

❖ और पेर बायें तो सिर दायें
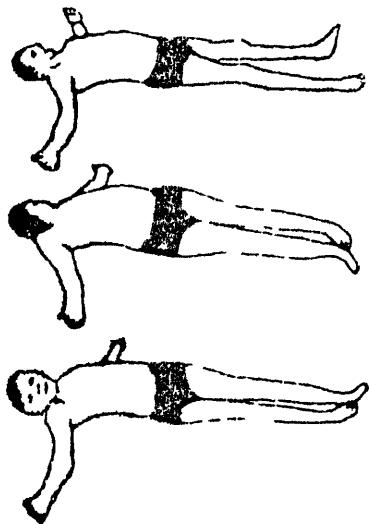
❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

व्यायाम स0 2

तैयारी -
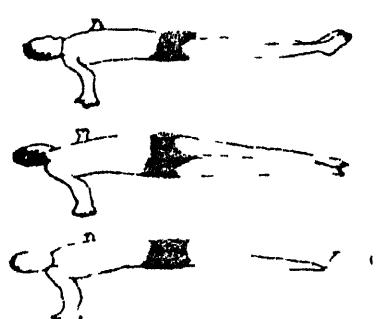
❖ दोनो पेरों की एडी और अगूठे आपस में चिपका कर तैयारी करें।

❖ अब सिर बायें, तो पैर दायें घुमायें

❖ और पैर बायें तो सिर दायें

❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

व्यायाम स0 3

तैयारी -
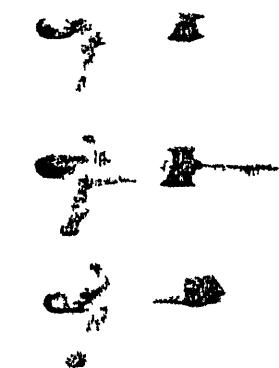
❖ पैर को आपस में कैंची की तरह फॅसाकर तेयारी करें।

❖ अब सिर बायें, तो पैर दायें घुमायें

❖ और पैर बायें तो सिर दायें

❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

❖ इसी प्रकार पैर बदल कर करें।

व्यायाम स0 4

तैयारी -
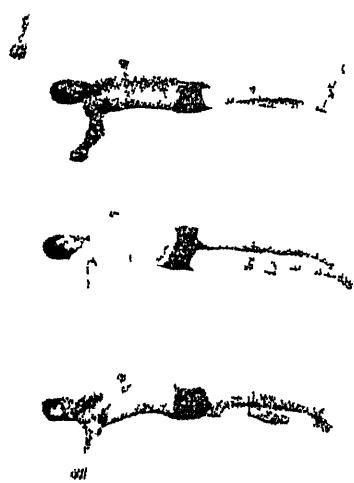
❖ एक पेर के अगूठे के ऊपर दूसरे पेर की एडी रखकर तैयारी करें।

❖ अब सिर बायें, तो पेर दायें घुमायें

❖ और पेर बायें तो सिर दायें

❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

❖ इसी प्रकार पैर बदल कर करें।

व्यायाम स0 5

तैयारी -
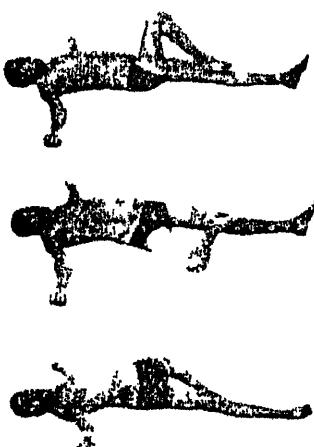
❖ एक पैर का तलुआ दूसरे फैले पेर के घुटने पर रखकर व्यायाम स 5 की तैयारी करें।

❖ अब सिर बायें, तो पैर दायें घुमायें

❖ और पैर बायें तो सिर दायें

❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

❖ इसी प्रकार पैर बदल कर करें।

व्यायाम स0 6

तैयारी -
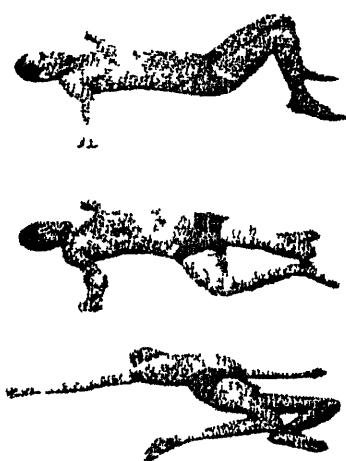
- ❖ दोनों पेरों को घुटनों से मोडें। तलुय जमीन पर लगाये रखें। पैरों का आपस में इतना फासला करें कि मुडने पर एक पेर का घुटना दूसरे पैर की एडी लग जाये। इस प्रकार व्यायाम स 6 की तैयारी कर।
- ❖ अब सिर बायें, तो पैर दायें घुमायं
- ❖ और पेर बायें तो सिर दायें
- ❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

व्यायाम स0 7

तैयारी -
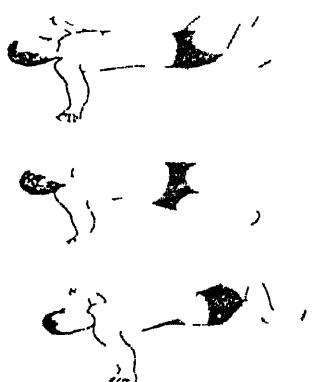
- ❖ दोनो पेरों को घुटनों से मोडें। तलुये जमीन पर लगाये रखें। दोनों पैर के घुटनों एव एडियों का आपस में चिपकाकर व्यायाम स 7 की तैयारी करें।
- ❖ अब सिर बायें, तो पैर दायें घुमायें
- ❖ और पेर बायें तो सिर दायें
- ❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

व्यायाम स0 8

तैयारी -

❖ दोनो पेरों को घुटनो से मोडें। तलुये जमीन पर लगाये रखें। दोनों घुटनों को छाती के ऊपर रखकर श्वास रोक करके व्यायाम सख्या 8 की तेयारी।

❖ सिर बायें, तो पेर दायें घुमायें

❖ पेर बायें तो सिर दायें

❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

व्यायाम स0 9

तैयारी -
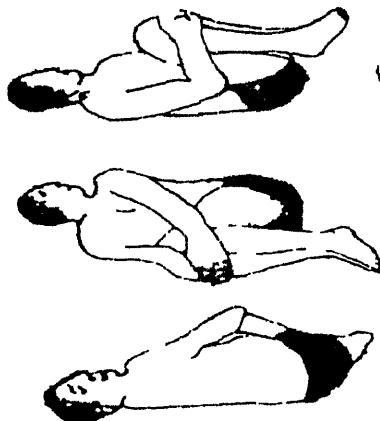
❖ दोनो पैरों को घुटनो से मोडें। तलुये जमीन पर लगाये रखें। दोनो पैर के घुटनों को हाथों से आपस में पकडकर व्यायाम स 9 की तेयारी करें।

❖ अब सिर बायें, तो पैर दायें घुमायें

❖ और पैर बायें तो सिर दायें

❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

व्यायाम स0 10

तैयारी -
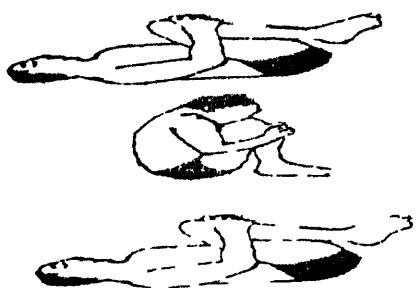
❖ दोनो पेरों को घुटनो से मोडें। तलुये जमीन पर लगाये रखें। दोनो पैर के घुटनो को हाथों स आपस में पकडकर

❖ झूले की तरह ऊपर-नीचे झूलना।

❖ कम से कम 5-5 से 10-10 बार करें।

व्यायाम स0 11

तैयारी -
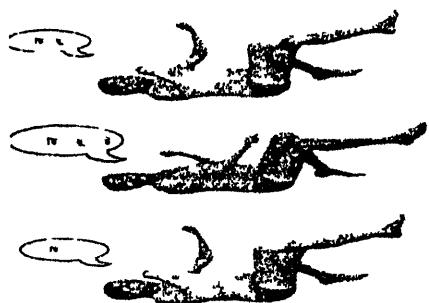
❖ छाटे बच्चों की तरह साइकिल चलाते हुए व्यायाम स 11 की तैयारी करें।

❖ हॅसना हा हा हि हि

हुहु हे हे ।

❖ खूब हसे।

योग के सरल बारह आसन

क्रम सख्या 1
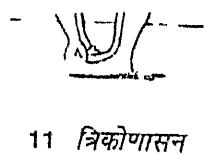
न्द्रासन

11 *त्रिकोणासन*

खडे होकर के-शवासन
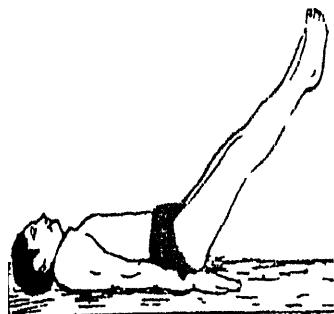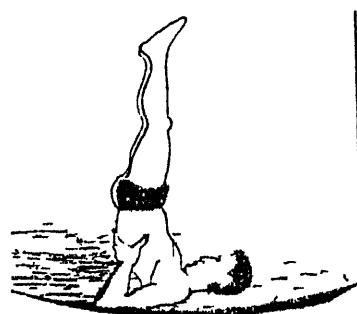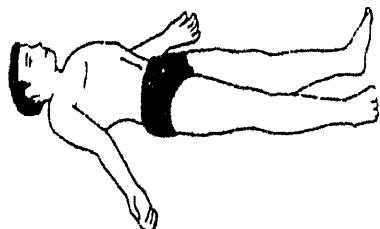
क्रम सख्या 2

क्रम सख्या 3

क्रम सख्या 4
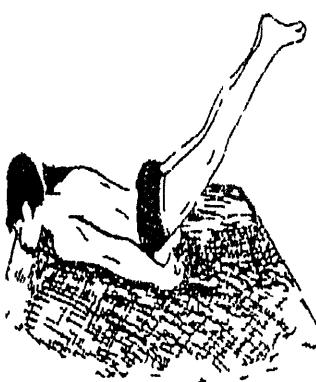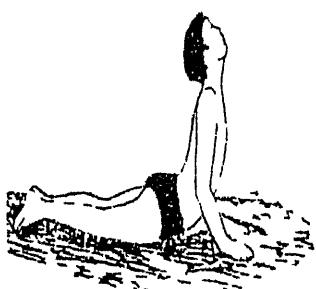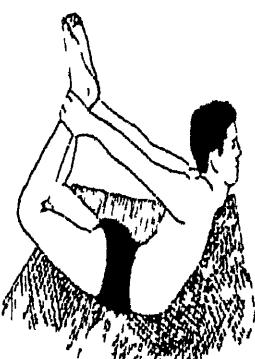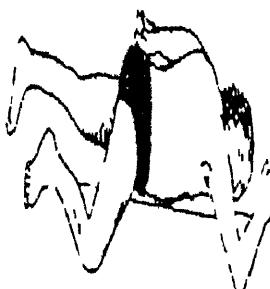
सूर्य- नमस्कार

सूर्य-नमस्कार अपने आप से एक स्वतत्र और पूर्ण व्यायाम है। इसमें भी रीढ के घुमावदार व्यायाम की भॉति बारह क्रियाएँ होती है। इसे बाहर आसनों वो समुदाय कह सकते हे। बारह आसनों के लिए बारह ही मत्र भी है। हर एक क्रिया अथवा आसन के साथ एक-एक मत्र का मन ही मन जप करते जाए।

सूर्य-नमस्कार में महत्वपूर्ण और अति उपयोगी आसन है। इसे बच्चे, बूढे स्त्री, पुरूष, निर्बल, स्वस्थ, योगी, भोगी तथा रोगी सभी कर सकते हैं। इसे आरम्भ करते समय, पहले दिन, केवल तीन बार ही अभ्यास करना चाहिए। इसके बाद प्रतिदिन एक-एक बार का अभ्यास बढाते जाएँ। इस प्रकार लगभग दस दिन में, पूरे नौ बार का अभ्यास पूरा करें। अर्थात् धीरे-धीरे एक-एक नमस्कार बढाकर, नौ तक बढा

सकते हैं। सूर्य-नमस्कार को नौ बार करने से एक माला पूरी हो जाती हे। एक माला में एक सो आठ मनके होते हैं। नो सूर्य-नमस्कारों में भी एक सो आठ क्रियाएँ पूरी हो जाती है। साथ ही एक सौ आठ बार ही मन्त्रों का जाप भी हो जाता हे। मत्र और उनका क्रम इस प्रकार है -

1) ओम् मित्राय नम अर्थात हे विश्व के मित्र सूर्य। तुझे नमस्कार हो।
2) ओम नवये नम अर्थात हे ससार में चहल-पहल लाने वाले सूर्य तुझ न [illegible]कार हो।
3) ओम् सूर्यय नम अर्थात हे ससार को जीवन देने वाले सूर्य। तुझे नमस्कार हो।
4) ओम् भानवे नम अर्थात हे प्रकाश-पुज। तुझे नमस्कार हो।
5) ओम् खगाय नम अर्थात हे आकाश में गति करने वाले देव।
6) ओम् पूष्णे नम अर्थात हे ससार के पोपक। तुझे नमस्कार हो।
7) ओम् हिरण्यगर्भाय नम अर्थात् हे ज्योतिर्मय। तुझे नमस्कार हो।
8) ओम् मरीचये नम अर्थात् हे किरणों के स्वामी। तुझे नमस्कार हो।
9) ओम् आदित्याय नम अर्थात् हे ससार के रक्षक। तुझे नमस्कार हो।
10) ओम् सवित्रे नम अर्थात हे विश्व को उत्पन्न करने वाले। तुझे नमस्कार हो।
11) ओम अर्काय नम अर्थात् हे अपवित्रता के शोधक। तुझे नमस्कार हो।
12) ओम् भास्कराय नम अर्थात् हे प्रकाश के करने वाले। तुझे नमस्कार हो।

सावधान · रक्तचाप, हृदयरोग और बुखार की स्थिति में सूर्य-नमस्कार नहीं करना चाहिए।

लाभ .- सूर्य-नमम्कार की बारह क्रियाओं के अभ्यास से सारे शरीर का व्यायाम हो सजाता है। शरीर के सभी अग लचीले, सुडोल और सशक्त हो जाते हैं। सूर्य-नमस्कार से सारे आसनों के लाभ मिल जाते है। कब्ज समाप्त हो जाता है। टट्टी खुलकर आती है। पाचन-शक्ति बढ जाता हे। भूख खूब लगती है। स्त्रियों का गर्भाशय सबल हो जाता है।

1 दक्षासन

पद्धति सूर्यनमस्कार की पहली अवस्था में एकाग्रचित से भगवान सूर्यनारायण का ध्यान लगाइए और ऐसी भावना कीजिए कि 'मे सबका मित्र हूँ ओर जगत के प्राणिमात्र से मेरो मित्रता है।' इसके बाद सिर गले ओर पूरे शरीर का तना हुआ रखिए। घुटने मिले हुए, बहादुर व्यक्ति की तरह सीना निकालकर सीधे खडे अर्थात सीधे खडे रहना। इसलिए प्रथम अवस्था को 'दक्षासन' कहा जाता हं।

लाभ

1 त्वचा और कमर के राग दूर होते हें। पीठ सशक्त बनती हे ओर पेरों में नया जोश आ जाता है।

2 दृष्टि नासिकाग्र पर कन्द्रित होने से मन का निराध होता हे।

3 चेहरा तेजस्वी बनता हे।

4 विद्यार्थियों के लिए स्वास्थ्य-प्राप्ति ओर व्यक्तित्वविकास का यह एक अत्यन्त सरल उपाय हे।

5 एकाग्र चित्त से ध्यान करने से आत्मविश्वास में वृद्धि हाती हे।
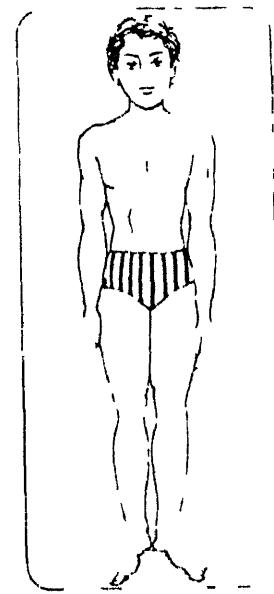
2 नमस्कारासन

नमस्कारासन

पद्धति दोनो हाथ इस पकार जाडिए कि अँगूठे सीने का स्पर्शन करते रहें। सीना बाहर निकालिए और पेट को यथासभव भीतर की ओर खींचिए। फेफडे फुलाइए। दृष्टि सामन रखिए। शरीर, सिर और गर्दन एक सीधी रेखा में रहने चाहिए। मुँह बन्द करक कुभ्यक कीजिए साँस अन्दर खीचकर उसे रोके रहिए।

लाभ गले के राग मिटते हे और स्वर अच्छा होता हे। शरीर और मन स्वस्थ बनते हे।
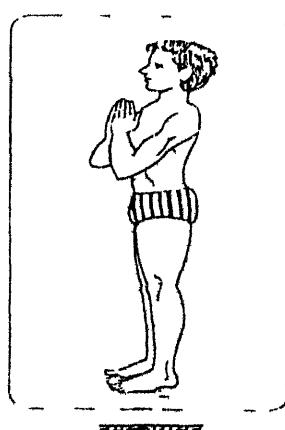
3 पर्वतासन

पर्वतासन

पद्धति हाथों को ऊपर उठाकर पूरे शरीर के पीछ की ओर खींचिए और ऑखे खुली रखकर आकाश की ओर देखिए। पीछ की ओर जितना झुक सके झुकिए। सीना फुलाइए आर बाहर की आर निकालिए।

लाभ दोनों कन्धों ओर अन्ननली का पोपण मिलता हे तथा उनस सम्बन्धि रोग मिटते ह। ऑख की वहनशक्ति बढती हे।
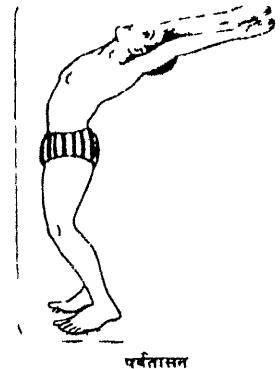
4 हस्तपादासन

हस्तपादासन

पद्धति कुम्भक जारी रखकर घुटने झुकाए, बिना नीचे की आर झुकिए। दोनों हथेलियाँ इस प्रकार भूमि पर जमाइए कि जिसमे उँगलियाँ एक-दूसरे का स्पर्श करें। दोनों हाथें के ॲगूठ पेरो क अगूठे की सीध में रखिए। इसके बाद नाक स अथवा ललाट स घुटनो को छूकर ध्वनियुक्त रचक कीजिए, (सॉस बाहर छोडिए)। सॉंस नाक से ही बाहर छोड, मुँह से नहीं। प्रारम्भ में यदि उँगलियाँ भूमि को थोडा भी स्पर्श करेंगी तब भी चलेगा। धीर-धीरे पूर्ण स्थिति आ जाएगी।

लाभ 1 पेट के रोगा को नाश करता है। सीने को बलिष्ठ बनाता है। हाथ भी बलिष्ठ बनते हे ओर शरीर सुन्दर और दर्शनीय बनता हे।

2 पैरो की उँगलियों के रोग मिटाकर अशक्तों को नई शक्ति प्रदान करता है।

5 एकपाद प्रसरणासन

पद्धति नाक से ध्वनियुक्त पूरक करके दायाँ पेर इस प्रकार पीछे की ओर लीजिए ताकि उस पेर का घुटना ओर उँगलियाँ भूमि का स्पर्श करें। बाए पेर का घुटना बाई बगल के आग लगाइए। पट अच्छी तरह दबाना चाहिए। सिर उठाकर जितना अधिक आप ऊपर की ओर देख सकें, देखिए। कम झुकाइए ओर मॉम राके रहिए।

एकपाद प्रसरणासन

लाभ

1 इस स्थिति में छोटी ऑत पर जोर पडता हे ओर वीर्यवाहिनी नसं खिचती हे, अत कब्ज ओर जिगर क रोग मिटत हें।

2 धातुक्षीणता से लाभ हाता हे।

3 काकल जेसे गल के रोग मिटते हं।
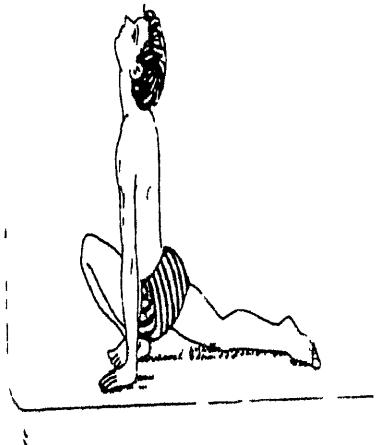
6 भूधरासन

पद्धति कुभक जारी रखकर दूसरा पेर पीछे ल जाइए। अँगूठं, टखने और घुटने एक-दूसर का स्पर्श करें इस प्रकार दोनों पेरो को जमाइए। सिर, कर्म ओर शरीर का पिछला भाग तथा कुहनियाँ एक सीध में और तन हुए रखिए। पूरा शरीर दा हथलियों ओर दाना पेरां की उँगलियों पर रखिए।

भूधरासन

लाभ हाथ, पैर ओर विशषत घुटना का दद मिटता हे। माटी कमर को पतली बनाता ह। पेट के राग क लिए यह स्थिति रामबाण इलाज है।

7 अष्टाग प्राणिपातासन

पद्धति सॉस रोककर दाना घुटने भूमि पर रखिए। सीने म भूमि का स्पर्श कीजिए। दाढी स गल के नीच का भाग का स्पर्श कीजिए। ललाट का ऊपरी हिस्सा भी इस प्रकार भूमि को लगाइए कि नाम भूमि का स्पर्श न करे। पेट का भीतर खींच लीजिए, वह भूमि का स्पर्श न कर इसकी सतर्कता रखिए। फिर पूर्ण रचक कीजिए। सीने का भाग दो हाथों क बीच म आना चाहिए।

अष्टाग प्रणिपातासन

लाभ 1 यह आसन हाथ का बलिष्ठ बनाता ह।

2 यदि स्त्रियाँ सगर्भावस्था क पूर्व यह व्यायाम कर तो पय पान करने वाले (दूध पीत) बच्चे रोगों से बच सकत हैं।

8 भुजगासन

पद्धति • पेर, घुटने और हथेलियॉ उसी स्थिति म रखकर हाथ सीधे कीजिए। साँस भीतर खींचिए आर सीना आगे कीजिए। कमर का गोलाकर में मोडकर यथासभव अधिक स अधिक ऊपर से पीछ की ओर दखिए। कुभक कीजिए।

भुजगासन

लाभ 1 निस्तजस्विता दूर करके शरीर में लाली लाता हे और आँखों का तेज बढाता हे।

2 रज-वीर्य के सभी प्रकार के दोषों का मिटाता हे और स्त्रियों क मासिक धर्म की अनियमितता दूर करता ह।

3 रक्त-परिभ्रमण ठीक होने से मुख की काति आर शोभा म वृद्धि होती है।
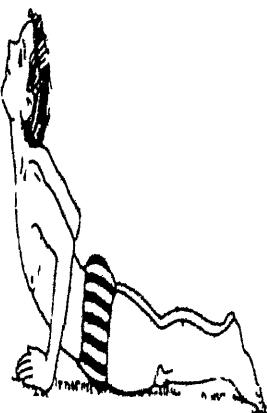
9 भूधरासन

पद्धति कुभक जारी रखकर हथेलियॉ ओर परों की उँगलियॉ हिलाए बिना कमर सीधी करके घुटना से झुक बगेर पीछ की अर झुक जाइए। दाढी से सीने का स्पर्श कीजिए। पट का भीतर खींचिए। यथासभव नितम्बों को ऊपर उठाइए। पेरों केतलव भूमि का पूर्णत छूने चाहिए।

भूधरासन

लाभ 1 सधिवात पक्षाघात तथा अधागवायु की बीमारी नहीं होती।

2 पेरों में अश्व के समान बल उत्पन्न हाता ह।
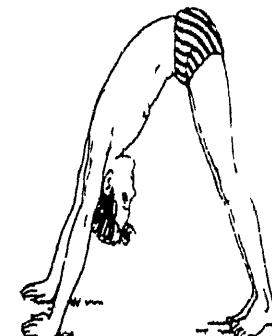
10 एकपाद प्रसरणासन

पद्धति दण्ड लम्बरेखा म लाकर बायॉ पर आग लीजिए। उस जगह से उठाया हा उसी जगह रखिए। घुटना बगल मं लाइए ओर पैर का तलवा पूर्णत भूमि पर रलिख। इस स्थिति मं पट अच्छी तरह दबाना चाहिए। गदन ओर सिर पीछ की ओर लीजिए ओर यथासभव पीछे देखिए।

एकपाद प्रसरणासन

लाभ पेरों में रक्त गतिशील बनता हे आर व्यक्ति के चलन की शक्ति बढती हे। मेरूदण्ड में लचीलापन आता ह।

11 हस्तपादासन

पद्धति दण्ड लम्बरखा में लाकर बायॉ पर आग लीजिए। उसे जगह से उठाया हा उमी जगह रखिए। घुटना बगरा में लाइए ओर पैर का तलवा पूर्णत भूमि पर रलिख। इस स्थिति म पट अच्छी तरह दबाना चाहिए। गर्दन और सिर पीछ की ओर लीजिए ओर यथासभव पीछे देखिए।

हस्तपादासन

लाभ पैरों में रक्त गतिशील बनता हे ओर व्यक्ति क चलन की शक्ति बढती हे। मरूदण्ड में लचीलापन आता हे।

12 नमस्कारासन

पद्धति ध्वनियुक्त पूरक करके दूसरी अवस्था के अनुसार तनकर खडे हो जाइऐ। पेर ओर घुटने एक दूसर स चिपक हुए आर पेर तने हुए होने चाहिए।

लाभ नमस्कारासन से होने वाले जिन लाभो का वर्णन हम पहल कर चुके हे वे सभी लाभ यहाँ भी समझ।

योगासन
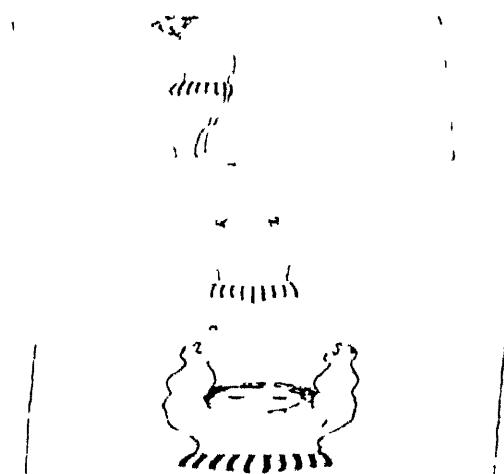
1 तारासन

यह आसन करते समय तारे जैसी आकृति बनती है। इसलिए इसे 'तारासन' कहा जाता है। इस आसन को समझने के लिए नीचे इसकी तीन भिन्न-भिन्न स्थितियों के तीन चित्र दिये गए है।

पद्धति दोनो पैरों के बीच लगभग 45^0 का कोण बनाकर सीधे खडे रहिए। दोनों हाथ सामने रखिए ओर हथेलियों को ऊपर की ओर रखकर दोनों हाथि कन्धों की सीध में सामने लाइए (देखिए चित्र 1)। इसके बाद हथेलियाँ नीचे भूमि की ओर रखकर दोनों हाथ बगल के कन्धों की सीध में लाइए (देखिए चित्र 2)। इसके बाद दोनों हाथ ऊपर की ओर ले जाइए और हथेलियों की भीतर की तरफ आमने-सामने रखिए (देखिए चित्र 3)। प्रत्येक स्थिति में आने के बाद लगभग दो सेकण्ड ठहरें।

तीसरी स्थिति के बाद मूल स्थिति में आइए। यह आसन तीन-चार बार करें। धीरे-धीरे अभ्यास होने पर छह बार तक कर मकते हं।

लाभ . 1 यह आसन फेफडो ओर सीने को मजबूत बनाता है। दमे केमरीजों के लिए तो यह आसन बडा ही लाभप्रद है।

2 यह आसन करने से श्वसनतत्र सक्रिय बनकर काम करने लगता है।

3 यह आसन सीने की चौडाई बढाता है और उसे सुडौल बनाता है।

4 यह आसन नियमित करने से कुछ अशो मं ऊँचाई भी बढाई जा सकती हे।
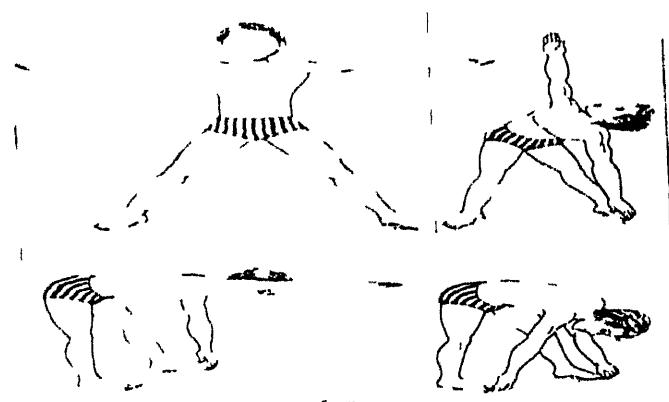
2 त्रिकोणासन

इस आसन में शरीर का आकार त्रिकोण जैसा बनता है। इसीलिए इसे 'त्रिकोणासन' कहा जाता है। इस आसन को भली-भाति समझने के लिए नीचे इसकी चार चित्र दिये गऐ है।

पद्धति दोनो पैरो के बीच लगभग 75 सेमी0 का अन्तर रखकर सीधे खडे रहिए। दोनों हाथ सीधे रखिए। फिर धीरे-धीरे दोनों हाथ कन्धे तक ऊपर उठाइए। हथेलियॉ नीचे की तरफ रखिए और सीधे खडे रहिए (देखिए चित्र 1)। फिर नीचे झुकिए और बाए हाथ से बाऍ पैर के पजे का स्पर्श करें। दायाँ हाथ ऊपर की ओर ले जाइए और सीधा रखिए। दृष्टि उसी हाथ की सीध म रलिख और बायॉ हाथ बाऍ पैर के अगूठे के पास लाइए (देखिए चित्र 2)। फिर नीचे की तरफ रखिए (देखिए चित्र 3)। इसके बाद दाऍ पैर के पजे का स्पर्श करें। त्रिकोणासन की यह अन्तिम स्थिति है (देखिए चित्र 4)। पॉच से दस सेकण्ड आराम करके दूसरी बार दायॉ हाथ नीचे और बायाँ हाथ ऊपर रखकर यह आसन कीजिए। प्रत्येक स्थिति में दो सेकण्ड ठहरिए। प्रतिदिन यह आसन चार-पाँच बार कीजिए।

लाभ .

1 जिन लोगों की गर्दन कडी हो जाती हे उन्हें इस आसन से बडा आराम मिलता हें।

2 यह आसन गर्दन और कन्धे के जोडों का दर्द मिटाता है। साथ ही मेरूदण्ड, कूल्हे, हाथ ओर उँगलियों को अच्छा व्यायाम होता हे।

3 इस आसन से रीढ लचीली बनती हे ओर मानसिक शक्ति बढती हे। ऑंशो के तेज के लिए भी यह आसन लाभप्रद हे।

3 वृक्षासन

इस आसन में वृक्ष के समान आकृति होती है। इसीलिए इसे 'वृक्षासन' कहा जाता है।

वृक्षासन
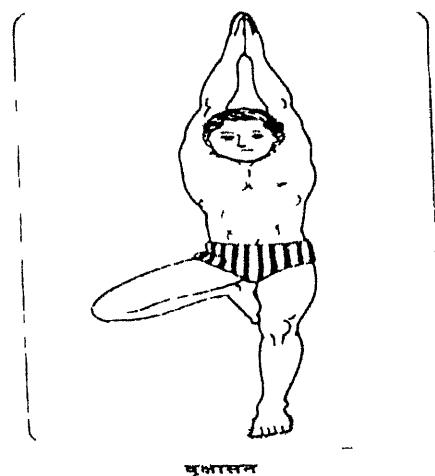
पद्धति किसी भी एक पैर पर खडे रहिए। यदि एक पैर पर शरीर का सन्तुलन बनाए रखने में कठिनाई का अनुभव हा तो दीवार का सहारा लिया जा सकता हे। दूसरे पैर को घुटने से मोडकर उसकी एडी को पहले पैर की जॉघ के मूल पर चित्र में बताए अनुसार रखिए। दोनों हाथों को बलग से सीधे सिर पर ले जाकर इस प्रकार रखिए कि उनकी हथेलियॉ एक-दूसरे से सटी हुई रहे। इस प्रक्रिया से स्थिति ऐसी होगी जैसे आप आकाश की ओर नमस्कार कर रहे हों। दोनों हाथों की कुहनियॉ सीधी रखिए। धीरे-धीरे सॉंस लीजिए। लगभग दस सेकण्ड तक इसी स्थिति में रहिए। फिर यही क्रिया दूसरे पैर पर करें। दिन में चार से छह बार यह क्रिया की जा सकती है।

लाभ :

1 यह आसन शरीर के प्रत्येक जोड को योग्य व्यायाम देता है।

2 यह आसन पैरों की उँगलियों, घुटनों, कुहनियां आदि की नाडियों में योग्य मात्रा में रक्त-सचय करता है।

3 इस आसन से हाथ-पैर लचीले बनते है और सीना सुडोल बनता हे।

4 गरूणासन

जब यह आसन किया जाता हे, उस शरीर का आकार गरूड पक्षी जैसा बनता है। इसीलिए इस आसन को 'गरूडासन' कहा जाता हे।

पद्धति . एकदम सीधे खडे रहिए। दायॉ पेर भूमि पर सीधा रहने दीजिए ओर बायॉ पैर उठाकर दाऍ पैर के आसपास लपेट दीजिए। जिस प्रकार नता वृक्ष के तने के चारों ओर लिपटकर चिपकी रहती हे इसी प्रकार बायॉ पैर दाऍ पैर के ईर्दगिर्द लिपट जानाचाहिए। इसी प्रकार बाई जॉघ पर दाई जॉघ के लपेट आनी चाहिए। हाथों की भी परस्पर ऐसी ही लपेट बनाइऐ। हथेलियॉ एक-दूसरे को स्पर्श करनी चाहिए। उँगलियॉ गरूड के चोंच के समान बनाइए। हाथ को मुँह के बराबर सामने रखिए। स्वाभाविक श्वासोच्छवास जारी रखिए। हाथ और पैर क्रमश॰ बदलते रहिए। आठ से दस सेकण्ड तक यही स्थिति बनाए रखिए।

लाभ

1 इस आसन से पैर सशक्त बनते हे ओर एक पैर पर शरीर का सतुलन रखने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।

2 इस आसन में हाथ और पैर की नसें खिचती है, इसलिए वे मजबूत बनती है।

3. इस आसन से वृष्ण की भीतरी पेशियों की सृजन दूर होती है।

4 इस आसन को करने वाले की ऊँचाई बढती है।

5 इस आसन से हाथ-पैर का रह्युमेटिज्म दूर होता है।

6 इस आसन स कूल्हे ओर पिडली का दर्द मिटता हे।

7 यह आसन मनोनिग्रह के लिए बडा ही सहायक बनता है।
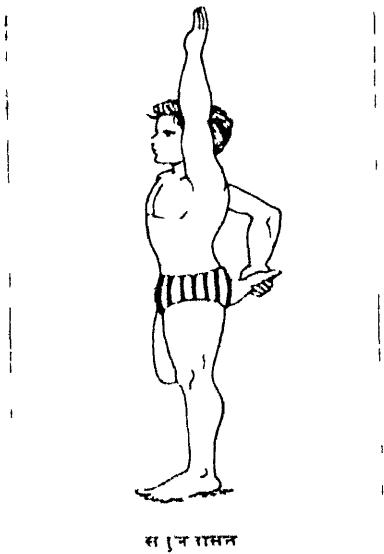
स तुलासन

5 सतुलासन

इस आसन में एक पैर पर शरीर का सतुलन बनाना पडता है। इसीलिए इसे 'सतुलनासन' कहा जाता है।

पद्धति भूमि पर सीधे खडे रहिए। शरीर का सीधा और तना हुआ रखिए। दृष्टि सामने ओर दोनों हाथ बगल में रखिए। फिर किसी एक पेर को इस तरह मोडिए कि घुटना नीचे की ओर रहे। इस पेर के पजे को उसी तरफ वाले हाथ से पकडिए। दूसरे हाथ को इस प्रकार सीधा ऊपर उठाइए कि वह कान को स्पर्श करे। यह स्थिति लगभग आठ-दस सेकण्ड तक बनाए रखिए। यही क्रिया दूसरे पैर से भी करें। प्रारभ में दिन में चार बोर और फिर छह बार यह आसन किया जा सकता है।

लाभ

1 इस आसन से शरीर के प्रत्येक जोड को उचित व्यायाम मिलता है।

2 इस आसन से जोडों को दर्द दूर होता है।

3 इस आसन से टखनों, घुटनों, कधों और हाि की उँगलियों को योग्य कसरत मिल जाती है। साथ ही एक पैर पर शरीर का सन्तुलन बनाए रखने का अभ्यास होता है।

6 वातायनासन

यह आसन अधखडी स्थिति म एक पैर के तलवे और दूसरे पेर के घुटने की सहायता के किया जाता हे। इस आसन में ऐसी आकृति बनती है मानो हम ईश्वर की स्तुति कर रहे हों।

पद्धति सीधे खडे रहिए। बाया पेर पकडिए और उसकी एडी को जॉघ अथवा ज्ञननेन्द्रिय के मूता के पास रखिए। धीरे से बाएँ घुटने का भूमि से स्पर्श करवाइए। दोनों हाथों की स्थिति पहले चित्र में बताए अनुसार रखिए। फिर दूसरे और तीसरे चित्र में बताए अनुसार गरूडासनवाली हाथों की लपेट लेकर नमस्कार की मुद्रा बनाइऐ। दृष्टि सामने की ओर रखिए। धीरे-धीरे सॉस लीजिए। मोडे हुए पैर का घुटना दाएँ पैर की एडी का स्पर्श करें ऐसी स्थिति बनाइऐ। फिर धीरे-धीरे खडे होकर दूसरे पैरे से यही क्रिया फिर कीजिए।

लाभ ·

1 इस आसन से पैर सशक्त बनते हैं। साथ ही टखनों और घुटनों का दर्द दूर होता है।

2 ईश्वर की स्तुति करने केलिए इस आसन का उपयोग किया जा सकता है।

7 उत्कटासन

उत्कटासन उत्तम आसानी में से एक है। यह आसन करने से पैर की उँगलियाँ, टखनों मे उँगलियों तक की पैर की सधियाँ और स्नायु सशक्त बनते है। इस आसन के दो प्रकार हें। दोनों की जानकारी नीच दी गयी हे।

पद्धति 1 (पहला प्रकार) दोनों पैर मिलाकर खडे रहिए। फिर पजो पर उठकर दोनों हाथ चित्र में बताए अनुसार नमस्कार की मुद्रा में सीधे सिर के ऊपर ले जाइए। फिर धीरे-धीरे शरीर के नीचे झुकाइए। इस आसन में अधिक ताकत की आवश्यकता नहीं पडती। साधक को केवल इतना समझ लेना है कि शरीर का सन्तुलन कैसे बनाए रखा जाए। पतला और सुदृढ डीलडौलवाला व्यक्ति यह आसन बहुत अच्छे ढग से कर सकता हे।

पद्धति 2 (दूसरा प्रकार) . हाथ सीधे रखकर खडे रहिए। फिर धीरे-धीरे शरीर को पॉच-सात सेमी0 ऊपर उठाकर पैर की उँगलियों पर सन्तुलन बनाए रखने का प्रयत्न कीजिए। प्रारभ में धीमे-धीमे नीचे की ओर आइए और पजो पर बैठिए। इस स्थिति में पूरे शरीर का वजन केवल पजो पर ही रहेगा और कूल्हें एडियों को छुएँगे। आठ में दस सेकण्ड तक यह स्थिति बनाए रखिए। यह आसन बस्तिक्रिया में बडा उपयोगी है। क्रमश अभ्यास बढाते हुए अधिक से अधिक तीन मिनट तक यह आसन किया जा सकता हे।

लाभ :

1 इस आसन से हाथों की कलाइयाँ और पैरो के पजे मजबूत बनते हैं।
2 पीलपॉव के रोग में यह आसन बहुत उपयोगी है।
3 इस आसन से पैर के सभी जोडों और स्नायुओं को उचित व्यायाम मिलता है।
4 इस आसन में इडा-पिगला नाम की नाडियों के मार्ग बन्द हो जाते हैं और प्राण सुषुम्णा में सचरित होने लगते हैं।
5 इस आसन के निरतर अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है।
6 यह आसन करने से भगदर, जलोदर, मलावरोध, उदररोग, रक्तविकार, चर्मरोग, अफरा, हृदय और फेफडों की निर्बलता, सधिवात आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

8 नटराजासन

इस आसन में नटराज जैसा आकार बनता है। इसीलिए इसे 'नटराजासन' कहा जाता है। यह आसन 'आगे बढिए और ओर काम कीजिए' का भाग करवाता है आर काम करने की प्रेरणा देता है।

पद्धति दोनो पेरों पर सीधे खडे रहिए। दोनों हाथ अपनी-अपनी जगह पर सीधे और दृष्टि सामने रखिए। कोई भी एक पैर सीधा तना हुआ रखकर दूसरा पेर पीछे की तरफ उठाइए। फिर उसी ओर के हाथ से उस पैर का पजा पकडिए और खींचिए। दूसरे हाथ को सामने की ओर खींचिए एव दृष्टि भी उसी ओर रखिए। लगभग आठ से दस सेकण्ड तक यह स्थिति बनाए रखिए। फिर यही क्रिया दूसरे पेर पर कीजिए। प्रारभ में दिन में चार बार और फिर छह बार यह आसन किया जा सकता है।

लाभ :

1 यह आसन शरीर के प्रत्येक जोड को उचित व्यायाम प्रदान करता है।
2 इस आसन से कन्धों, कूल्हों, घुटनों, टखनों, हथेलियों, उँगलियों और रीढ को अपेक्षित व्यायाम मिलता है।
3 यहआसन कमर के दर्द को कम करता है ओर कमर को लचीला बनता है।
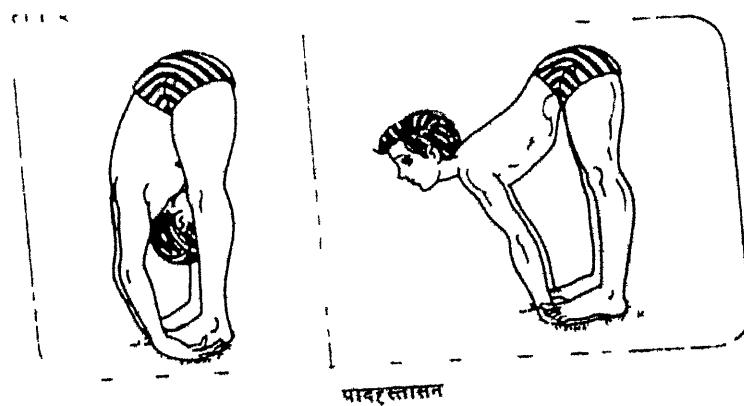
पादहस्तासन

9 पादहस्तासन

इस आसन और पश्चिमोत्तासन की स्थिति समान हे। फर्क केवल इतना है कि यह आसन खडे-खडे करना पडता हे। इमीलिए इसे 'स्थित पश्चिमोत्तासन' भी कहा जाता है। कई लोग इसे 'हस्तपाद मगासन' के नाम से भी जानते हैं।

पद्धति . सीधे खडे रहिए। दोनों हाथ अपनी-अपनी जगह पर लटकाते हुए रखिए। दोनों एडियाँ पास-पास रखिए। पजों के बीच थोडी जगह रखिए। फिर दानों हाथ ऊपर उठाइए। धीरे-धीरे शरीर को नीचे ओर झुकाइए। घुटने दृढ और कडे रखिए। घुटनों से पैरों को मुडने मत दीजिए। दोना हाथों को भी कुहनियों से मुडने मत दीजिए। दोनों हथेलियॉ चित्र में बताए अनुसार पैरो के नीचे रखिए। नीचे झुकते समय धीरे-धीरे सॉस बाहर छोडिए ओर पेट को भीतर खींचिए। ललाट को दोनों घुटनों के बीच ले जाइए। यदि जडता या पेट के अत्यधिक भेद के कारण झुकने में कठिनाई मालूम हो तो धीरे-धीरे प्रयत्न कीजिए किन्तु घुटनों को मोडे नहीं। इस स्थिति मं दो से दस सेकण्ड तक रहें।

लाभ :

1 इस आसन से अनावश्यक मेद दूर हो जाता हे और शरीर फूल की तरह हल्का-फुल्का हो जाता हे।
2 यह आसन अपानवायु को नीचे की ओर धकेलता है।
3 पश्चिमोत्तासन के सभी लाभ इस आसन से भी प्राप्त किये जा सकते हैं।
4 पैर या जॉघ में फ्रैच्चर होने से पेर छोटा हो गया हो तो यह आसन लम्बे समय करने के बाद अच्छा लाभ हाता है।
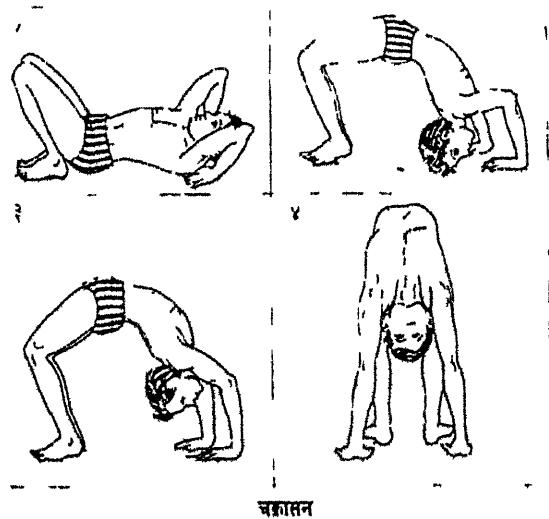
चक्रासन

10. चक्रासन

इस आसन में रीढ चक्र जैसा आकार धारण करती है। इसलिए इसे 'चक्रासन' कहा जाता है। वास्तव में तो यह आसन चक्र की अपेक्षा अर्द्धगोल अथवा मेघधुनष्य से अधिक मिलता-जुलता है।

पद्धति भूमि पर चित्त लेट जाइए। फिर दोनों पैरों को घुटनों से मोडकर नितम्ब के पास इस प्रकार रखिए कि जिससे पेर के तलवे भूमि का स्पर्श करते रहें। दोनों पैरो के बीच का अन्तर चार स छह इच के जितना रखिए। दोनों हाथों को कुहनियों से मोडकर मस्तक की दोनों भूमि पर रखिए।

इसके बाद चित्र 2 ओर चित्र 3 में निर्दिप्ट स्थिति में रहकर सॉस को भीतर खींचिए और कमर से मस्तक तक का शरीर का पीछे का भाग ऊपर की ओर उठाइए। श्वासोच्छवास जारी रखिए। मस्तक को यथासभव पीठ की ओर मोडिए। दोनों हाथ यथासभव सीधे रखिए। शरीर को स्थिर रखिए। हाथ-पैरों को अपनी जगह सेमत हटाइए। पीठ का भाग यथाशक्ति ऊपर की ओर उठाने का प्रयत्न कीजिए (देखिए चित्र 4)। लगभग 1 मिनट तक इस स्थिति में रहिए। नीचे उतरने के पहले सॉस को फेफडो में भरकर धीरे-धीरे शरीर को भूमि पर चित्त लेटी हुई स्थिति में ले आइए। फिर श्वासोच्छवास सामान्य गति से जारी रखिए।

लाभ

1 इस आसन से साधक अपनी रीढ को पर्याप्त स्थितिस्थापक बना सकता हे। रीढ की स्थितिस्थापकता अर्थात दीर्घ यौवन।

2 यह आसन सर्वांगासन का पूरक है। इसलिए यदि सर्वांगासन के अन्त में गर्दन या कन्धे में किसी भी प्रकार की पीडा हो तो फौरन कुछेक मिनटो के लिए यह आसन करें।

3 धनुरास, शलभासन और भुजगासन के सभी लाभ इस आसन से भी मिलते हैं।

11 मुर्गासन
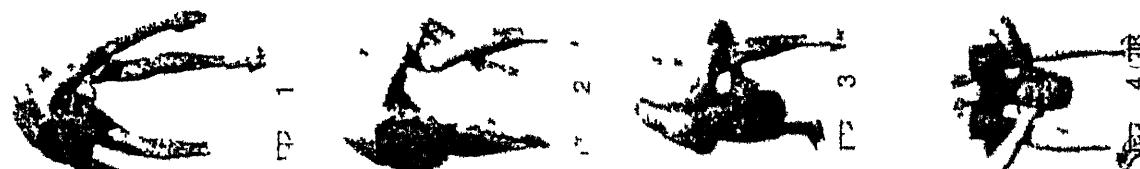
कैसे करें – हाथों को ऊपर की ओर करके खडे हो जायें। तत्पश्चात चित्र एक के अनुसार अन्य घुटनों को थोडा आगे मोड लें और कमर आगे की ओर ऊपर स झुककर हाथों को घुटनों से बाहर कर लें और सिर नीचे झुका लें। अब चित्र 2 के अनुसार हाथों को घुटनों के पीछे से डालकर हथेलियों को पिडली के पास कर लें। अब चित्र तीन के अनुसार कमर-प्रदेश को यथासभव आसमान की ओर उठाते हुए हाथों की अगुलियों से कानों के अग्रभाग का खींचते हुए पकडें।

प्रारम्भ में इस आसन का अभ्यास एक बार में अर्थात चित्र तीन की पूर्ण स्थिति में पाच से दस गिनती से अधिक में ठहरना ही मुश्किल होगा किन्तु नियमित अीया से एक माह में एक मिनट (साठ गिनती) तक का अभ्यास होने लगता हे। क्रमश धीरे-धीरे पाच मिनट से दस मिनट तक की पूर्ण स्थिति का अभ्यास करें। पूर्ण स्थिति न आने तक, अनेक बार मं पॉच-दस मिनट का समय पूरा करं अर्थात कान पकडे, पाच-दस गिनती में कें, फिर कान छाडें, पुन कान पकडत्रें, पाच-दस गिनती में रूकें, फिर कान छोडें। पुन कान पकडें, पाच दस गिनती में रूकें फिर कान ।

करने का समय – अन्य आसन-व्यायाम की भाति प्रात खाली पेट या ्याम को भोजन के पूर्व करें।

सावधानियॉ –

1 हृदय रोगी एव उच्च रक्तचार के रोगी इस आसन को न करें। कमर दर्द के पुरागी रोगी या कठिन रोगी भी न करें।

2 घुटनों में सूजन या दर्द हो तो पहले स्थानीय भाप स्नान या चुम्बकीय चिकित्सा से सूजन या दर्द का इलाज करें। जब सूजन या दर्द समाप्त हो जाये तो इस मूर्गासन का अभ्यास शुरू कर दें।

3 महिलायें तीन माह के गर्भ के बाद एव मासिक धर्म का समय इसका अभ्यास न करें।

करने के समय की धारणा – 'विचार सृष्टि का बीज है' अर्थात आसन की पूर्ण स्थिति में धारणा करें कि 'मुर्गासिन के कारण मेरे मस्तिष्क, कर्ण,नेत्र, कपोल, मस्तक आदि में रक्त एव प्राण का अतिरिक्त सचार हो रहा है। फलस्वरूप मेरी स्मरण शक्ति में वृद्धि हो रही है, कर्ण शक्ति में वृद्धि हो रही है।' मै ईश्वर का धन्यवाद करता हूँ/करती हूँ।

बैठ करके

पद्मासन

1 पदमासन

'पदम' अर्थात कमल। जब यह आसन किया जाता है उस समय वह कमल के समान दिखाई पडता है। इसीलिए इसे 'पदमासन' नाम दिया गया है। यह आसन 'कमलासन' के नाम से भी जाना जाता हे। ध्यान एव जप के लिए पदमासन मुख्य आसन है। यह आसन पुरूषों ओर स्त्रिया दानों के लिए अनुकूल है।

पद्धति . भूमि पर दोनों पैर फैलाकर सीधे बेठिए। फ्रि दायॉ पैर बाएॅ पैर की जॉघ पर और बायॉ दाए पैर की जॉघ पर रखिए। कई लोगों को पहले दाई जॉघ पर बायॉं पैर ओर फिर बाई जॉघ पर दायॉ पेर रखने में सरलता लगती है। ऐसा भीकिया जा सकता है। फिर चित्र में बताए अनुसार दोनों हाथों के अॅगूठोंको तर्जनियों के साथ मिलाकर बायॉ हाथ बाएॅ पैर के घुटने पर और दायॉ हाथ दाएॅ पैर के घुटने पर रखिए। मेरूदण्ड और मस्तक सीधी रेखा में रखिए। आँखों को बन्द या खुला रखिए। कई व्यक्ति केवल एक पैर को ही जॉघ पर रख सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को भी प्रतिदिन उत्साहपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। थोडे ही समय में वे इस आसन को सरलता स कर सकेंगे। प्रारम्भ में यह आसन एक से दो मिनट तक करें और फिर धीरे-धीरे समय बढाएॅ।

लाभ :

1 जप, प्राणायाम, धारणा, ध्यान एव समाधि के लिए इस आसन का उपयोग होता है।

2 इस आसन से अन्त स्रावी ग्रन्थियॉ कार्यक्षम बनती है।

3 यह आसन दमा, अनिद्रा, हिस्टीरिया जैसे रोग दूर करने में सहायक हैं। अनिद्रा के रोगियों के लिए यह आसन अमोध साधन है।

4 यह आसन शरीर की स्थूलता कम करने में भी सहायक है। इस आसन से जीवनशक्ति की वृद्धि होती हे।

बद्ध पद्मासन

2 बद्ध पदमासन

यह भी पदमासन का एक ही प्रकार है। यह आसन ध्यान के लिए नहीं है किन्तु मुख्यत स्वास्थ्य के सुधार के लिए एव शरीर को सशक्त और सुदृढ बनाने के लिए हे। यह आसन श्रमसाध्य है। इसलिए जिनसे यह आसन प्रारम्भ में न हो सके, वे भी निराश न हो। धैर्यपूर्वक प्रयत्न करते रहें।

पद्धति पैरो को एक-दूसरे पर चढाकर पदमासन कीजिए। पेट के नीचे वाले हिस्से को आपकी एडियों का स्पर्श होना चाहिए। फिर दाऍ-बाएँ दोनों हाथ पीठ के पीछे ले जाइए। दाऍ हाथ से दाऍ पैर का पजा ओर बाएँ हाथ से बाएँ पैर का पजा पकडिए। पेरों के अँगूठे पकडते समय कठिनाई पडती हो तो आगे की ओर झुककर ॲगूठे पकडिए और ॲगूठे पकडने के बाद फिर पूर्ववत सीधे हो जाइए। श्वासोच्छवास धीरे-धीरे चालू रखिए। एक-दो मिनट स प्रारम्भ करके क्रमश दस मिनट तक पहुँचा जा सकता है।

लाभ -

1 इस आसन में दोनों घुटनों और टखनों के जोडों पर वजन पडता है, जिससे पैरो के जोड सुदृढ बनते है।

2. इस आसन से दोनों पैरो की एडियों को सम्पूर्ण व्यायाम मिलता है।

3 यह आसन लगातार करने से हृदय, फेफडे, जठर, यकृत ओर मेरूदण्ड की अशक्ति धीरे-धीरे दूर होती है साथ ही घुटनों के जोडों की पीडा दूर हो जाती है।

4 यह आसन करने से अपच, अफरा, पेट का दर्द, अजीर्ण आदि रोग मिट जाते हैं।

5 इस आसन के द्वारा पदमासन के लाभ भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त किये जा सकते हें।

गर्भासन

3 गर्भासन

जब यह आसन किया जाता हे तब व्यक्ति का आकार गर्भस्थ शिशु क जेसा दिखाई देता है इसीलिए इस आसन को 'गर्भासन' कहा जाता है।

पद्धति : कुक्कुटासन की तरह दोनों हाथ जॉघ ओर पिडली के बीच डालिए। दोनों हाथों की कुहनियों तक का हिस्सा बाहर खींच लीजिए। धैग्रपूर्वक दाहिने हाथ से दाहिने कान की लोलकी और बाए हाथ से बाएँ कान की लोलकी पकडिए। इस स्थिति में अत्यन्त सावधानीपूर्वक आइए। अन्यथा आप पीछे की ओर लुढक जाएगे। धैर्यपूर्वक निरन्तर अभ्यास करते रहने से पुटठों के बल पर आप पूरे शरीर का सतुलन रख सकेंगे। यदि यह आसन करने में कठिनाई लगे तो पदमासन के बिना भी यह आसन किया जा सकता है। उस प्रकार यह आसन करते समय पेर नीचे की ओर लम्बे रखें। प्रारभ में 8 या 10 सेकण्ड से शुरू करें और फिर उम्र, शक्ति और लाभ के अनुसार एक मिनट तक यह आसन करें।

लाभ :

1 यह आसन करने पेट की एठन, अफरा, ऑतों की सूजन, जीर्णज्वर, मलावरोध आदि अनेक रोग दूर हो जाते हैं।

2. इस आसन से पेट साफ होता है, पेट का वायुविकास दुर होता है और पाचरशक्ति बढती है।

3 इस आसन से पेट के अवयव, वक्षस्थल तथा हाथ-पैर के जोडों को पर्याप्त मात्रा में। आराम मिलता है ओर तत्सम्बन्धी तकलीफें दूर हो जाती है।

4 इस आसन से स्वाभाविक रूप से वीर्य-रक्षा होती है और चित्त आत्मा में स्थिर होने लगता है।
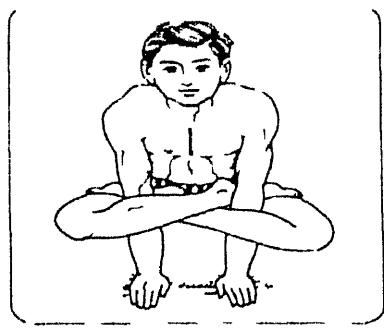
कुक्कुटासन

4 कुक्कुटासन

'कुक्कुट' सस्कृत शब्द हे और इसका अर्थ है 'मुर्गा'। इस आसन से मुर्गे जेसा आकार बनता है। इसीलिए इस आमन को 'कुक्कुटासन' कहा जाता है।

पद्धति सर्वप्रथम पदमासन की स्थिति में बैठिए। दोनों हाथ कुहनियों तक पिडलियों के बीच में डालिए। हथेलियॉ भूमि पर इस तरह टिकाइए, ताकि उँगलियाँ आगे की ओर रहें। फेफडों में सॉ भरकर शरीर का भूमि से ऊपर उठाइए। फिर सामान्य स्थिति में श्वासोच्छवास चालू रखिए। पैर कुहनियों तक भूमि से ऊपर उठने चाहिए। यदि पदमासन को किंचित ऊपर उठाया जाए तो हाथ अत्यन्त सरलता से उसमें प्रविष्ट हो सकते हैं। स्थूल व्यक्तियों को पिडलियों और जॉघों के बीच हाथ डालना बडा मुश्किल पडेगा। प्रारम्भ में 10 सेकण्ड से शुरू करके अवस्था और शक्ति के अनुसार क्रमश 1 मिनट तक इस आसन में स्थिर रहें।

पद्धति सर्वप्रथम पदमासन की स्थिति में बैठिए। दोनों हाथ कुहनियों तक पिडलियों के बीच में डालिए। हथेलियॉ भूमि पर इस तरह टिकाइए, ताकि उँगलियॉ आगे की ओर रहें। फेफडों में सॉस भरकर शरीर को भूमि से ऊपर उठाइए। फिर सामान्य स्थिति में श्वासोच्छवास चालू रखिए। पैर कुहनियों तक भूमि से ऊपर उठने चाहिए। यदि पदमासन को किंचित ऊपर उठाया जाए तो हाथ अत्यन्त सरलता से उसमें प्रविष्ठ

हो सकते हैं। स्थूल व्यक्तियों को पिडलियों ओर जॉघों के बीच हाथ डालना बडा मुश्किल पडेगा। प्रारी में 10 सेकण्ड से शुरू करके अवस्था और शक्ति के अनुसार क्रमश 1 मिनट तक इस आसन में स्थिर रहें।

लाभ .

1 उत्थित या लोलासन से मिलने वाले सभी लाभ इस आसन से भी मिलते हें। साथ ही उचित पदमासन से दूर होने वाले रोग इस आसन से भी मिट जात हें।

2 जिन्हें पेट में कूमि की शिकायत हो उनके लिए यह आसन लाभप्रद हे।

3 स्त्रियों को मासिक रजोदर्शन के समय होनेवाली बेचैनी, पुटठों का दर्द, भारीपन आदि तकलीफें इस आसन के अभ्यास से दूर हो जाती है।

4 इस आसन से हाथों को सम्पूर्ण व्यायाम मिलता है। इसलिए हाथ की तीन मुख्य सन्धियॉ- कलाई, कुहनी ओर कन्धे-सशक्त बनती है।

5 इस आसन से शरीर में स्फूर्ति ओर मन में प्रसन्नता होती है।

5 पश्चिमोत्तानासन
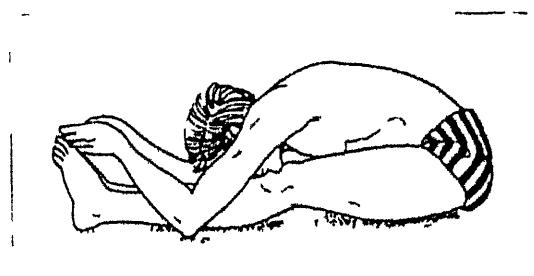
पश्चिमोत्तानासन

इस आसन को 'उग्रसन' भी कहा जाता हे। 'उग्र' शब्द का अर्थ 'शिव' होता है। भगवान शिव को सहारकर्ता माना जाता हें इसीलिए वे 'उग्र' अथवा 'भयकर' नामों से भी प्रसिद्ध है। यह आसन भी अतिशय कठिन होने से 'उग्रासन' के नाम मे जाना जाता है।

पद्धति भूमि पर बैठकर पैरों को लकडी की तरह लम्बे कीजिए। पैर को हाथ के अँगूठे और पहली तथा बीच की उँगली से पकडिए। पैर पकडते समय शरीर को आगे की आर मोडिए। उच्छ्वास छोडिए ओर धीरे-धीरे इतना नीचे झुकिए कि सिर घुटनों का स्पर्श करे। नीचे झुकते समय पेट भीतर की तरफ खींचिए, इससे आप

आसानी से झुक सकेंगे। घुटनों का स्पर्श करते समय सिर दोनों हाथों के बीच में रहेगा। स्थितिस्थापक मेरूदण्डवाले युवकों का सिर पहले प्रयत्न में ही घुटनों को छू सकेगा। मोटे आदमियों को अवश्य कुछ कठिनाई का अनुभव होगा। जिसका मेरूदण्ड जरठ हो गया हो ऐसे व्यक्ति को यह आसन करने में पखवाडा या महीना लग जाता है। पॉच सेकण्ड तक आसन की स्थिति मं रहिए। 30 सेकण्ड से शुरू करके धीरे-धीरे यह आसन दस मिनट तक किया जा सकता हे।

लाभ :

1 यह एक बडा ही अच्छा आसन हे। यह श्वास को ब्रह्मनाडी सुषुम्णा में से प्रवाहित करता है और जठराग्नि प्रदीप्ति करता हे।
2 इस आसन से पेट पर जमी हुई अतिरिक्त चर्बी कम होती हे।
3 इस आसन से मूत्राशय, जठर, पित्ताशय आदि पेट के अवयव क्रियाशील बनते हैं।
4 इस आसन से ऑतों की आकचन ओर सकुचन की क्रिया को गति मिलती ह जिससे भोजन ऑत एक स्थान स दूसरे स्थान पर पहुँचता हे।
5 यह आसन कब्ज, अजीर्ण, कलेजे के दर्द, मदाग्नि आदि को दूर करता हे।
6 यह आसन करने से जोडों में स्थितिस्थापकता आती है और कमर का दर्द दूर हो जाता है।
7 शरीर सुडौल और गठीला बनता हे।
8 पैर के स्नायु सशक्त बनते हें।
9 इस आसन से ऊर्ध्वश्वास (हिचकी) का रोग मिट जाता है।
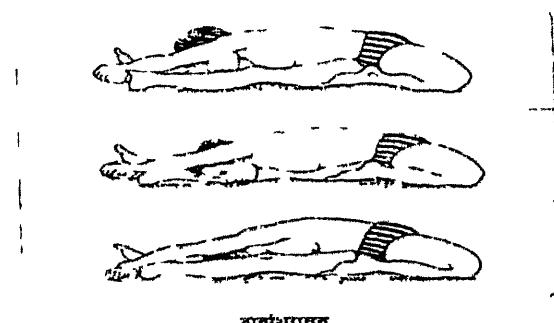
6 जानुशिरासन

अमुक अशों में यह आसन पश्चिमोत्तानासन जैसा ही है। इस आसन में केवल एक पैर ही लम्बा किया जाता है।

पद्धति बैठक की स्थिति लीजिए। बाई एडी को वृषण और गुदा के बीच क भाग में जोर से दबाकर रखिए। दायॉ पैर लम्बा और सीधा रखिए। दोनो हाथों से दाएँ पेर का पजा पकडिए। श्वास छोडिए और पेट को भीतर की तरफ खींचिए। चित्र में बताए अनुसार धीरे-धीरे सिर को नीचे झुकाइए। मुँह और दाढी को घुटने पर टेकिए। पॉच से दस सेकण्ड तक इसी स्थिति में रहिए। धीरे-धीरे समय बढाइए। इसी प्रकार बायॉ पैर लम्बा कर के भी यह आसन किया जा सकता है। निरन्तर अभ्यास से यह आसन आधे घण्टे तक किया जा सकता हे। निरन्तर अभ्यास से यह आसन आधे घण्टे तक किया जा सकता हे। यह आसन दिनभर में पॉच-छह बार कीजिए। शोचक्रिया क बाद ही यह आसन कर। यह आसन करने वाला व्यक्ति पश्चिमोत्तानासन बडी सरलता से कर सकेगा।

लाभ .

1 इस आसन से जठराग्नि प्रदीप्ति हाती हे ओर पाचनक्रिया में सहायता मिलती हे।
2 यह आसन ब्रह्मचर्य के पालन में महायक हे।
3 इस आसन से मूत्र की सारी शिकायतें दूर हो जाती है।
4 यह आसन ऑतों की पीडा के लिए बहुत उपयोगी है।
5 इस आसन से कुण्डलिनी जाग्रत होती है और आलस्य तथा अशक्ति दूर होती हे।
6 पश्चिमोत्तानासन से प्राप्त होने वाले सभी लाभ इस आसन द्वारा प्राप्त हो सकते हैं।

7 अर्द्ध मत्येन्द्रासन

यह 'अर्द्ध' अर्थात आधा आसन है। योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने हठयोग के साधकों को सर्वप्रथम यह आसन सिखाया था उन्हीं के नाम पर इस आसन का नामकरण हुआ है। कहा जाता है कि मत्स्येन्द्रनाथ भगवान शकर के शिष्य थे।

पद्धति : बाई एडी गुदा के पास वृषण के नीचे रखिए। वह सीवनी स्थान को छूनी चाहिए। इस जगह से एडी को हिलने न दें। (सीवनी स्थान गुदा और जननेन्द्रिय के

बीच में है।) दायॉ घुटना मोडिए आर दायॉ टखना बाएँ घुटने के बाहर की ओर रखिए। खडी स्थिति में मोडे हुए दाएँ घुटन पर बाई बगल टिकाइए। अब घुटनें को पीछे धकेलिए, ताकि वह बगल के पिछले हिस्से का स्पर्श करें। फिर बाएँ हाथ से दाएँ पैर का अगूड़ा पकडिए। इसके बाद बाए कन्धे के जोड पर दबाव डालकर धीमे से मेरूदण्ड को मरोडिए, और दाई तरफ जितना मोड सकें, मोडिए। चेहरे को भी दाई ओर जितना मोड सकें, उतना मोडिए। उसे दाएँ कन्धे की पक्ति में लाइए। दाएँ हाथ को पीठ के पीछे से ले जाकर बाई जॉघ पकडने का प्रयत्न कीजिए। इसी प्रकार मेरूदण्ड को बाई तरफ भी मोडा जा सकसता हे। यह आसन मेरूदण्ड के मोड को सम्पूर्ण बनाता है।

लाभ •

1 यह आसन जठराग्नि प्रदीप्ति करके भूख को जाग्रत करता हे।

2 यह आसन कुण्डलिनी को जगाता हे ओर चन्द्रनाडी को स्थिर करता हे।

3 इस आसन मेरूदण्ड को स्थितिस्थापक बनाकर पेट के स्नायुओं और अवयवों को एक सुन्दर हल्का मसाज (मालिश) देता है।

4 यह आसन मेरूदण्ड की नाडियों के मूल ओर रक्त को खींचता हे।

5 यह आसन पश्चिमोत्तासन का सहायक हे।

8 पूर्ण मत्स्येन्द्रासन

पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (सामने का स्थिति) पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (पीछे का स्थिति)
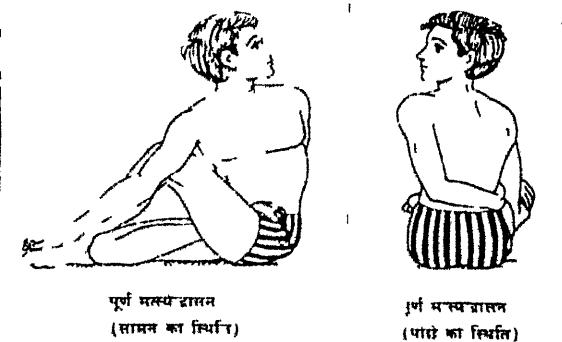
जिन्होंने कुछ समय तक अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन किया हो, ऐसे व्यक्ति यह आसन सरलता से कर सकते हैं। अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन की अपेक्षा पूर्ण मत्स्येन्द्रासन कुछ कठिन है।

पद्धति • पैर लम्बे करके बैठिए। शरीर का ऊपरी हिस्सा और मस्तक एक सीधी रेखा में खींचिए। दायॉ पैर बाई के मूल में रखिए। दाई एडी को नाभि तक ले जाइए। बाएँ पैर का दाएँ घुटने के पास भूमि पर रखिए। दायॉ हाथ बाएँ घुटने से

बाहर निकालकर उसके अँगूठे और पहली उँगली के सहायता से बाएँ पैर का अँगूठा पकडिए। इस स्थिति में बायॉ पैर सख्त रहना चाहिए। बायॉ हाथ पीठ की तरफ पीछे घुमाइए और मुँह तथा शरीर बाई ओर पीछे घुमाकर रखिए। कमर को कुछ मरोडिए। नासिकाग्र पर दृष्टि केन्द्रित कीजिए। धीरे-धीरे श्वास खींचिए। यह स्थिति बीस सेकण्ड तक बनाए रखिए। पर्याप्त अभ्यास के बाद 2 से 3 मिनट तक यह स्थिति रखी जा सकती है। यह आसन क्रमश दाई-बाई दानों ओर करने से इससे उत्कृष्ट लाभ होगा।

लाभ

1 अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन से होने वाले सभी लाभ पूर्ण मत्स्येन्द्रासन से भी पूर्णत प्राप्त हो सकते हें।

2 इस आसन से रह्युमेटिज्म से होने वालो सभी प्रकार की गॉठें छूट जाती है।

3 यह आसन प्राणशक्ति जगाता हे ओर अनेक दर्द मिटाता है।

4 यह आसन प्राणनाडत्री का नया शुद्ध रक्त पहुँचता है। फलत कुण्डलिनी जाग्रत होती है और साधक मानसिक शान्ति का अनुभव करता है।

5 मधुप्रमेह के रोगियों के लिए यह आसन बहुत उपयोगी है।

6 इस आसन से मेरूदण्ड लचीला बनता हे ओर नवयौवन के उत्साह का अनुभव होता हे।

अर्द्ध वक्रासन

9 अर्द्ध वक्रासन

इस आसन से शरीर का ऊपरी हिस्सा आधा वक्र (टेढा) अर्थात मुडता है। साथ ही मेरूदण्ड और पीठ के स्नायुओं को तनाव दिया जाता है।

पद्धति • भूमि पर दोनों पैर लम्बे करक बैठ जाइए। दोनों पैर समानान्तर रखिए। फिर दाऍं पैर को मोडकर बाऍं पैर के घुटन के पास रखिए। बाएँ हाथ को बाऍं पैर के घुटने पर रखिए। दायाँ हाथ पीठ पर रखिए। शरीर को सीधा रखकर कम से पीछे की तरफ मोडिए। इस स्थिति में छह से आठ सेकण्ड तक रहिए। धीरे-धीरे साँस

लीजिए। फिर मूल स्थिति में आकर दूसरे पेर की सहायता से दूसरी ओर यही क्रिया करें। यह आसन प्रतिदिन चार से छह बार कीजिए।

लाभ

1 इस आसन का मुख्य सप्रभाव कमर और पट पर पडता है।

2 इस आसन से पुरूषों की शुक्रग्रन्थि ओर स्त्रियों का रज पिण्ड कार्यक्षम बनता है।

3 यह आसन पेट और कमर की पीडा दूर करने में सहायक होता है।

4 इस आसन से कब्ज और पेट की अन्य तकलीफें दूर होती है।

10 वक्रासन

इस आसन से शरीर का ऊपरी हिस्सा पूरी तरह वक्र (टेढा) किया जाता हे और ऐसा करते हुए मेरूदण्ड तथा हाथ-पैर ओर पीठ क स्नायुओं को तनाव दिया जाता हे।

पद्धति दोनों पैर लम्बे करके बैठिए। फिर बायॉ पैर दाएँ पर के घुटने के पास रखिए और साथ-साथ बाएँ हाथ की हथेली पीछे की दिशा में रखिए। इसके बाद दाएँ हाथ से बाएँ पैर के घुटने दबाकर हथेली भूमि पर रखिऐ और कमर तनी हुई रखकर यथाशक्ति पीछे की ओर देखिए। यह आसन क्रमश बाई और दाई तरफ दिन में चार से छह बार किया जा सकता है। क्रमश बढते हुए पॉच मिनट तक पहुँचे।

लाभ

1 इस आसन से मेरूदण्ड सशक्त ओर ज्ञानतन्तु चपल बनते है।

2 यह आसन करने से सुषुम्णा का मुख खुल जाता है और कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगामी बनती है।

3 इस आसन से कमर के स्नायु अत्यन्त चपल बनते है।

4 अर्द्ध वक्रासन से होने वाले लाभ पूर्ण वक्रासन से भी पूर्णतः मिल जाते हे।
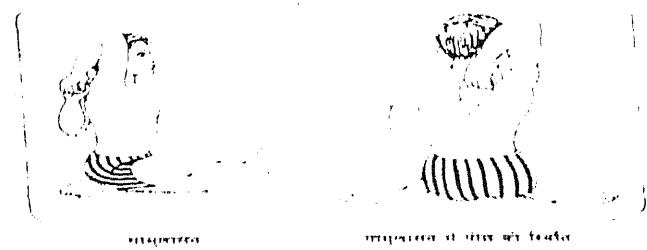
11. गोमुखासन

'गो' अर्थात 'गाय' और 'मुख' अर्थात 'मुँह'। यह आसन करते समय गाय के मुँह जैसा आकार बनता है। इसीलिए इसे 'गोमुखासन' कहा जाता है। यह आसन चौरासी आसनों में से एक है।

पद्धति : बाएँ पैर की एड़ी को गुदा के बाई तरफ नीचे रखिए। दाएँ पैर को इस प्रकार मोड़िए कि जिससे दायाँ घुटना बाएँ घुटने पर आ जाए और दाएँ पैर का तलवा बाई जाँघ के नीचे उसे स्पर्श करें। धीमे-धीमे अभ्यास करने से दाई एड़ी को बाई जाँघ तक लाया जा सकेगा। इसके बाद पहलें बाएँ हाथ को पीछे ले जाइए। बायाँ हाथ कुहनी से मोड़कर ऊपर की ओर ले जाइए। अब दायाँ हाथ ऊपर उठाइए और कुहनी से मोड़कर पीठ के पीछे ले जाइए। बाएँ हाथ की पहली और दूसरी उँगली ऊँची कीजिए। दाँए हाथ की पहली तथा दूसरी उँगली नीचे लाइए और बाएँ हाथ की उँगलियों को जोर से पकड़िए। यदि उँगलियाँ सरकने लगे तो फिर दुबारा दो मिनट तक प्रयत्न कीजिए। धीरे-धीरे साँस लीजिए। शरीर से ऊपरी हिस्से और मस्तक को सीधी रेखा में रखिए। हाथ और पैर को क्रमशः बदलिए। स्थूल व्यक्ति को यह आसन करने में कठिनाई होगी: किन्तु निरन्तर अभ्यास से यह आसन भलीभांति होने लगेगा। प्रथम सप्ताह में चार बार करें। फिर धीरे-धीरे बढ़ाते हुए छह बार तक ले जाएँ। क्रमशः आगे बढते हुए पन्द्रह मिनट तक पहुँचे।

लाभ :

1. इस आसन में तीनों बन्ध (जालंन्धर बन्ध, उड्डियान बन्ध और मूलबन्ध) दृढ़तापूर्व हो जाते है जिससे सुषुम्णा नाड़ी में स्वाभाविक रूप से प्राण का प्रवाह अधिक मात्रा में बहने लगता है। फलस्वरूप चित्तवृत्तियाँ स्वनियंण में आती जाती है।
2. इस आसन से बगल में होने वाली गाँठ मिट जाती है।

3 यह आसन पदमासन तथा सिद्धासन क स्तर का है। अत पदमासन और सिद्धासन से होने वाले लाभ इस आसन से भी प्राप्त किये जा सकते हें।

4 इस आसन से पैर का रह्युमॅटिज्म (सधिवात) दूर हो जाता है और अर्श-मसे मिट जाते हें।

5 यह आसन कब्ज, मन्दाग्नि, अरूचि, पीठ का दर्द और हाथ की माच दूर करता है।

6 यह आसन ब्रह्मचर्य ओर अच्छे स्वास्थ्य के लिए सहायभूत है।

7 इस आसन में मूलबन्ध अनायास ही हो जाता हे। इसलिए यह आसन प्राणायाम के लिए बहुत ही योग्य है।

8 लम्बे समय तक ध्यानस्थ होने क लिए भी यह आसन उपयोगी है।

9 शरीर के छाटे-बडे जोडों पर यह आसन अच्छा प्रभाव डालता है। जोड लचीले बनत हैं और हड्डियॉ मजबूत होती हे।

10 इस आसन से सीना सुडौल बनता हे ओर फेफडों तथा हृदय की शक्ति में वृद्धि होती है।
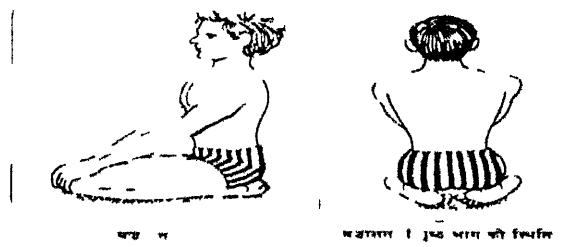
12 वज्रासन

इस आसन में बैठने वाला व्यक्ति दृढ और मजबूत स्थिति प्राप्त करता है। इस स्थिति में सरलता से हिला-डुला नहीं जा सकता। इसीलिए इसे वज्रासन कहा जाता है। सामान्यत योगी इस आसन में बेझ नहीं करते हैं।

पद्धति पैर के दोनों तलवों को गुदा के दोनों ओर इस प्रकार रखिए कि दोनों जाँघें पैरा पर और कूल्हे तलवों पर आऍं। टखनों से घुटनों तक का पैरों का भाग भूमि को छूना चाहिए। पूरे शरीर का वजन घुटनों और टखनों पर रखिए। इस आसन के अभ्यास के दौरान श्वासोच्छवास जारी रखिए। प्रारभ से सभवत. घुटनों और टखनों में दर्द होगा, कितु बाद में यह दर्द बहुत जल्द अपने आप दूर हो जाएगा। दोनों हाथ सीधे करके घुटनों पर रखिए। दोनों घुटनोंको एकदम नजदीक रखिए। शरीर, गर्दन और

सिर एक सीध में रखकर बिल्कुल तनकर बेठिए। यह एक अत्यन्त सामान्य आसन हे। इस आसन में काफी लम्बे समय तक आराम से बेठा जा सकता है।

लाभ :

1 इस आसन से पाचक रस अधिक मात्रा में उत्पन्न होते है। जठर अच्छा कार्य करता है और गॅस का रोग मिटता है।

2 यह आसन निरतर करने से घुटनों, पेरों, पजो ओर जॉघों में होनेवाला दर्द दूर होता है।

3 गुदादार से लगभग तीस सेमी0 ऊपर की आर स्थित 72,000 नाडियों का केन्द्ररूप कदस्थान वज्रासन करने से प्रभावित होता है और स्थान सशक्त बनता है।

4 इस आसन का लम्बेसमय तक अभ्यास करने से रसग्रन्थियों अथवा प्लीहा, गले केकाकल, अस्थिमज्ज आदि रथानों में उत्पन्न होने वाले श्वेतकणों की सख्या में वृद्धि होने से स्वास्थ्य अधिक अच्छा बनता हे।

5 नियमित रूप से यह आसन करने वाला व्यक्ति ज्वर, कब्ज, मदाग्नि या अजीर्ण आदि छोटे-बडे किसी भी रोग से पीडित नहीं होता।

टिप्पणी यह एकमात्र आसन ऐसा हे जिसे भोजन के तुरत बाद करने से भोजन अच्छी तरह पच जाता है।

सुप्त वज्रासन (१ ४)
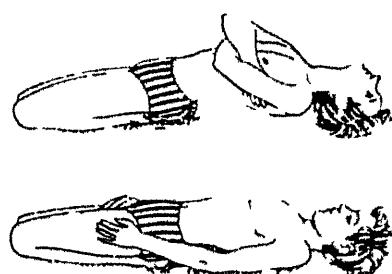
13. सुप्तवज्रासन

इस आसन की स्थिति अर्द्ध श्वासन के समान है। यह आसन कुछ अशों में मत्स्यासन केवर्ग का माना जा सकता है। वज्रासन करने में निपुणता पाने के बाद ही यह आसन करें। यह आसन वज्रासन की अपेक्षा अधिक बल और तनाव देता है।

पद्धति सर्वप्रथम वज्रासन लगाइए। फिर धीरे-धीरे कुहनियों का सहारा लेकर भूमि पर चित्त लेट जाइए। ऐसी स्थिति ग्रहण करें जिससे पीठ का स्पर्श भूमि से हो। फिर दोनों हाथ बॉधकर सीने की पसलिया पर रखिए और सिर को यथासभव भीतर की ओर ले जाइए। आठ से दस सेकण्ड तक यह स्थिति बनाए रखिए। प्रारभ में पीठ का पूरा हिस्सा आसन अच्छी तरह हो सकेगा। यह आसन दिन में तीन-चार बार किया जा सकता है।

लाभ .

1 इस आसन में रीढ पीछे की ओर मुडती हे, इससे पीठ की कूबड (यदि हो तो) नष्ट हो जाती हे ओर रीढ स्थितिस्थापक बनती हे।

2 नियमित रूप से यह आसन करने से कुण्डलिनी शक्ति आसानी ऊर्ध्वबमन करने लगती है।

3 इस आसन से सीना, रीढ, गर्दन अदि अगो को आवश्यक व्यायाम मिलता हे और उनकी कार्यक्षमता बढती हे।

4 इस आसन से पैरों के जोड ओर स्नायु सशक्त बनत हैं।

5 इस आसन से सभी अन्त स्त्रावी ग्रन्थियॉ सक्रिय बनती है। फलत आरोग्य आर आनन्द बने रहते हैं।

6 मधुप्रमेह से पीडित्रत लोगों को इस आसन से विशेष लाभ होता है, क्योंकि इस आसन से क्लोम (पेंक्रियास) के सभी कोषों में सक्रियता आती हे तथा उसमें रक्तपरिभ्रमण की वृद्धि होती हे। फलस्वरूप क्लोमग्रन्थि स्वाभाविक रूप से काम करने लगती है।

7 यह आसन पेट, ऑत, लीवर (यकृत), किडनी, प्लीहा और उदर के सभी भागों में रहने वाली गडबडियॉ सुधार कर उन अगों को सबल और सशक्त बनाता है।

8 अनपच, वायुविकार, कब्ज और अर्श के लिए यह आसन एक 'रामबाण दवा' का काम करता है।

भू नमन वज्रासन

14 भूनमन वज्रासन

यह आसन वज्रसन का ही एक प्रकार हे। यह आसन सुप्त वज्रासन की विपरीत दिशा में किया जाता है। इसे ही कई ताग 'योग मुद्रा' का एक प्रकार मानते है।

पद्धति वज्रासन लगाकर धीरे-धीरे आग की आर झुकते जाइऐ। साथ-साथ द'नों हाथ पीठ के पीछे ले जाकर बाऍ हाथ के पजे से दाऍ हाथ की कुहनी के नीचे का हिस्सा और दाऍ हाथ के पजे से बाऍ हाथ की कुहनी के नीचे का हिस्सा पकड लीजिए। इसके बाद दोनों नथुनों से फेफडों में सॉम भर लीजिए और फिर सॉस छोडते हुए गर्दन गर्दन लम्बी करके नाक से भूमि का स्पर्श कीजिए। धीमे-धीमे समय बढाइए और यह आसन दस सेकण्ड तक कीजिए।

लाभ :

1 इस आसन से ऑतो और जठर की निर्बलता, यकृत की विकृति तथा स्वादुपिण्ड की शिथिलता दूर होती हे।

2 इस आसन से रीढ की स्थितिस्थापकता बढती है। साथ ही पेट और सीने के सभी स्नायु बलवान बनते हैं।

3 मलावरोध दूर करने के लिए यह आसन एक अमोध साधन हे।

4 इस आसन से मधुप्रमेह, उदररोग, सर्दी, वातविकार, मदाग्नि, स्वप्नदोश, अनिद्रा, दम, पेचिश औरा अजीर्ण जैसे रोग दूर होते हे।

5 इस आसन के अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्ति होती है।
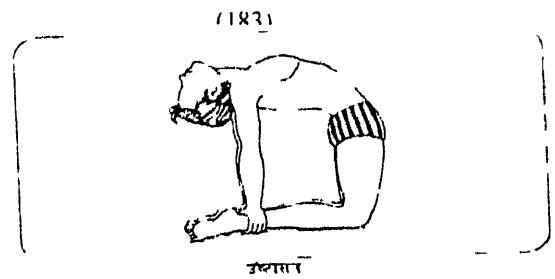
15 उष्ट्रासन

यह आसन वज्रसन के ही वर्ग का है। वज्रासन करने के बाद यह आसन करना चाहिए। उष्ट्र अर्थात ऊँट। इस आमन में शरीर के लगभग सभी अगों को ऊँट के अगों की तरह मोडा जाता है। इसीलिए इसे 'उष्ट्रासन' कहा जाता हे।

पद्धति वज्रसन की भाति घुटनों के बल बेठ जाइए। दो घुटनों की बीच ओर दोना एडियों के बीच लगभग पन्द्रह सेमी0 का अन्तर रखिए। फिर फेफडों में सॉ स भरकर दाएव हाथ से दाएँ पेर की एडी को ओर बाएँ हाथ से बाएँ पेर की एडी को मजबूती के साथ पकड लें। दोनों हाथ सीधे कीजिए ओर गर्दन पीछे की ओर ले जाइए। स्वाभाविक ढग से सॉस लीजिए यह स्थिति छह से आठ सेकण्ड तक रखिए। यह आसन प्रतिदिन दो-तीन बार किया जा सकता हे।

लाभ

1 यह आसन श्वसनतत्र को पूर्ण रूप से कार्यशील बनाता है इसलिए दमे के रोगियों के बडा ही लाभप्रद है।

2 यदि रक्त में अशुद्धि हो, मास या धातु में विकृति आ गई हो तो शारीरिक दुर्बलता का रोग हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह आसन लाभप्रद हे।

3 वातज, कफज और पित्तज रोगों के निवारणार्थ यह आसन अत्युत्तम है।

4 इस आसन के अभ्यास से भगदर के समस्त प्रकार के और प्रदर तथा मधुप्रमेह के रोगों में भी शुभ परिणाम मिलते हैं।

5 यह आसन गर्दन, कन्धा और रीढ का दर्द दूर करता है।

6 ऑखों की रोशनी के लिए यह एक अच्छा आसन है।

7 यह आसन स्थायी सरदर्द को तथा स्वर ओर काकल की तकलीफ को दूर करने में सहायक होता हे।

8 इस आसन से सीने को योग्य व्यायाम मिलता है ओर वह सुडौल बनता है।
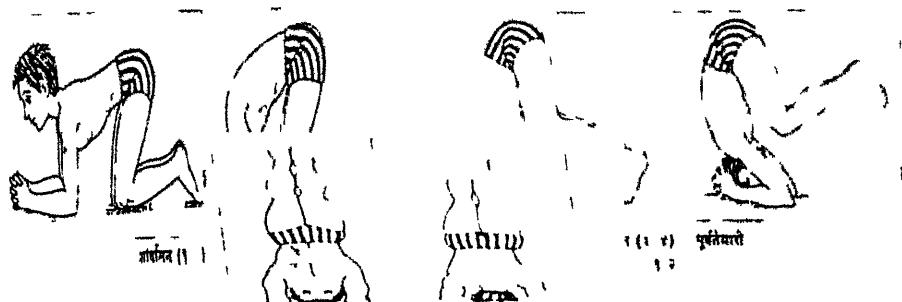
शीर्षासन

'शीर्ष' अर्थत 'सिर'। इस आसन मं पूरा शरीर सिर के आधार पर टिकाना होता है, इसीलिए इसे 'शीर्षासन' कहा जाता हे। इस आसन को 'सभी आसनों का राजा' का पद दिया गया है। इस आसन कोकपालि आसन, वृक्षासन ओर विपरीत

करणी भी कहा जाता है। यह आसन करने सरलता रहे इस हेतु से नीचे इसकी चार स्थितियों के चित्र दिये गए है।

पद्धति • पहली स्थिति • चार बार तहाया हुआ कम्बल या कोई कपडा दो-चार तहों में भूमि पर बिछाइए। दोनों घुटनों के बल बेठिए। दोनों हाथों की ऊँगलियाँ परस्पर फँसाकर एक साँकल-सी बनाकर उम्हे फर्श पर रखिए। **दूसरी स्थिति .** अब सिर को हाथ साँकल के बीच में- कुहनियों केबीचोंबीच-रखिए। धीरे-धीरे पैर ऊपर उठाइए। आरम्भ में पाँच से पन्द्रह सकण्ड तक पेर ऊँचे रखिए। क्रमश प्रति सप्ताह 15 सेकण्ड का समय बढाकर आध घण्टे तक यह आसन करें।

चित्र में बताए अनुसार पैरों को ऊपर उठाए रखने का अभ्यास करें। जल्दबाजी न करें। पैरों के पजे आकाश की ओर तने हुए रखिए। स्वाभाविक रूप से श्वासोच्छवास जारी रखिए। फिर धीरे-धीरे पेर नीचे लाइए।

खाली पेट होने पर ही यह आसन करें। यदि समय मिले तो सुबह-शाम इस प्रकार दो बार यह आसन करें। आसन अत्यन्त धीरे-धीरे कीजिए। झटके न लगने दीजिए। जब आप सिर केबल उल्टे खड हुए हों, तब धीरे-धीरे साँस लें। मुँह से कभी श्वासोच्छवास न करें। जब आप यह आसन सीखना शुरू करें तब किसी व्यक्ति का पैर स्थिर रखने में सहायता करने के लिए कहें या फिर किसी दीवार का सहारा लेकर आसन का प्रारभ करें।

ग्रीष्म ऋतु में यह आसन लम्बे समय तक न करें। हाँ, जाडे की ऋतु में आप इच्छानुसार यथासभव लम्बे समय तक यह आसन कर सकते है। आँखे खुली या बन्द रख सकते है किन्तु लम्ब समय तक आसन करें तब उस समय आँखें अवश्यक बन्द रखिए। ऐसा करने से मन की एकाग्रता सिद्ध हो सकेगी। आसन पूरा करने के बोद

पॉच मिनट का पूर्ण विश्राम लें। फिर एक कप दूध लें या हल्का नाश्ता लें। शीर्षासन के बाद कुछ आहार लेना आवश्यक हे।

टिप्पणी शीर्षासन करने के बाद आराम करने के लिए शवासन करना अत्यावश्यक है।

लाभ

1 ब्रह्मचर्य के पालन में यह आसन बहुत सहायता करता है। यह शक्ति-सचय करता हे, शक्ति प्रदान करता हे आर शक्ति म बढोत्तरी करता हे।

2 यह आसन स्वप्नदोष रोकता हे। अत वीर्यशक्ति ओजस शक्ति में परिणत हो जाती है।

3 यह आसन गुरूत्वाकर्ण-नियम क विपरीत हे। यह आसन करे से मस्तिष्क अतिशय मात्रा में प्राण और रक्त खींच सकता हे।

4 यह आसन मानसिक शक्ति में वृद्धि करता हे, स्मृति-शक्ति को विकसित करता हे और कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत करता हे।

5 यह आसन सर्व रोग हर्ता हे। सभी रोगों का एक रामबाण इलाज है। यह पाचक रसों में वृद्धि करके जठराग्नि प्रदीप्त करता हे और ऑख, नाक, सिर, गला आदि अगों के दर्द तथा मधुप्रमेह ओर दमा जैसें रोग ठीक करता है।

6 योगतत्व उपनिषद कहता है ''जा व्यक्ति यह आसन तीन घण्टे तक करता है वह जगत को जीत लेता है।'' सचमुच शीर्षासन अमृत है।

हाथों के बल किये जाने वाले आसन
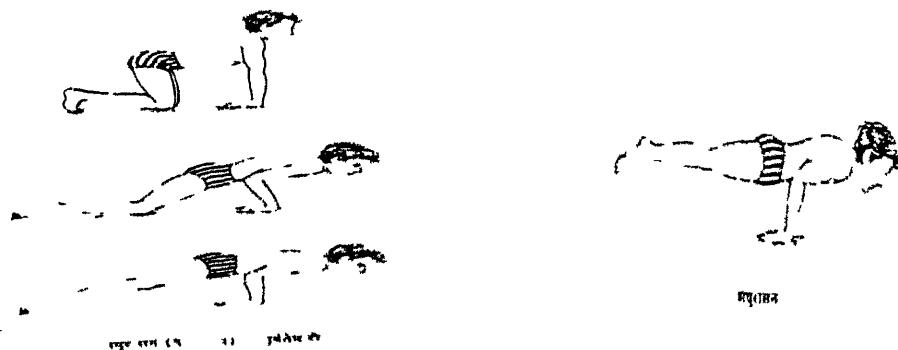
1. मयूरासन

सस्कृत में मोर को 'मयूर' कहा जाता हे। इस आसन में हाथों पर टिकेरहने से शरीर का आकार मोर जैसा बनता है, इसलिए इस आसन को 'मयूरासन' कहा जाता है। यह आसन अपेक्षाकृत कुछ कठिन हे। यह आसन करने केलिए योग्य मात्रा में शारीरिक क्षमता अपेक्षित है। व्यायामवीर इस बडी आसानी से कर सकते हैं।

पद्धति भूमि पर घुटनों के बल बैठिए। दोनों घुटनोंके बीच थोडी जगह रखिए। पैरों को पजो के बल रखिए। दोनों हाथों की हथलियों के बीच तीन-चार सेमी का अन्तर रखकर उन्हें दोनोंघुटनों बीज की जगह में रखिए। दोनों छिगुनी उँगलियॉ पास-पास में रहनी चाहिए और अँगूठे भूमि को छूने चाहिए। उँगलियॉ इस प्रकार जमाइए कि वे पैरों की दिशा बताएँ। दाना हाथ स्थिर ओर दृढ रखिए। दोनों कुहनिया को धीमे-धीमे पेट की ओर लाइए। कुहनी क आधार पर नाभि के अग्र भाग से शरीर का सराहा दीजिए। यह मयूरासन की प्रथम स्थिति हे।

अब पैर लम्बे कीजिए और एडत्री का ऊपर रखकर पेरों केपजो को भूमि के समानान्तर रखिए। यदि दोनों पैर एक साथ पीछे ले जाना कठिन लगे तो पहले धीरे-धीरे एक पेर पीछे ले जाइए ओर फिर दूसरा पेर उसके साथ मिला दीजिए। यदि आप शरीर के आगे का भाग सिर की ओर मे कुछ झुकाने का प्रयत्न करेंगे तो पेर अपने आप भूमि से ऊपर उठ जाएँगे आर फलत आप अत्यन्त सरलतापूर्वक पेरों कोपीछे की ओर सीधे कर सकेंगे। जब आसन कोपूर्ण स्थिति प्राप्त हो जाएगी तब सिर, पीठ, कूल्ह, जॉघ, पैर और पजे भूमि के समानान्तर और एक सीध में रहेंगे। पैर लम्बे करते समय झटका न लगे इसका ध्यान रखें। पॉच से बीस सेकण्ड तक यह आसन करें। शरीर को उठाते समय सॉस रोकिए। इससे अत्यन्त शक्ति प्राप्त होती। आसन पूरा होतेही उच्छवास छोडिए। मोट आदमियों को इस बात की सतर्कता बरतनी चाहिए कि वे गिर न पडे। अच्छी-खासी शारीरिक शक्तिवाले व्यक्ति यह आसन दो-तीन मिनट तक कर सकते हें।

लाभ .

1 यह आसन कुछ क्षणें में ही काफी व्यायाम देता है और शरीर को भी शीघ्रता से शक्ति प्रदान करता है। पाचनशक्ति विकसित करने की दृष्टि से यह एक अत्यन्त अदभुत आसन हे।

2. यह आसन वायु, पित्त ओर कफ बढने से होने वाले रोगों को दूर करता है ओर मधुप्रमेह तथा अर्श-बवासीर के कारण होने वाले रक्तस्राव को रोकता है।

3 यह आसन हाथ के स्नायुओं को मजबूत करता है, कुण्डलिनी जाग्रत करता है और कब्ज मिटाता है

4 यह आसन करने से इण्ट्राएब्डोमिनल दबाव बढता है, जिससे फेफडे और पेट के अवयवों को ताजगी मिलती है और जिगर की खराबियाँ दूर होती हे।

5 इस आसन के अभ्यास से शरीर म रक्त-परिभ्रमण बढने से रक्तशुद्धि होती है और शरीर में तेज, कान्ति आर लावण्य उत्पन्न होते हैं।

6 यह आसन शरीर में स्थूलता नही आने देता।
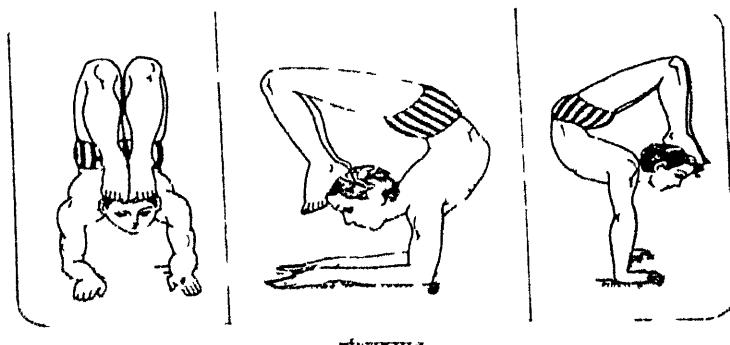
वृश्चिकासन

2 वृश्चिकासन

सस्कृत शब्द 'वृश्चिक' का अर्थ है 'बिच्छू'। इस आसन में शरीर का आकार बिच्छू जैसा बन जाता हे, इसलिए यह आसन 'वृश्चिकासन' के नाम से जाना जाता हें जो लोग लम्बे समय तक शीर्षासन अथवा हस्तवृक्षासन कर सकते हों वे यह आसन सरलता से कर सकेंगे।

पद्धति . प्रारभ में यह आसन दीवार का सहारा लेकर करें। पहले हाथ और कुहनी जमीन पर रखिए। फिर पैरों को दीवार की ओर फेंकिए। धीमे-धीमे पैरों का दीवार से पाँच सेमी दूर करके सन्तुलन बनाए रखने का प्रयत्न करें। स्वाभाविक गति से श्वासोच्छवास जारी रखें। कुछ दिनों तक इस प्रक्रिया का अभ्यास करें। जब सरलता से सन्तुलन का निर्वाह होने लगे तब पैरों आर घुटनों से मोडकर तलवों कोसिर पर रखने का प्रयत्न करें। अपेक्षित अभ्यास के बोद यह आसन केवल हाथ की हथेलियों पर सन्तुलन बनाकर भी किया जा सकता है।

लाभ :

1 यह आसन करने से हाथ और कन्ध मजबूत बनते है, साथ ही पेट के स्नायुओं को उचित मात्रा में व्यायाम मिलता है।

उत्थित द्विहस्तभुजासन।

2 इस आसन में रीढ के पीछे की ओर मोडना पडता है, इसलिए उसमें लोच आती हे।

3 इस आसन से शीर्षासन, चक्रासन ओर धनुरासन के सभी लाभ पूर्णरूप से प्राप्त होते हे।

3 उत्थित द्विहस्तभुजासन

यह आसन तोलासन की ही कक्षा है। यह आसन अपेक्षाकृत कुछ कठिन हे। यह आसन करने के लिए हाथों को मजबृत होना आवश्यक हे।

पद्धति बाऍ और दाऍ हाथ ॲगलिया फेलाकर उनसे सम्बन्धित भूमि-भाग पर इस प्रकार जमाएँ कि कन्धे नीचे वाला हिस्मा पिडली ओर जॉघ के बीच रहे। फिर हाथों के बल पर पूरे शरीर को उठाकर ऊपर स्थिर रखिए। इसके बाद दोनों पजो का एक-दूसरे में फॅसा लीजिए। सॉस रोके रखिए। क्रमश बढते हुए यह आसन अधिक से अधिक पॉच मिनट तक किया जा सकता हे।

लाभ

1 इस आसन से कुछ ही क्षणों में काफी व्यायाम मिल जाता है।

2 इस आसन से हाथ और पैर के स्नायु मजबूत बनते हैं।

3 उत्थित पदमाम्सन से मिटनेवाले सभी रोग इस आसन से भी दूर होते हैं। साथ ही, वकासन से होने वाले लाभ इस आसन से भी होते हैं।

कोणासन

4 कोणासन

इस आसन में दोनों हाथ और दोनों पेरों से शरीर का आकार कोण जैसा बनता है। इसलिए इसे 'कोणासन' कहा जाता हे। इस आसन में दोनों हाथ के पजों ओर पैरों की एडियों पर सतुलन रखना पडता हे।

पद्धति दोनों पैर साथ में जुडत्रे रखिए। दोनों हाथों के बीच कन्धे के जितना अन्तर रखकर हाथ और पैर लम्बे करें। इसके बाद सॉस खीचिए और हाथ की हथेलियों तथा पैर की एडियों की सहायता से शगीर को ऊपर की ओर ले जाइए। गर्दन को पीछे की ओर मोडिए। दोनों हाथ सीभ ओर सीना आसमान की तरफ रखिए। इस स्थिति में आठ-दस सेकण्ड तक रहिए। फिर धीभ-धीम मूल में आइए। यह आसन चार से छह बार कर सकत हे।

लाभ

1 इस आसन स कन्धे मजबूत बनते हे ओर पट की तकलीफें दूर होती ह।
2 इस आसन से पेरों ओर रीढ को पर्याप्त मात्रा में व्यायाम मिलता हे।
3 यह आसन पश्चिमोत्तानासन का उप-आसन माना जाता है। इसलिए पश्चिमोत्तानासन के बाद करने से बहुत लाभ होता हे।

पीठ के बल किये जाने वाले आसन
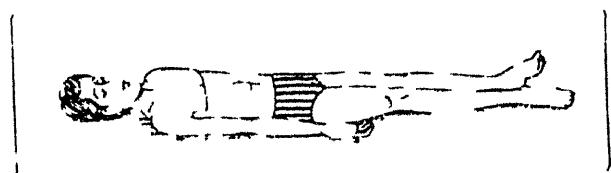
शवासन

1 शवासन

इस आसन का दूसरा नाम 'मृतासन' है। यह आसन ध्यान, प्राणायाम, जप इत्यादि के लिए अतिशय उपयोगी हे। यह आसन सभी आसनों के प्रारी में, मध्य में और अन्त में करना चाहिए। यह आसन सभी स्नायुओं, नाडियों आदि के आराम केलिए है। सबसे सरल लगने वाला यह आसन सिद्ध करना कठिन है। इसमें मन को शरीर से मुक्त करने का प्रयतन किया जाता है। कम स कम समय में अधिक से अधिक आराम प्राप्त करने की यह यौगिक पद्धति हे। आधुनिक युग में शिथिलीकरण अत्यन्त आवश्यक है। स्पर्धात्मक ओर आपाधापी वाले जीवन में तनावजन्य व्याधिकों के अमोध उपचार के रूप में श्वासन को स्वीकार किया गया है।

पद्धति पीठ के बल चित्त लेट जाइए। हाथों को दोनों तरफ भूमि पर अनुकूलता के अनुसार आकाश की दिशा में शरीर स 10-15 सेमी दूर रखिए। मुट्ठियाँ इस ढग से अधखुली या आधी बन्द रखिए ताकि उँगलियाँ न बन्द रहें, न पूरी तरह खुली रहें। पैरों को एकदम सीधा लम्बा कीजिए। दोनों पैरों की एडियाँ एकदूसरे से मिली रहें और ऊपर के पजों के बीच अनुकूल अन्तर रहे ऐसी स्थिति बनाइए। फिर ऑखें बन्द कर लीजिए। सॉस बिल्कुल धीरे-धीरे लीजिए। सभी स्नायुसओं, नाडियों और अवयवों को अत्यन्त शिथिल कर दीजिए। अवयवों को शिथिल करने की शुरूआत पैरो के पजों से कीजिए। इसके बाद पीठ के स्नायुओं को ढीला कीजिए। सीना, भुजा, हाथ, उँगलियॉ, गर्दन, मुँह आदि क्रमानुसार धीरे-धीरे शिथिल करते जाइए। इसी प्रकार पेट के अवयव, हृदय, सीना और मस्तिष्क भी शिथिल हो यह ध्यान में रखिए। नाडी-समूह को भी शिथिल कर दीजिए। धीरे-धीरे गहरी सॉस लें ओर छोडें। साथ ही मन ही मन 'ॐकार' का रटन कीजिए। आत्मा का विचार कीजिए। परमात्मा का ध्यान धरिए। लगभग 10 से 15 मिनट तक ध्यान धरिए। इससे आपको एक ऐसी सपूर्ण शान्ति, आराम और सन्तोष का अनुभव होगा जिसका शब्दो में वर्णन नहीं हो सकता। जिन लागों को विशेष समानसिक सघर्ष या हृदयरोग आदि हो उन्हें नियमित रूप से प्रतिदिन केवल शवासन ही करना चाहिए।

लाभ

1 श्वासन से आसन और ध्यान दोनों का समन्वय सहोता है। इससे न केवल तन को, किन्तु मन और चित्त को भी शान्ति मिलती है।
2 इस आसन से शरीर के सभी स्नायुओं को राहत और आराम मिलते है।
3 जिस स्नायुओं को व्यायाम के द्वारा कठिन श्रम दिया गया हो, उन्हें शिथिलता और आराम की आवश्यकता पडती हे। इस आसन के द्वारा स्नायुओं को तात्कालिक और सम्पूर्ण शिथिलता तथा आराम निश्चित रूप से मिलते हैं।
4 जिन लोगों में शक्ति कम हो ओर जिन्हें शारीरिक तथा मानसिक थकावट विशेष लगती हो उन्हें इस आसन से नई शक्ति और नया उत्साह मिलते हैं।
5 अनिद्रा, न्यून या अधिक रक्तचाप, नाडित्रयों की दुर्बलता और गॅस जैसे रोग दूर करने में यह आसन सहायता करता है।
6 हृदय की तकलीफ और मानसिक रोगवाले व्यक्तियों को इस आसन से फौरन आराम मिलता है।

7 यह आसन करने से समग्र शरीर म शुद्ध रक्त का सचार होता है। शरीर में नवजीवन आ जाता है।

8 यह आसन निरतर करने से क्रोध शान्त होता हे।
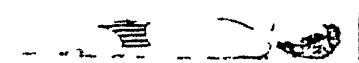
2 एकपाद उत्तानासन

इस आसन पेट के स्नायुओं को पर्याप्त मात्रा में व्यायाम देता हे। यह आसन क्रमश पैर बदलते हुए एक पेर पर करना हे।

पद्धति . पीठ के बल लेट जाइए। दोनों पेरों की एडियॉ मिलाकर रखिए। दोनों हाथ बगल में सटाकर रखिए। किसी भी एक पेर के पजे को आगे की ओर खींचिए। दूसरा पैर ढीला रखिए। धीरे स सॉस भीतर की ओर खींचिए। जब पैर सख्त हो जाए तो उसे धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाइए। सॉस रोके रखिए। छह से आठ सेकण्ड तक इस स्थिति को बनाए रखिए। फिर धीरे-धीरे पैर नीचे लाइए। सॉस को छोड दीजिए। छह सेस आठ सेकण्ड आराम करके यही क्रिया दूसरे पेर स कीजिए। प्रारभ में प्रत्येक पैर से चार बार और बराबर अभ्यास होने के पश्चात यह आसन छह बार कीजिए। यह आसन सरल होने स प्रत्येक योगाभ्यासी को नियमित रूप से करना चाहिए।

लाभ

1 इस आसन से पेट की सारी मासपशियों को आन्तर्बाह्य व्यायाम हो जाता है।

2 यह आसन कब्ज, अनपच, वायुविकार (गॅस) तथा आँतो की अव्यवस्था को दूर काता है।

3 यह आसन पेट की स्थूलता कम करता ह।

4 स्त्रियों की मासिक धर्म सम्बन्धी तकलीफें भी इस आसन से दूर होती है।

5 इस आसन के अभ्यास से पैरों की सूजन दूर हो जाती है, पैरों का रक्त-परिभ्रमण योग्य रूप से होने लगता हे और घुटने तथा नीचे के हिस्सों का दर्द मिट जाता है।

6 इस आसन से सीने पर भी अच्छा प्रभाव पडता हे ओर फेफडे सशक्त बनते हैं।

3 उत्तानपादासन

शरीर की स्थूलता दूर करने के लिए यह आसन बडा ही उपयोगी है। यह आसन एकपाद उत्तानासन जैसा ही हे, किन्तु अन्तर केवल इतना है कि इसमें दोनों पैर एकसाथ मिलाकर रखने पडत हैं।

पद्धति पीठ के बल सीधे लेट जाइए। दोनों हाथ शरीर की दोना ओर रखिए। दोनों पैरों की एडियॉ और पजे साथ-साथ मिलाकर रखिए। धीरे से सॉस भीतर की ओर खींचिए। फिर धीरे-धीरे दोनों पैर ऊपर की ओर उझाइए। छह से आठ सेकण्ड तक यह स्थिति बनाए रखिए और इस दोरान सॉ को रोके रखिए। फिर धीमी गति से पेर नीचे की तरफ लाइए। सॉस छोड दीजिए। छह से आठ सेकण्ड के आराम के बाद फिर यही क्रिया कीजिए। प्रारभ में दिन मं चार बार और फिर पॉच-छह बार यह आसन करें।

लाभ

1 यह आसन पेट के प्रत्येक स्नायु को पर्याप्त व्यायाम देता हे। इससे पेट के स्नायु सशक्त बनते हैं और पाचनतत्र व्यवस्थित रूप से चलता है।

2 इस आसन से स्वादुपिण्ड बराबर कार्य करन लगता है। इससे कब्ज और अनपच जैसी तकलीफें दूर होती हे।

3 इस आसन से शरीर की स्थूलता कम होती हे।

4 पीठ का दर्द, कमर और नितम्ब की तकलीफें एव पेट में होने वाले कृमि दूर करने के लिए अथवा उसमें सुधार करने के लिए यह आसन लाभप्रद है।,

5 मेरूदण्ड को सशक्त बनाकर तथा आन्तरिक कोषों में शक्ति भरकर यह आसन स्नायुओं को सक्रिय बनाता हे।

6 अर्श-मसे की शुरूआत हो ता उसक निवारण के लिए यह आसन निस्सन्दह अच्छा लाभ पहुँचाता हे।

7 हिचकी आना, जॉघो की पीडा बार-बार डकारा आना, थोडी-थाडी देर में मलविसर्जन की हाजत होना, अपानवायु का विकार आदि अनेक दोष इस आसन के अभ्यास से दूर हो जाते हें।

8 यह आसन सर्वांगासन की पूर्वभूमिका की पूर्ति करता हे।
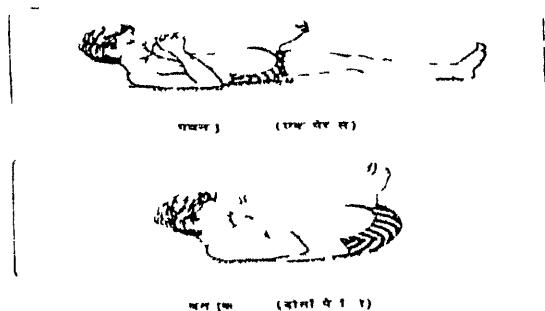
4 पवनमुक्तासन

इस आसन से पवन अर्थात गेस सरलता से मुक्त हो जाता है। इसीलिए इस आसन को 'पवनमुक्तासन' कहा जाता ह। यह आसन एक-एक पॉव से कमश अथवा एक साथ दोनों पैरों से भी किया जा सकता है।

पद्धति . पीठ के बल सीधे लेट जाइए। दोनों परों की एडियों को मिलाकर रखिए। फिर सीने में सॉस को रोककर दायॉ घुटना भूमि से पेट की तरफ खींचिए और उसे दोनों हाथोंसे पकडकर रखिए। फिर सिर को जमीन से ऊपर उठाकर मुँह से घुटने का स्पर्श कीजिए। पैर को आगे की ओर तना हुआ रखिए। सॉस छोड दीजिए और दाई जाँघ से पेट का दाई ओर के स्नायुओं को दबाए रखिए। साँस को बाहर रोक सकें तब तक रोकिए और अनुकूलता के अनुसार पेट को दबाए रखिए। इस आसन को 'दक्षिण पवनमुक्तासन' कहा जाता हे। इसी प्रकार बाएँ पैर पर यह क्रिया की जाए तो उसे 'वाम पवनमुक्तासन' कहा जाता है। इसके बाद यही क्रिया दोनों पैरों को एकसाथ मिलाकर कीजिए। इस स्थिति में 'पूर्ण पवनमुक्तासन' हो जाएगा। दोनों हाथों से पैरों को पकडते समय सॉस को छोडकर बाहर ही रोकेरहिए। फिर धीरे-धीरे सॉस लेते हुए पैर लम्बे कीजिए। (स्त्रियों को गर्भाधान के बोद यह आसन नहीं करना चाहिए।)

लाभ .

1 इस आसन से अधोवायु सरलता स निकल जाता है।

2 इस आसन से शरीर की स्थूलता कम होती हे ओर पेट पर चढी हुई चर्बी की तहें दूर हा जाती हैं।

3 यह आसन हृदयरोग ओर फेफडे क रोगों को राकता हे।

4 गैस, मलावरोध, अनपच, गर्भाशय के रोग, पेडू की पीडा, कृमिरोग, आन्त्रवृद्धि, वातरोग, अर्श, रक्तविकार, अफारा आदि अनेक रोग इस आसन से दूर हो जाते हैं।
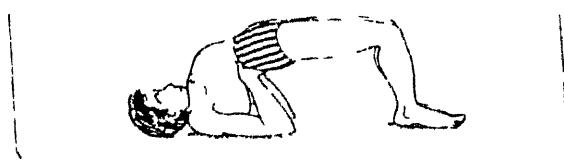
5 सेतुबधासन

इस आसन से सेतु अर्थात पुल के जेमा आकार बनता हे। इसीलिए इसे 'सेतुबन्धासन' कहा जाता हे। यह एक अत्यन्त सरल आसन हे। अत प्रत्येक उम्र के स्त्री-पुरूष यह आसन कर सकते हे।

पद्धति पीठ के बल लेट जाइए। दोनों घुटने मोड लीजिए। फिर कमर और पुटठों को ऊपर की आर उठाइए। कमर को हाथ का सहारा दीजिए। सिर, गर्दन और कन्धे जमीन पर रखिए। स्वाभाविक ढग से श्वासोच्छवास करते रहिए। इस स्थिति में छह से आठ सेकण्ड नक रहिए। थोडा आराम करके यही क्रिया फिर कीजिए। प्रारम्भ में प्रतिदिन चार बार और फिर छह बार यह आसन किया जा सकता है।

लाभ

1 यह आसन करने से कमर और पुटठे के रोग दूर होते हे।

2 इस आसन से कन्धा, गर्दन, कुहनी और हाथ के पजे के जोडों का व्यायाम मिलता है और वे सशक्त बनते हें।

3 इस आसन से गैस और अनपच जेसे राग मिट जात हे।

4 इस आसन से मेरूदण्ड में लचीलापन आता हे और मेरूदण्ड कार्यक्षम बनता है।
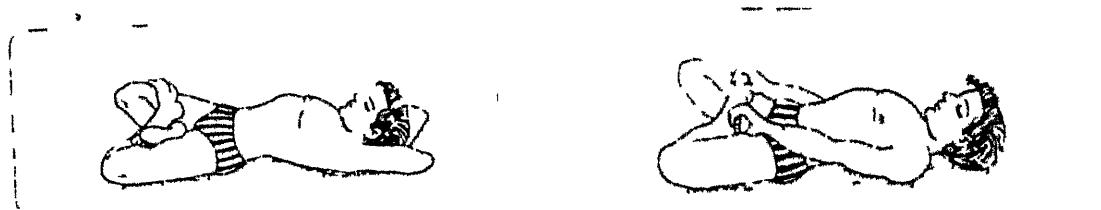
6 मत्स्यासन

इस आसन मे प्लाविनी प्राणायाम की महायता से पानी में मछली की तरह सरलता से तैरा जा सकता है। इसीलिए इसे 'मत्स्यासन' कहा जाता है। यह आसन विशेष कठिन नहीं है इसलिए थाडे अभ्यास स सरलतापूर्वक किया जा सकता है। यह आसन धारणा, ध्यान ओर समाधि के लिए बहुत उपयोगी है। यह आसन तीन तरह से किया जा सकता है।

पद्धति 1 (पहला प्रकार) भूमि पर चित्त लट जाइए। दायॉ पैर बाई जाघ पर और बायॉ पैर दाई जॉघ पर रहे, इस ढग से पदमासन कीजिए। फिर आमने-सामने हाथों की सॉकल बनाकर उस पर माथा टिकाइए। श्वासोच्छवास स्वाभाविक ढग से चाले रखिए। मत्स्यासन का यह पहला प्रकार है।

पद्धति 2 (दूसरा प्रकार) पहले प्रकार की तरह पदमासन कीजिए ओर भूमि पर चित्त लेट जाइऐ। फिर दाएँ हाथ मे बाएँ पेर का ओर बाएँ हाथ से दाएँ पेर का अँगूठा पकडिए।
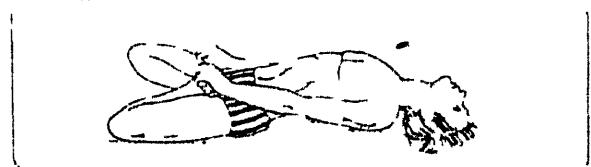
मत्स्यासन (३)

पद्धति 3 (तीसरा प्रकार) पहले प्रकार के अनुसार पदमासन कीजिए और भूमि पर चित्त लेट जाइए। फिर सिर को पीछे की ओर इस प्रकार झुकाइए कि शरीर, माथे के ऊपरी हिस्से और पुटठों के बल पर रहे। इस स्थिति में पीठ की कमान का आकार पुल जैसा बन जाएगा। हाथ से पेर के पजे पकडिए। इसमें गर्दन को अच्छा-खासा मोड देकर झुकाना पडता है। पहले दो प्रकारों की अपेक्षा यह प्रकार विशेष लाभप्रद है।

जिनके पेर के स्नायु बडे हों ऐस स्थूल व्यक्ति यदि पदमासन न कर सकें तो सामान्य बैठक में बैठकरि भी यह आसन कर सकने हैं। पहले पदमासन करने का अभ्यास करें। फिर मत्स्यासन करें। दस सकण्ड स आरम्भ कीजिए और अनुकूलता के अनुसार समय बढाते जाइए। आसन पूरा करते समय हाथ की सहायता से माथा शिथिल कीजिए और उठकर बैइ जाइए। इसके बाद पदमासन छोडिए।

लाभ

1 सर्वागासान के तुरत बाद यह आसन करना चाहिए ताकि सर्वागासन करने स उत्पन्न गर्दन की अकडन और ग्रीवामणि प्रदेश के स्नायुओं के तनाव से उत्पन्न जडता दूर हो जाती है। गर्दन ओर कन्धे से अकडत्रे हुए हिस्से को इस आसन स स्वाभाविक मालिश मिरा जाती हे। पुनश्च, इस आसन मे सर्वागासन के अधिक से अधिक लाभ मिराते हैं। इस प्रकार यह आसन मर्वागासन का पूर्तिरूप आसन है।

2 इस आसन में श्वासनलिका आर स्वरपेटी काफी खुले रहते हैं इसलिए गहरे श्वासोच्छवास के लिए यह अनुकूरा हे।

3 इस आसन से फेफडों को पर्याप्त मात्रा में शुद्ध प्राणवायु मिलती हे और पाचक रस पर्याप्त मात्रा मे उत्पन्न होते हैं।

4 दमे के रोगियों के लिए यह आसन अत्यन्त लाभप्रद हे। इससे सम्पूर्ण श्वसनतत्र की अव्यवस्थाए दूर हो जाती हे।

5 इस आसन से मेरूदण्ड और पीठ की मासपेशियॉ सक्रिया होती है।

6 इस आसन से चेहरे के तन्तुआ पर अच्छा प्रभाव पडतास है और मुख की कान्ति बढती है।
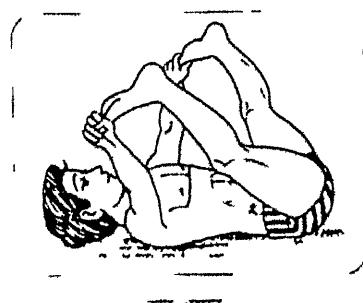
वा? आसन

7 कटि आसन

कमर और पेट के लिए यह एक बहुत ही उपयोगी आसन है। यह आसन कुछ कठिन अवश्य हे, किन्तु निरन्तर अभ्यास से भली-भाँति किया जा सकता है।

पद्धति • पीठ के बल चित्त लेटकर दोनों पेर ऊपर उठाइऐ। फिर बाऍ हाथ से बाऍ पैर का अँगूठा और दाऍ हाथ से दाएँ पेर का अँगूठा पकड लीजिए। इसके बाद दोनों पैर सीधे कीजिए। सॉस भीतर की ओर खींचिए। इस स्थिति में कमर और सिर जमीन पर रहने चाहिए। लगभग दस सेकण्ड तक यह स्थिति बनाए रखिए फिर मूल

स्थिति में आ जाइए। प्रारभ में प्रतिदिन यह आसन चार बार कीजिए। फिर छह बार तक किया जा सकता है।

लाभ

1 कमर के सभी प्रकार के रोग इस आसन से दूरा होते है।

2 पेट के शूल के लिए तो यह आसन एक रामबाण है।

3 इस आसन से फेफडत्रे ओर कन्ध मजबूत बनते हे।

4 इस आसन से ह्रदय की कार्यक्षमता बढती हे ओर ह्रदयरोग पर रोक लगती हे।
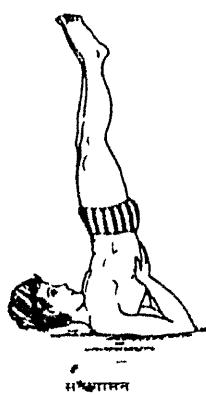
8 सर्वांगासन

यह एक महत्वपूर्ण आसन है ओर अदभुत लाभ देने वाला है। इस आसन को 'सर्व-अग-आसन' नाम दिया गया है, क्योंकि जब यह आसन किया जाता है, उस समय शरीर के सभी अग आसन करने में सक्रिय रहते हे।

पद्धति • पीठ के बल एकदम चित्त लेट जाइए। इसके बाद दोनों नथुनों से फेफडों में सॉस भरकर दोनों पैरों को एकसाथ धीरे-धीरे ऊपर की ओर उझइए। तत्पश्चात पैर, नितम्ब और पीठ की सीधी रेखा में उठाइए। दोनों ओर से दोनों हाथों द्वारा पीठ को सहारा दीजिए। कुहनियॉ भूमि पर, रखिए। कन्धे का हिस्सा ओर गर्दन भूमि कोठीक से छून दीजिए। शरीर इधर-उधर हिले-डुल नहीं इसका ध्यान रखिए। पैर सीधे रखिए। फिर स्वाभाविक ढग से श्वासोच्छवास लेत रहिए। दृष्टि सामने पैरों के अँगूठों पर केन्द्रित रखिए। पैरों को सिर की ओर झुकाकर शरीर को शिथिल करतेक हुए भूमि कीतरफ लाइए। इस आसन से पूर शरीर का वजन कन्धों पर रहता है। गले की आगे की ओर नीचे के हिस्से में स्थित थाइरोइड ग्रन्थि पर चित्त एकाग्र कीजिए।

यह आसन सुबह-शाम दो बार किया जा सकता है। यह आसन करने के तुरत बाद मत्स्यासन करना चाहिए। इससे सर्वांगासन के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। दो मिनट से प्रारभ करके धीरे-धीरे यह आसन आधे घण्टे तक किया जा सकता है।

लाभ

1 शरीर के सभी अगो का स्वास्थ्य थाइरोइड ग्रन्थि की स्वस्थता पर निर्भर होता है। इस आसन से थाइरोइड गन्थि को अच्छी मात्रा में पोषण मिलता है। फलस्वरूप रक्त-परिभ्रमण, श्वसन-क्रिया, पाचन-क्रिया, उत्सर्गक्रिया ओर नाडीतन्त्र व्यवस्थित ढग से कार्य करते ह।

2 यह एक अत्यन्त आदर्शन शक्तिप्रद आसन हे। यह आसन शरीर को निरोगी बनाकर स्फूर्ति प्रदान करता हे।

3 यह आसन करने से मेरूदण्ड की नाडियाँ क छारों को पर्याप्त मात्रा में रक्त प्राप्त हो जाता है।

4 यह आसन मेरूदण्ड की स्थितिस्थापकता बनाए रखता है। इस आसन से मेरूदण्ड में जडता नहीं आन पाती। फलस्वरूप यौवन दीर्घकाल तक सुरक्षित रहता है।

5 यह आसन स्वप्नदोष्ज को रोकने में बडा ही प्रभावशाली है और ब्रह्मचर्य के पालन में सहायक है। जननेन्द्रिय ओर गुदा के रोगों के लिए यह आसन एक रामबाण इलाज हे।

6 यह आसन नाडीतन्त्र ओर पाचनतत्र के लिए तात्कालिक उपलब्ध होने वाला एकमात्र टॉनिक है।

7 यह आसन मूत्राशय की बीमारियों में अत्यन्त उपयोगी है।

8 यह आसन के अभ्यास से पैरों के तलवों की पीडा, सूजन, जलन आदि विकार दूर हो जाते है।

9 पाण्डुरोग एव गलित कुष्ठ से पीडित व्यक्तियों के लिए यह आसन लाभप्रद है।
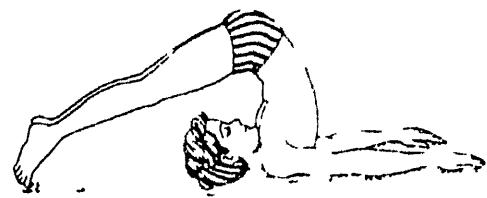
हलासन

9. हलासन

यह आसन करते समय शरीर की स्थिति हल जेसे दिखाई देती हे। इसीलिए इसे 'हलासन' कहा जाता हे।

पद्धति भूमि पर चित्त लेट जाइगे। हथेलियॉ भूमि की ओर रखकर दोनों हाथों को दोनों तरफ लम्बा कीजिए। दोनों पेरों का मिला दीजिए और उन्हें एकदम सीधे रखिए। फिर सॉस लेते हुए एकदम धीमे से उन्हें ऊपर की ओर उठाइए। सॉस लेने ओर पैर उठाने की क्रियाएँ साथ-साथ होनी चाहिए। पेरों को मुडने या हाथों का उठने मत दीजिए। पीठ को भी न मोर्डे। जब आप बिल्कुल सीधी (सर्वांगासन की) स्थिति में आ जाएँ, तब सॉस छोडने ओर साथ ही पैरों को पीछे की ओर झुकाने की शुरूआत करें। धीमे-धीमे पेरों कोमस्तक की पिछली दिशा में नीचे की ओर लाइए। पैरों को तब तक शरीर के ऊपर मोडते जाइए जब तक पेरों की उँगलियाँ भूमि का स्पर्श न करें। घुटने सीधे ओर मिले हुए रखिए। पुटठे और पैर एक पैरो की उँगलियॉ भूमि का स्पर्श न करें। घुटने सीधे ओर मिले हुए रखिए। पुटठे और पैर एक सीधी रेखा में होने चाहिए। सॉस छोडने की क्रिया पूर्ण होते ही आसन पूर्ण हो जाता हे ओर लाभ तक तक स्वाभाविक गति से श्वासोच्छवास की प्रक्रिया जारी रखिए। मुँह से सॉस मत लीजिए। ऑखें बन्द या खुली रख सकते हें। पेर तनिक भी मुडत्रने न पाएँ इसका ध्यान रखिए। दाढी गले से सटी हुई रह यह आवश्यक हे। इस स्थिति में आठ से दस सेकण्ड तक रहिए। फिर धीमे-धीम पेरो को उठाकर, तनिक भी झटका न लगने पाए इस ढग से भूमि पर अपनी मूल स्थिति में लाइए।

लाभ

1 इस आसन से मेरूदण्ड की नाडियों, पीठ के स्नायुओं, मेरूदण्ड के मनकों और उन मनकों के दोनों ओर गुजरनेवाल मज्जातत्र को पोषण मिलता है।

2 इस आसन से मेरूदण्ड कोमल ओर स्थितिस्थापक रहता है। अत· नियमित रूप से हलासन करने वाला व्यक्ति त्वरित गतिशील, फुर्तीला और पूर्ण सशक्त रहता है।

3 विविध स्नायुओं को र्ह्युमेटिज्म, कटिशूल, माच, ज्ञानतन्तु की सूजन आदि से दूर हो जाते हैं।

4 स्थायी कब्ज, वायुगोला, यकृत आर प्लीहा के सकुचन-विस्तरण इस आसन से दूर हो जाते है।

5 तन्त्रयोग के अनुसार यौवन की चचलता और योन-शक्ति प्राप्त करने में यह आसन अत्यन्त सहायक सिद्ध होता हे।

6 इस आसन से पेट के स्नायु सशक्त बनत हे।

7 इस आसन का चेहरे पर भी बडा अच्छा प्रभाव पडता है। रक्त-परिभ्रमण अच्छी तरह होने से चेहरे के तन्तुआ में सक्रियता आती है फलस्वरूप चेहरे पर यौवन की चमक छा जाती हे।

10. वृत्तासन
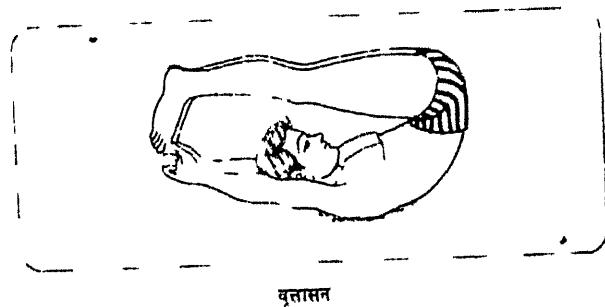
वृत्तासन

यह आसन हलासन का ही एक प्रकार हे। हलासन का भलीभाति अभ्यास हो जाने के बाद ही यह आसन करना चाहिए। इस आसन को करते समय शरीर की स्थिति वृत्तकार बनती है। इसीलिए इसे 'वृत्तासन' कहा जाता है।

पद्धति . सर्वप्रथम पीठ के बल लेटकर हलासन कीजिए। फिर धीमे-धीमे हाथ ऊपर उठाकर पैरो के अँगूठे पकड लीजिए। ध्यान रहे, ऐसा करते समय किसी प्रकार का झटका न लगने पाए। इस स्थिति लगभग आठ से दस सेकण्ड तक रहिए। फिर धीमे-धीमे पैरों को ऊपर उठाकर, तनिक भी झटका न लगे इस ढग से, उन्हें भूमि पर अपनी मूल स्थिति में ले आइए। इसके क्रमश तनी हुई स्थिति में ही दोनों हाथों को दोनों पुटठों से सटाकर रख दीजिए।

लाभ

1 इस आसन से यौन-शक्ति बढती है, क्योंकि इससे सभी यौन-ग्रन्थियाँ सशक्त बनती है। यह आसन नपसकता दूर करने में सहायक होता है।

2 इस आसन से कमर के आसपास का भेद कम होता है।

3 कन्धों के जोडत्रों को इस आसन से पयाप्त मात्रा में व्यायाम मिलता है।

4 इस आसन से सर्वांगासन क लाभा में वृद्धि होती है।

5 हलासन के सभी लाभ यह आसन करने से भी प्राप्त हो जाते हैं।

पेट के बल किये जाने वाले आसन

अर्द्ध शलभासन

1. अर्द्ध शलभासन

'शलभ' अर्थात टिड्डी। इस आसन की मुद्रा टिड्डी क समान दिखती है, इसीलिए इस आसन को 'शलभासन' कहा जाता है। जब यह आसन एक पाँव पर किया जाता है तब उसे 'अर्द्ध शलभासन' कहा जाता है।

पद्धति भूमि पर मुँह नीचे की आर रखकर आधे घण्टे लेट जाइऐ। दोनों हाथ बगल में रखिए। मुट्ठियॉ बद रखिए। हाथ जॉघ के नीचे भी रखे जा सकते हैं। थोडी सॉस लीजिए। जब तक यह आसन करें तब तक सॉस रोके रखिए। शरीर का तना हुआ रखकर किसी भी एक पैर को अनुमानत 30 सेमी ऊपर उठाइए। पैर को सरलता से जितना ऊपर तक उठा सकें उतना ही उठाए। पैर के तलवों को खींचिए। पॉच से तीस सेकण्ड तक इसी स्थिति में रहें। फिर पैर को धीमे-धीमे नीचे ओर लाइए। अब अत्यन्त धीमे से सॉस छाडिए। यही क्रिया दूसरे पैर से भी कीजिए। यह आसन छह से सात बार किया जा सकता है।

लाभ

1 मेरूदण्ड मोडने में यह आसन पश्चिमोत्तानासन से विपरीत है। अर्थात यह आसन मेरूदण्ड के पीछे की ओर मोड देता है।

2 भुजगासन से शरीर के ऊपर के आधे हिस्से का विकास होता है, जबकि शलभासन से शरीर के नीचे के आधे हिस्स का विकास होता है।

3 आँतों में एकचित्र मल कोबाहर निकालने में यह आसन बहुत सहायत होता है।

4 यह आसन कमर के दर्द को मिटाता है आर घुटने, नितम्ब, कमर तथा पेट पर जमे अतिरिक्त भेद को कम करता है।
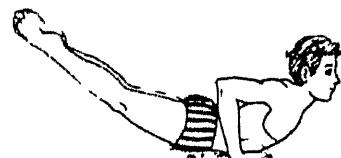
पूर्ण शलभासन (१) पूर्ण शलभासन (२)

2. पूर्ण शलभासन

दोनों पैरों को एकसाथ ऊपर उड़ाकर जो शलभासन किया जाता है उसे 'पूर्ण शलभासन' कहा जाता हे। इस आसन क दो प्रकार हे। नीचे दोनों प्रकारों की स्पष्टता की गई है।

पद्धति 1 (पहला प्रकार) मुँह नीचे की ओर रखकर भूमि पर आधे लेट जाइए। दोनों हाथ बाजू में सीधे रखिए। हथेली का अँगूठा ओर तर्जनी (अँगूठे के पासवाली उँगली) वाला भाग भूमि पर रखिए आर उसी अवस्था में दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध लीजिए। शरीर को तनी हुई स्थिति में रखकर दानों पेरों हो हवा में यथासभव अधिक से अधि अवकाश में ऊपर की ओर उठाइए। पेरों के तलवों को खींचिए। पेर, जाँघ और पेट के नीचे का हिस्सा उड़ाइए। पाँच से तीस सेकण्ड तक इस स्थिति में स्थिर रहिए ओर साँस रोके रहिए। इसके वाद पैरों को धीमे-धीमे नीचे की ओर लाइए। अब अत्यन्त धीरे-धीरे उच्छवास बाहर निकालिए।

पद्धति 2 (दूसरा प्रकार) . प्रथम प्रकार के अनुसार शलभासन की स्थिति ग्रहण कीजिए। फिर सर उठाइए। हाथों को सीने के पास भूमि पर रखा जा सकता है। हाथ की हथेलियों को जमीन की आर रखें।

लाभ ·

1 इस आसन से पेट पर दबाव पडता है और पेट, जाँघ तथा पैर के स्नायु विकसित होते हैं।

2 यह आसन जठर, पित्तशय, प्लीहा, मूत्राशय आदि पेट के विविध अवयवों को 'टोन' देता है ओर ऑतों के रोगा को मिटाता है।

3 यह आसन जठराग्नि सतेज करता हे और मन्दाग्नि दूर करता है।

4 इस आसन से पैरों की सूजन मिटती हे।

5 इस आसन से वात, पित्त एव कफ से उत्पन्न गुल्मरोग नष्ट होते है।

6 इस आसन से गले में नई शक्ति का सचार होने लगता है।

7 इस आसन के अभ्यास से मूत्रकृच्छ, मधुप्रमह, मूत्राघात और बस्तिकुण्डल गेगों का निवारण होता हे।

8 स्त्रियों को रजोदर्शन के समय कन्दस्थान में होनेवाली वेदना इस आसन के अभ्यास से मिट जाती हे।

9 इस आसन से फेफडों के रोग दूर होते हें।

10 इससे जलोदर का रोग सदा क लिए मिट जाता है और भगदर की आरभिक स्थिति में हो तो इसका अच्छा पभाव पडता हे।
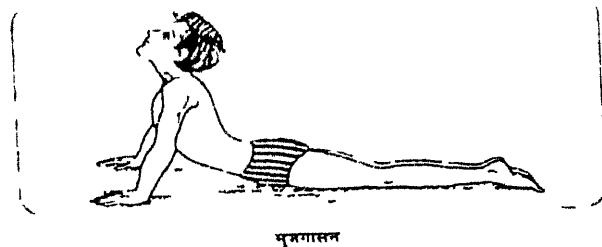
भुजगासन

3 भुजगासन

सस्कृत में सॉप को 'भुजग' कहा जाता ह। इस आसन में ऊपर की ओर उठे हुए सिर और नीचे स्थित घड से ऐसा लगता हे मानों सॉप फन फैलाकर बैठा हो। इसीलिए इसे 'भुजगासन' कहा जाता है।

पद्धति मुँह नीचे की ओर रखकर आधे लेट जाइए। शरीर के सभी स्नायुओं को शिथिल कर दीजिए। हथेलियों को कन्धों और कुहनियों के बीच के स्थान पर भूमि पर रखिए। नाभि से हाथ के पजों तक का शरीर का आगे का भाग धीमे-धीमे सॉप के फन की तरह ऊपर की ओर उठाइए। रीढ को पीछे की ओर मोडिए। पैरो की उँगलियों को पीछे की ओर इस प्रकार खिची हुई रखिए कि वे भूमि को छूती रहे। ऐसा करने से पीठ और कन्धे के बीच के भाग के स्नायु अच्छी तरह खिचे हुए रहेंगे। पेट पर दबाव भी पर्याप्त मात्रा म बढा हुआ लगेगा। साँस रोककर इस स्थिति में छह से आठ सेकण्ड तक स्थिर रहिए। इसक बोद सॉस छोडते हुए सिर का उसकी अपनी मूल स्थिति में ले जाइए। पहले जब आप नीचे लेटें तो दाढी को सीने

से सटाए रखिए। जब तक सिर ऊपर की ओर रहे तब तक साँस रोके रखिए। फिर धीरे-धीरे साँस बाहर छोडिए। चार से छह बार यह आसन किया जा सकता हे।

लाभ

1 यह आसन करने से पीठ का दर्द ओर अन्य रोग दूर होते हैं।

2 यह आसन पेट के अन्दरूनी अवयवों पर दबाव डालकर अवरूद्ध मल को बडत्री ऑत और गुदों की आर धकेलता हे। फलस्वरूप कब्ज की शिकायत दूर होती हे और शारीरिक ऊष्णता बढती हे।

3 यह आसन मुख्यत स्त्रियों क बीजाशय एव गर्भाशय को पुष्टि देने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता हे आर मासिक धर्म सम्बन्धी तकलीफें दूर करता हे। यह आसन करने से गर्भाशय में रक्त-परिभ्रमण पर्याप्त मात्रा में होता हे फलस्वरूप प्रसूति अत्यन्त प्राकृतिक रूप स आर सरलता से होती है।

4 यह आसन रीढ को योग्य व्यायाम देता हे, पट के भीतरी अवयवों को सक्रिय करता हे ओर पेट का दर्द दूर करता हे।

5 यह आसन सीना, कन्धा, गर्दन आर सिर के भागों का विकसित करता हे और शरीर को सुडोल बनाता ह।

धनुरासन

4. धनुरासन

इस आसन से शरीर का आकार मनुष्य के समान हो जाता है। एक-दूसरे को खींचते हुए पैर और हाथ प्रत्यचा (डोरी) बन जात है। इसलिए इसे 'धनुरासन' कहा जाता है। यह आसन रीढत्रे को पीछे की ओर मोडता है। यह आसन भुजगासन ओर शलभासन का सयुक्त रूप है। भुजगासन, शलभासन और धनुरासन मिलकर अत्यन्त मूल्यवान समिश्रण बनता है। आसनों की यह त्रिपुटी रीढ को आगे की ओर मोडने वाले हलास और पश्चिमोत्तानासन के विपरीत कार्य करती है।

पद्धति : भूमि की ओर मुँह करके आधे लेट जाइए। स्नायुओं को शिथिल कर दीजिए। दोनों हाथ बगल से सटाकर रखिए। पैरों को उठाकर पीछे की ओर मोडिए।

हाथ ऊपर उठाइए और टखनों को भली-भॉति पकडिए। सीना और सिर ऊपर की ओर उठाइए। सीना फुलाइए। हाथ सीध ओर कडे बनाइए। पेरों को भी कडा बनाइए। इस प्रकार एक बढिया बहिर्गोल कमान बनेगी। पेरों को ऊपर खींचेगे तो माना भी ऊपर उठा सकेंगे। पर्याप्त आसानी से मॉस राक रहिए। फिर धीमे-धीमे सॉस बाहर छोडिए। दोनों घुटनों के साथ-साथि रखिए।

इस आसान में सारा शरीर पेट क बल पर टिका रहता है। इसलिए खाली पेट ही यह आसन करें। धनुष्याकार शरीर को धीरे-धीर आगे पीछे और दाएँ-बाएँ हिलाकर व्यायाम दिया जा सकता है। जितने समय तक आराम से यह आसन कर सकें उतने समय तक ही करें। यह आसन पॉच-छह बार किया जा सकता है।

लाभ

1 इस आसन से पेट को अच्छी मालिश मिल सकती है। इसलिए दीर्घकालीन कब्ज, मन्दाग्नि और जठर के रोगों में यह अत्यन्त लाभप्रद है।

2 इस आसन से रीढ की कूबड ओर पैर, घुटने तथा हाथ का रह्युमेटिज्म दूर हो जाता हे।

3 यह आसन भेद कम करता हे, ऑतों को गति देकर पाचन-शक्ति बढाता है तो उदर-गुहा के प्रत्येक अवयव को रक्त पहुँचाकर उनका पोषण करता है।

4 गैस और ऑतों के मरीजो केलिए यह आसन आशीर्वाद स्वरूप है।

5 हलासन की तरह यह आसन रीढ को स्थितिस्थापक बनाता है, हड्डियों के अकाल वृद्धत्व को रोकता हे। यह आसन करने से स्वादुपिण्ड सक्रिय बनता है और उचित मात्रा में इन्स्यूलिन उत्पन्न होने लगता है।

6 जो व्यक्तिनियमित रूप से हलासन, मयूरासन और धनुरासन करता है वह कदापि आलसी नहीं बनता। वह व्यक्ति हमेशा फुर्तीला, कार्यशील औ शक्तिशाली रहता है।

7 स्त्रियों के लिए यह आसन बडा लाभप्रद हे, क्योंकि इससे मासिक धर्म की अनियमितत और प्रजननतत्र की तकलीफें दूर हो जाती है।

5 विपरीत मत्स्यासन
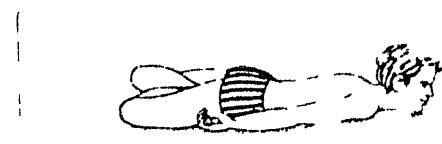
विपरीत मत्स्यासन

यह आसन मत्स्यासन की विपरीत दिशा में किया जाता है। इसलिए इसे 'विपरीत मत्स्यासन' कहा जाता है। इस आसन को 'सुप्त पदमासन' भी कहा जाता है।

पद्धति • बाई करवट लेट जाइए। दोनों पेरों को पदमासन की स्थिति में जमाइए। फिर इस ढग से आधे लेट जाइए कि सीना और पेट भूमि का स्पर्श करें। गर्दन को पीठ की ओर झुकाकर ठोडी को भूमि पर टिकाइए। दोनों हाथों की तर्जनियों और अँगूठों से पैरो के सम्बन्धित अँगूठे पकडिए। धीरे-धीर साँस लीजिए। आठ से दस सेकण्ड तक इस स्थिति में रहिए। फिर क्रमश आगे बढते हुए दस मिनट तक पहुँचा जा सकता है।

लाभ

1 इस आसन से सीना चोडा होता हे और फेफडे सशक्त बनते हें। साथ ही रीढ कोकम श्रम में अधिक लाभ मिलता हे।

2 यह आसन नियमित रूप से करन से गर्दन के जोड और शरीर के अन्य छोटे-बडे जोड और स्नायुओं को व्यायाम मिलता है।

3 मलावरोध, गैस, मदाग्नि, अजीर्ण, सर्दी वातविकार, क्षय, दमा, पेचिश, सग्रहणी आदि कई रोग इस आसन से निर्मूल हो जात हैं।

प्राणायाम

महर्षि पतज्जलि के अष्टाग योग मे प्राणायाम का क्रम चतुर्थ है। प्राणायाम से शरीर के श्वसन तत्र को बहुत लाभ होता है इसलिए बहुत से लोग इसे शरीर का अतिरिक्त आक्सीजन प्रदान करने वाला केवल फेफडों का व्यायाम समझते है। पर वास्तविकता यह है कि यह केवल श्वसन व्यायाम ही नहीं है, बल्कि सूक्ष्म रूप से श्वसन के माध्यम से प्राणमय कोश की नाडियों, नलिकाओं एव प्राण के प्रवाह पर प्रभाव डालता है। फलस्वरूप प्राणायाम अभ्यासी का अन्धकार का आवरण दूर होकर उसके मन की चचलता नष्ट होता है तथा मन पर भी उसका अधिकार हो जाता है। इस सबध में योगसूत्रकार कहते है कि श्वास -प्रश्वास की स्वाभाविक गति का विच्छिन होना 'प्राणायाम' है। प्राण-वायु का शरीर में प्रविष्ट होना 'श्वास' है तथा बाहन निकलना 'प्रश्वास' है। इस गमनागमन प्रक्रिया का बन्द हो जाना ही प्राणायाम है। योग साधना में इस क्रिया का विशेप महत्व है, शरीर में जितने भी मल एकत्र होते है, प्राणायाम के द्वारा सब भस्मीभूत हो जाते है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि प्राणायाम से बढकर कोई तप नहीं है, इससे सारे मल धुल जाते है एव ज्ञानरूपी दीपशिखा प्रदीप्त हो जाती है।[2]

मन पर नियन्त्रण करने के लिए शास्त्रकारों ने प्राणायाम साधना पर बहुत बल दिया है। प्राण और मन में परस्पर अभेद बताते हुए कहा है कि यदि प्राण पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सके तो मनो निग्रह जैसा कठिन कार्य भी सरल बन जायेगा। जिसने प्राणवायु को जीता, उसने मन जीत लिया, जिसने मन जीता उसने प्रााण जीत लिया। चित्त की चचलता के दो ही कारण हैं, एक वासना का दूसरा प्राणवायु का चचल होना। इनमें एक नष्ट हो जाने पर दोनों का नाश हो जाता है।[3] प्राणवायु चलायमान रहने से बिन्दु चलायमान रहता है। प्राण निश्चल हो जाने से वोर्य भी निश्चल हो जाता है। समर्थ स्थिरता प्राप्त करने के लिए प्राणागाम करना चाहिए ।[1] जिस प्रकार डेरी से बधा हुआ पक्षी घूम-घाम कर अपने मूल आश्रय पर ही आ जाता है, उसी तरह से सैम्य मन कहीं दूसरी जगह आश्रय न पाने पर घूम-घाम कर प्राण का आश्रय लेता है क्योंकि मन प्राण से ही बँधा हुआ है। विविध विचारों तर्को और अध्ययन, भ्रमण आदि से चित्त का समाधान नहीं होता है। मनो निग्रह तो प्राणायाम से ही सम्भव है।

---

1 [107]तस्मिन । सति श्वासप्रश्वासयोर्गविच्छेद प्राणायाम ''यागशास्त्र (2-49)

2 तपे न परम् प्राणायामात्, ततो विशुद्धिर्मलाना दीप्तिश्च ज्ञानस्य। व्यासभाष्य

3 हठ योग-प्रदीपिका 4/21

इन्द्रिय विकास अनियमित वासना प्रवाह का कारण शारीरिक नहीं मानसिक ही होता है। इन्द्रियों पर मन का नियन्त्रण होता है इसलिए मन विकास ग्रस्त होगा तो इन्द्रियों की चचलता भी बढेगी और वे कुप्रवृत्तियों की ओर अग्रसर होगी। यदि मन का नियन्त्रण स्थापित किया जा सके। तो वासना पर अकुश स्वयमेव लग जाता है। प्राणायाम से मनोनिग्रह से वासनाजन्य विकारों की रोकथाम सम्भव होती है। असयम के लिए उत्तेजित करने वाले विकृत मन को कुमार्ग त्यागने के लिए सहमत करना प्राणायाम की सुनियोजित साधना पद्धति अपनाने से सम्भव हो सकता है। इस सम्बन्ध में साधना विज्ञान का मन्तव्य इस प्रकार है कि प्राणायम की अग्नि पापरूपी ईधन को जलाकर नष्ट कर देती है और वह सेतु के समान ससार रूपी सागर से पार करने का मार्ग खोलता है।[2]

प्राचीन काल से प्रत्येक भारतीय इस जीवनदायिनी सुधामयी प्रक्रिया को प्रतिदिन सध्या समय विधिवत किया करते थे। किन्तु पाश्चात्य जगत की चकाचौध और विलासितापूर्ण दिनचर्या में उसने अपने इस अमृतमयी विद्या को भुला दिया है। वस्तुत प्राण हमारे शरीर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग है। इसी के आधार पर मन, बुद्धि , इन्द्रियों की क्रियाओं का सम्पादन होता है। अत प्राण ही जीवन है। प्राण के ही सयम से मनुष्य दीर्घायु एव अरोग्यता को प्राप्त कर सकता है। आचार्य शारगधर ने बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण करते हुए कहा हे कि नाभि स्थिति प्राणवायु हदय कमल का स्पर्श करते हुए कठ मार्ग से विष्णुपदामृत (शुद्ध वायु) का पान करने के लिए बाहर आती है तथा तीव्र वेग से अन्दर आती है, जिससे समग्र देह को प्रीडन (प्राण प्रदान) करती हुई जठराग्नि को पुष्ट करती है एव जीवन -दान देती है।[3]

प्राणायाम जानने से पूर्व 'प्राण' शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में जान लेना आवश्यक है। सस्कृत में 'प्राण' शब्द ही निष्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'ण्यन्त अन प्राणने' धातु से ड अथवा अच् प्रत्यय लगाकर मानी जाती है और यह वायु का वाचक माना गया है।

प्राण और जीवन प्राय एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते है। प्राण, शक्ति का मूल है। यह निर्जीव एव सजीव का भेद करता है। इसे जीवन का प्रतीक एव जीवनी शक्ति कह सकते है। वास्तव में प्राण, शक्ति का केवल एक रूपान्तर है। जिसको जीवात्मा अपने भौतिक विकास में धारण कर लेता है। जब तक जीवात्मा इसे अपने अधिकार में रखता है, शरीर सयोग बना रहता है और सब परिणाम जीवात्मा की

---

1 चले वाते चले बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवते्। योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायु निरोधयेत् ।।गो0 प0, 1/90

2 प्राणायामों भवदैव पातकेन्घन पावक । भवोदधिमहासेतु प्राच्यते योगिभि सदा ।। योग चूडामणि उ0प्र0(108/109)

3 विश्व गुरू कल्पतरू । पृ0 560

प्रेरणा से सगठित बने रहते है और जब जीवात्मा अपने वियोग समय में अपने अधिकार को त्यागता है तब प्राण उसी वृहद प्राणकोष में जा मिलता है, जहॉ से वह आया था अर्थात् प्राण आत्मा से उसी प्रकार से जुडा होता है जिस प्रकार मनुष्य के शरीर से उसकी परछाई।

शरीर में स्थिति प्राण रूपी शक्ति को सरलता से समझने के लिए इसे पॉच उप विभागों में बॉटा गया है -

1 प्राण-वायु

प्राण का क्षेत्र कण्ठ नली एव श्वास पटल है अर्थात् श्वसन् नली , वाणी सम्बन्धी अग, अन्न नलिका आदि से इसका सम्बन्ध है साथ ही इन्हें क्रियाशील बनाने वाली मॉस पेशियॉ इससे सम्बन्धित है। वास्तव में प्राण वह शक्ति है जिसके द्वारा श्वास नीचे की ओर खीची जाती है।

2 अपान-वायु

अपान का क्षेत्र नाभि प्रदेश के नीचे है। यह आत , गुदा द्वारा, गुर्दे एव जननेन्द्रिय को शक्ति देती है जिससे निष्कासन क्रिया सही रहे। यह शक्ति प्राण वायु को गुदा द्वारा तक खीचने का एव नासिका द्वारा गन्दी वायु के निष्कासन का भी कार्य करती है। स्त्रियों के शरीर में इसी वायु शक्ति के द्वारा प्रसव के समय शिशु बाहर निकलता है तथा मासिक धर्म के समय रज स्राव होता ह।

3 समान-वायु

समान का क्षेत्र छाती एव नाभि के मध्यवर्ती क्षेत्र से है। यह पाचन सस्थान, यकृत, छोटी आत, पैंक्रियाज एव जठर तथा उनके रस स्राव को प्रेरित तथा नियत्रित करता है। दिल तथा रक्त सचार सस्थान को भी क्रियाशील बनाता है। भोज्य पदार्थो में अनुकूलता लाता है। समान वायु का एक कार्य यह भी है कि वह प्राण वायु तथा अपान वायु को सन्तुलित अवस्था में बनाये रखती है।

4 उदान वायु

उदान वायु द्वारा कण्ठ नली के ऊपर के अगो का नियन्त्रण होता है। नेत्र, नासिका , कान, सम्पूर्ण शरीर की इन्द्रियॉ तथा मस्तिष्क इसी वायु के द्वारा कार्य करती है। इसकी अनुपस्थिति में अथवा असन्तुलन में सोचने-समझने की शक्ति नहीं रहती है साथ ही बाहा जगत के प्रति चेतना भी नष्ट हो जाती है।

5 व्यान-वायु

---

1 प्राणेउपान दानित्यानौ च वाय । अमरकोश 1-63/64

व्यान वायु का क्षेत्र सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। यह वायुओं के मध्य में सहयोग स्थापित करता है। समस्त शरीर की गतिविधियों को नियमित तथा नियन्त्रित करता है, सभी शारीरिक अगों तथा उनसे सम्बन्धित मास-पेशियों, तन्तुओं, नाडियों एव सन्धियों में समरूपता लाता है तथा उन्हें क्रियाशील बनाता है। शरीर को लम्बवत रखने में यही शक्ति उत्तरदायी है। इसीलिए कहा गया है कि हदय मं अवस्थिति वायु को 'प्राण वायु' कहा जाता है। नाभि प्रदेश में जो वायु घनीभूत रहता है, उसे 'समान वायु' कहते है। कण्ठ प्रदेश की वायु को 'उदान वायु ' कहा गया है तथा समस्त शरीर की प्रणालियों में जो वायु अपने रहस्मय कार्यो को नियमबद्ध रखता है उसे ' व्यान-वायु' कहते है।'

उपप्राण

हमारे योगियों ने शरीर में केवल प्राण शक्ति का वर्गीकरण ही नहीं बल्कि उनका उपर्गीकरण भी किया है। वे क्रमश नाग, कर्म, किकर, देवदत्त तथा धनजय है। छींकना, जमुहाई लेना, खुजलाना, पलक झपकाना,हिचकी लेना आदि इनके छोटे-छोटे कार्य है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि स्वथ्य, सबल एव दीर्घ जीवी बनने के लिए पॉचों वायु को सतुलित रखना जरूरी है क्योंकि इन वायुओं के असतुलित एव कुपित हो जाने से क्रमश मनुष्य का शरीर एव मन बीमार रहने लगता है। जो किसी औषधि से नहीं बल्कि पट्कर्म योगासन एव प्राणायाम के उचित एव नियमित अभ्यास से ही पुन ठीक हो पाता है।

प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ प्राण का आयाम करना है। आयाम का अर्थ विस्तृत होता है। अर्थात् जीवनी शक्ति का हमारे कोषों, में विस्तृत करना, फैलाना या वृद्धि करना है। ऐसी वृद्धि करने वाली विद्या को प्राणायाम कहते है। हठयोग आचार्य के मत से रेचक , पूरक और कुम्भक ये प्राणायाम के तीन भेद है।' किन्तु महर्षि पतज्जलि ने शून्यक नामक एक और भेद जोडते हुए इसे चतुर्विध प्रतिपादित किया है।[2]

1 रेचक अन्दर से बाहर वायु निकलने की किया को 'रेचक' कहते है।

2 पूरक बाहर से वायु अन्दर खींचने कि क्रिया को 'पूरक' कहते है।

---

1 प्रमाणायाम शरीस्य वयोस्तद्वन्निराधनम्।
आचार्याणा तु केषा चिद्रेचकपूरककुम्भकै ।। प्राणायाम की सही विधि पृ0 46
वाह्याभ्यन्तरस्तभ्य वृत्तिर्देशकालसख्याभि परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म। पातज्जलयो 2/50

1 हदि प्राणो गुदेऽपानं सगानोनाभिसस्थित ।
उदान कण्ठदेशे स्याद्, व्यान सर्वशरीरग ।। अमरकोष(1-63) पर रामाश्रयी टीका।

3 कुम्भक वायु अन्दर खींचने के बाद उसे रोक लेने की क्रिया को ' कुम्भक' कहते हैं।

4 शून्यक अन्दर से वायु बाहर निकालकर रोक लेने का 'शून्यक' कहते है। इसे 'केवल कुम्भक' भी कहा जाता है।

उपर्युक्त चारों प्राणायाम की साधना से (ज्ञान) प्रकाश को ढकने वाले अन्धकार (अज्ञान) का आवरण टूट जाता हे तथा प्राणायाम की सिद्धि से मन में धारणा करने की योग्यता आती है।

प्राणायााम के सम्बन्ध में कुछ भी जानने से पहले हमें श्वास के रहस्य को जान लेना परम आवश्यक है क्योंकि हमारा जीवन पूर्णतय श्वॉस पर अवलम्बित है।(श्वॉस ही) जीवन कहा भी जाता है। वैसे भी शरीर की समस्त क्रियाओं में श्वॉस क्रिया प्रधान है क्योंकि भोजन के बिना मनुष्य कुछ समय तक जीवित रह सकता है। परन्तु बिना श्वॉस क्रिया के हमारा जीवन कुछ क्षण चलना भी असभव है।

हमें स्वस्थ और दीर्घ जीवन के लिए श्वॉस प्रश्वॉस का सही तरीका जानना चाहिए क्योंकि अनियमित , उल्टा अथवा अधूरा श्वॉस लेने से फेफडों की शक्ति शीघ्र ही क्षीण होकर नष्ट हो जाती है। फलस्वरूप शरीर में प्राण शक्ति के अभाव में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते है जैसे -सर्दी , जुकाम, खासी , दमा इत्यादि। अर्थात् अपूर्ण एव जल्दी-जल्दी श्वास लेने से मनुष्य सदैव बीमार रहता है। आधुनिक श्वॉस विज्ञान ने भी इस बात की पुष्टि कर दी है कि मनुष्य प्राणायाम द्वारा प्राण का निरोध करके अपनी आयु को दुगनी, तिगुनी एव चौगुनी तक कर सकता है।

श्वॉस सदैव नाक से लेना चाहिए। यदि मुँह से श्वास लेने की आदत पड गई हो तो उस आदत को छोडने का प्रयत्न करना चाहिए। मुँह केवल बोलने एव भोजन करने के लिए है। मुँह से श्वास लेने से अनेको सक्रामक बीमारियॉ हो जाती है जुकाम और सर्दी का प्राय यही कारण है क्योंकि श्वॉस लेने वाले अग नाक में ही प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था की है कि -

1 शरीर तापक्रम से कम या अधिक वायु को शरीर के तापक्रम अनुसार बनाकर अन्दर जाने दें।

2 वायु के साथ आ रहे धूलि-कणों को नाक में ही रोक ले।

3 वातावरण के रोग उत्पादक कीटाणुओं को नष्ट कर दे। चूँकि मुँह में ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं है, इसलिए ठडी या गरम वायु, धुलि के कण एव कीटाणु मुँह द्वारा

फेफडों में पहुँच जाते है। अतएव जिन लोगो को मुँह से श्वॉस लेने का अभ्यास हो गया है उन्हें चाहिए कि नाक द्वारा श्वॉस लेने का अभ्यास करें।

किसी-किसी को ऐसा अनुभव होता है कि श्वास अन्दर लेते हैं तो पेट अन्दर जाता है एव जब श्वाास बाहर फेंकते है तो पेट बाहर आता है। एसे लोग सदैव बीमार रहते है क्योंकि उनकी श्वॉस क्रिया ही उल्टी है। अत यह ध्यान रखना चाहिए । कि जब श्वॉस अन्दर आये तो पेट बाहर की ओर जाये तथा श्वॉस जब बाहर जाय तो पेट अन्दर की ओर जाये। यही श्वॉस लेने का सही तरीका है। अपूर्ण या अधूरा श्वॉस लेने से हमारे शरीर एव मस्तिष्क में पोषण की कमी हो जाती है। फेफडों के निम्न प्रदेश में अधिक समय तक गन्दी श्वास एकत्रित रह जाती है। वर्तमान में अनेक बीमारियों जैसे क्षयरोग आदि का एक यह भी कारण है। चुस्त कपडे विशेषकर स्त्रियों की चोलिया आदि दीर्घ श्वास क्रिया में बाधक है क्योंकि श्वॉस के बिना दीर्घ एव स्वस्थ जीवन नहीं प्राप्त कर सकते है।

सही श्वास लेने का तरीका यह हे कि बैठकर यह चित्त लेटकर एक हाथ को नाभि पर रखकर उदर द्वारा श्वसन स्वय करना चाहिए। अब दीर्घपूरक करना चाहिए। देखेगें कि पूरक के साथ उदर फूल जाता है। तथा हाथ ऊपर आता है । जितना पेट फूलेगा उतना ही अधिक श्वास का प्रवेश फेफडों में होगा। अब दीर्घ रेचक करें तो देखेंगे कि दीर्घ रेचक के साथ पेट अन्दर की ओर जा रहा है।पेट जितना अन्दर जाएगा उतना ही फेफडों से अधिकतम मात्रा में वायु का निष्कासन होगा। यह ध्यान रखना चाहिए । कि अभ्यास करते समय छाती और कन्धों में कोई हलचल नहीं होनी चाहिए।

छाती द्वारा श्वसन करने के लिए बैठ जायें या चित्त लेट जाए। अब छाती आर पसलियों का विस्तार करते हुए पूरक कीजिए। हम अनुभव करते है कि इस क्रिया से पसिलियॉ ऊपर बाहर की ओर उठ जाती है। अब रेचक करना चाहिए। इस क्रिया से पसलियो में उतार आ जाता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि छाती द्वारा श्वमन काल में पेट-प्रदेश में गति न होने दें।

उदर द्वारा श्वसन एव छाती द्वारा श्वसन दोनों ही के योग से फेफडों में पूरक द्वारा अधिकतम मात्रा में वायु का प्रवेश कराना रेचक द्वारा अधिकतम वायु का निष्कासन ही पूर्ण या यौगिक श्वसन कहलाता है। इस प्रकार की श्वसन क्रिया ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी हे। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को इसी विधि से श्वास प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए।

पहले उदर फिर छाती कर धीरे-धीरे विस्तार करते हुए फेफडों में अधिक से अधिक वायु का प्रवेश करना चाहिए जितना सम्भव हो सकें। फिर क्रमश

पहले छाती फिर उदर को शिथिल करते हुए रेचक करना चाहिए। अन्त में उदर के स्नायुओं के सकोचन पर बल डालना चाहिए ताकि फेफडों से अधिक से अधिक वायु का निष्कासन हो सके। यह ध्यान रखना चाहिए कि उदर से छाती, छाती से उदर तक गति तरग की भाति हो, झटके से नहीं।
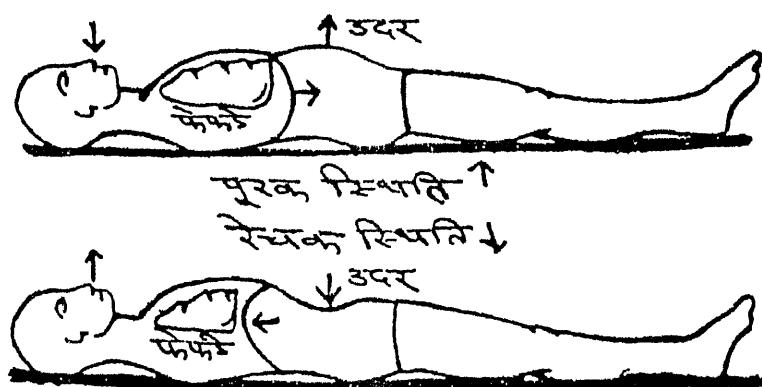
इस प्रकार क श्वसन से निम्नलिखित लाभ होते है -

1 यौगिक श्वसन के अभ्यास से कभी थकान का अनुभव नहीं होगा।

2 चिन्तन शक्ति का विकास होगा।

3 समान्यत चिन्ता, भय, तनाव एव निराशा का प्रभाव नहीं पडेगा।

4 सर्दी , जुकाम, खासी, टी0 वी0 दमा, प्ल्यूरसी आदि कष्ट नहीं होते है।

5 पाचन प्रणाली एव निष्कासन तन्त्र ठीक रहता है।

6 जीवन दीर्घ एव स्वस्थ रहता है।

प्राणायाम के अभ्यास में स्थान का विशेष महतव है। वैसे तो नदी के किनारे, पहाड़ों की तलहटी व गुफाओं, वृक्षो से हरे-भरे जगल अथवा स्वच्छ जलाशयों के पास ध्यानासन में बैठकर प्राणायाम श्रेयस्कर है। जहाँ पर ऐसी सुविधाए न हों वहा अपने खेतों व बगीचों में जाकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए तथा शहर के लोगों को अपने निकट किसी साफ-सुथरे व हरे-भरे पाक्र या उद्यान में करना चाहिए। जिन लोगों के पास किसी परिस्थिति के कारण पाक्र में जाकर अभ्यास करने का समय नहीं है , उन्हें अपने घर के स्वच्छ, शान्त ऑगन या एकान्त कमरे में जिसकी खिडकियॉ खुली हों, वहाँ प्राणायाम करना चाहिए।

प्राणायाम के स्थान की वायु में गर्मी नहीं होना चाहिए। धूलि, धुँआ तथा मच्छर भी नहीं होना चाहिए । इसीलिए प्रात चार से आठ बजे तथा साय छ से आठ बजे तक की वायु प्राणायाम के लिए सर्वोत्तम मानी गई है। प्राणायाम करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वायु सामने से न आकर पीछे से

आती हो या दायें अथवा बायें से आती हो प्रात पूरब की ओर मुँह करके व शाम को पश्चिम दिशा की ओर मुँह करके प्राणायाम करना श्रेयस्कर हैं उत्तर दिशा की ओर प्रात एव शाम देनो समय कर सकते है, लेकिन हवा का झोंका सामने से न आ रहा हो। दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके प्राणायाम करना शास्त्रों में वर्जित है। यदि वायु सुगन्धयुक्त, रोगनाशक, बलवर्धक , पुष्टिकारक हो तो अति उत्तम होता है। दुर्गन्ध युक्त पेट्रोल, डीजल, सिगरेट बीडी के धुँए से युक्त वायु हानिकारक है। हवन करके प्राणायाम करना सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि हवन करने से जो परमाणु वायु में मिल जाते है प्राणायाम द्वारा शरीर में पहुँचकर शरीर के लिए विशेष लाभदायक है। चूँकि प्राणायाम के लिए ऐसा स्थान जरूरी है, जहाँ पर सूरज की किरणें दिन में पहुँचती हो और यदि किसी कारण से उस स्थान पर न पहुँचती हो तो हवन के द्वारा वायु शुद्ध करके प्राणायाम किया जा सकता है।

प्राणायाम अभ्यास के समय आँखे बन्द रखनी चाहिए। मन को श्वास के अन्दर जाने तथा बाहर आने की प्रक्रिया को देखने में लगा रहना चाहिए। मानसिक चिन्तन यह करना चाहिए , जब श्वास अन्दर जाए तो ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियाँ अन्दर जा रही है। ऐसा अनुभव करते हुए , और जब श्वास बाहर निकल रही हो तब चिन्तन करें कि मै स्वस्थ हो रहा हूँ। आँख खुली रहने से मन एकाग्र नहीं रहेगा, आँो दर्द करेंगी, मच्छर व धूल आँख में पड सकते है। प्रश्वास के समय निकलने वाली गरम वायु आँख में पहुँचकर रोग पैदा कर सकती है।

प्राणायाम करने के लिए स्वर विज्ञान की जानकारी भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वर विद्या भारत की अति प्राचीन और मूर्धन्य विद्या है। इस विद्या के द्वारा योगी लोग त्रिकाल दर्शी बन जाते थे। आज से सौ वर्ष पूर्व इस विद्या के पर्याप्त ज्ञाता स्थान-स्थान पर मिल जाते थे किन्तु आधुनिक काल में यह रहस्यमयी विद्या एक कल्पना मात्र बनकर रह गयी। इस विद्या के माध्यम से प्राचीन समय में लोग अपने सासारिक कार्यो के शुभारम्भ का मुहूर्त निकालते थे। योगियों का यह दावा था कि स्वर विज्ञान के माध्यम से निकाले मुहूर्त कभी असफल व अनिष्टकारी नहीं हो सकते, ज्योतिष के द्वारा निकाले मुहूर्त से गलती हो सकती है।

नासिका द्वारा श्वास के अन्दर जाने और बाहर आने के समय अव्यक्त ध्वनि होती है उसी के स्वर कहते है। दाहिनी नासिका से निकलने वाले अव्यक्त स्वर का सूर्य स्वर और बॉयी नासिका से निकलने वाले को चन्द्र स्वर कहते है।

जब सूर्य स्वर चल रहा हो तो उस समय शरीर की शक्तियॉ दिन के समान जागृत रहती है और जब चन्द्र स्वर चलता है उस समय शारीरिक शक्तिया सुसुप्त अवस्था मे विश्राम कर रही होती है।

दिन और रात में मनुष्य का 21600 बार स्वाभाविक श्वास अन्दर जाता और बाहर आता है अर्थात एक घण्टे में 900 या एक मिनट में 15 बार श्वास का गमनागमन होता है। योग की मान्यता के अनुसार जीवों की आयु का परिणाम श्वास के गमनागमन की सख्या ही है। इस तरह आयु का घटाना या बढाना मनुष्य के स्वय की ऊपर निर्भर है। जीवन के इस रहस्य से अपरिचित व्यक्ति अनियत्रित अथवा श्वास को जल्दी-जल्दी लेकर अपनी आयु को घटा लेता है। योगी लोग प्राणायाम द्वारा श्वास को नियत्रित करके न केवल मन को वश में कर लेते है, बल्कि श्वास का गमनागमन घटा कर उम्र को कई गुना बढा लेते है। सामान्यत चौबीस घण्टे में कम से कम स्वर का परिवर्तन पॉंच बार होता है। दुर्बल और रोगी स्त्री, पुरूषों में स्वर की सख्या और भी बढ जाती है। बार-बार भोजन अथवा जलपान आदि करने से भी स्वर मे परिवर्तन की सख्या बढ जाती है। इससे हानि होती है।

स्वर का ज्ञान न होने की दशा में शरीर में अनेकों कठिन रोग उत्पन्न हो जाते है। और असमय मृत्यु का शिकार हो जाना पडता है। यही नहीं सन्तान का न होना अथवा बुद्धिहीन सन्तान होना, आकस्मिक विपत्तियों का आ जाना, काम में असफल होना आदि का यह भी एक कारण है। इस प्रकार ऐसे लाग बेकार में ही भाग्य को दोष देते है। वास्तव में स्वर विज्ञान के द्वारा मनुष्य दीर्घायु हो सकता है।प्रत्येक काम में सफल हो सकता है। मन चाही सन्तान प्राप्त कर सकता है।

जिस समय सूर्य स्वर चलता है, उस समय किये हुए भोजन का पाचन एव जिस समय चन्द्र स्वर चलता है उस समय युक्त अन्न के साराश से शरीर का सगठन होता है। इस प्रकार सूर्य स्वर से सृष्टि का कार्य और चन्द्र स्वर से लय का कार्य होता है। हमारा कौन सा स्वर चल रहा है। यह जानने के लिए किसी ॲंगुली से एक नथुने को बन्द करके दूसरे से श्वास जल्दा-जल्दी लीजिए और छोडिए। जिस नथुने से श्वास सरलता से बाहर और भीतर आये जाये समझिए वही स्वर चल रहा है। यदि दोनो नथुनों से श्वास सरलता से बाहर और भीतर आये जाये तो समझ लेना चाहिए कि दोनो स्वर बराबर चल रहे है।

प्रत्येक स्वर को बारह घण्टे तक स्थायी रखने का नाम स्वर साधना है। स्वर साधक को सूर्योदय से सूर्यास्त तक चन्द्र स्वर चलाये रखना चाहिए और रात्रि में सूर्य स्वर।

सूर्य स्वर चल रहा हो और चन्द्र स्वर चलाने की आवश्यकता हो अथवा चन्द्र स्वर चल रहा हो और सूर्य स्वर चलाने की जरूरत हो तो निम्न प्रकार से स्वर बदलना चाहिए।

1. सूर्य स्वर या दायां स्वर चलाना हो तो बायीं करवट लेटकर, सिर को थोड़ा ऊँचा करके बायीं हथेली पर दस-पन्द्रह मिनट रखिये, स्वर बदल जायेगा। इसी प्रकार चन्द्र स्वर चलाना हो तो दाहिनी करवट लेटकर ऐसे ही करें।

2.बैठकर या खड़े होकर स्वर बदलना पड़े तो जो स्वर चलाना हो उसके विपरीत हाथ के बगल में धोती या पल्ला या अगौछे की तीन चार पर्त लपेट कर गेंद की तरह बनाकर दबा लें। दस-पन्द्रह मिनट में स्वर बदल जाएगा।

3.स्वर बदलने के लिए जो स्वर चल रहा हो उसी नासिका में रूई की ठोस गोली बनाकर लगाएं। दस-पन्द्रह मिनट मे स्वर बदल जाएगा।

स्वर साधना करने से जो लाभ हैं उनमें से कुछ इस प्रकार है :-

1. जैसे धूप की गर्मी से शान्ति पाने के लिए दस-पन्द्रह मिनट तक दाहिने करवट लेटकर बायां स्वर चला लेने से गर्मी दूर हो जाती है।
2. जो दिन में बायी नासिका से और रात में दाहिनी नासिका से श्वांस लेता है उसके शरीर में कोई पीड़ा नही होने पाती और वह दीर्घ जीवी होता है।
3. बुखार में दायें करवट लेटकर अथवा रूई की गोली से चन्द्र स्वर चलाएं और तब तक चलायें जब तक बुखार ठीक न हो जाय।
4. जब दमें का दौरा शुरू होने लगे और श्वांस फूल रहा हो तो जो स्वर चल रहा हो वह एक दम बन्द कर दें। ऐसा करने से दौरा निश्चित कम हो जायेगा।
5. जिन्हें सदैव जुकाम रहता हो वे लोग नेति और सूर्य भेदी प्राणायाम के साथ यदि रात को सूर्य स्वर चलायें तो बहुत जल्दी लाभ होता है।
6. द्रव पदार्थ जैसे दूध, लस्सी, फल रस आदि चन्द्र स्वर में पीने से इनकी पूरी , ऊर्जा शरीर को मिलती है।

प्राचीन योग मनीषियों ने आठ प्रकार के प्राणायाम की बात कही है-वे हैं

'' 1. सहित , 2 सूर्य भेदी , 3 उज्जायी, 4 शीतली भस्त्रिका ,6 भ्रामरी, 7. मूर्छा और 8. केवली ''

परन्तु आधुनिक योग के आचार्यो ने योग शास्त्रों के अध्ययन-मनन के बाद साधना एवं रोग निवारण के अनुसार बाहर प्रकार के प्राणायाम की बात कही है। वेइस प्रकार है। 1. अनुलोम विलोग प्राणायाम 2. सर्वांग प्राणायाम 3.

सूर्यभेदी प्राणायाम 4 चन्द्र भेदी प्राणायाम 5 भस्त्रिका प्राणायाम 6 उज्जायी प्राणायाम 7 भ्रमरी प्राणायाम 8 सीत्कारी प्राणायाम 9 शीतली प्राणायाम 10 मूर्छा प्राणायाम 11 प्लावती प्राणायाम 12 केवली प्राणायाम और[113] मै अन्त में 13वें प्राणायाम के रूप में गहरी श्वास-प्राणायाम को जोडता हूँ क्योंकि कोई भी प्राणायाम करने से पहले यह आवश्यक होगा कि हम गहरी श्वास-प्राणायाम के द्वारा फेफडों के अन्दर की गन्दी वायु बाहर निकाल दे। तभी किसी भी प्राणायाम का अभ्यास लाभप्रद होगा।

उपर्युक्त बारहों प्राणायाम के सम्बन्ध में मेरा मत भिन्न है। मेरे मत में प्राणायाम का क्रम ऐसा होना चाहिए जिसे कि कोई भी व्यक्ति कर सके और सभी के हित के लिए वह क्रम लाभदायक हो। अत मेरे विचार से सबसे पहले गहरी श्वास प्राणायाम करना चाहिए फिर कपालभाति प्राणायाम करना चाहिए उसके बाद भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिए। ये तीनों प्राणायाम करने से नासिका से लेकर फेफडो तक की गन्दी वायु और गन्दगी निकल जाती है। उसके बाद भ्रामरी प्राणायाम और गुञ्जायी प्राणायाम करना चाहिए। उसके बाद शैष प्राणायाम आवश्यकतानुसार करना चाहिए। अत इसी क्रम में आगे प्राणायामों के प्रकारों एव उनके करने की विधियों तथा लाभों का उल्लेख किया गया है।

अब इस प्रकार प्राणायाम का क्रम निम्न प्रकार है -

1 गहरी श्वास-प्राणायाम
2 कपाल भाति प्राणायाम
3 भस्त्रिका प्राणायाम
4 भ्रामरी प्राणायाम
5 गुञ्जायी प्राणायाम
6 अनुलोम-विलोम प्राणायाम
7 सर्वांग प्राणायाम
8 केवली प्राणायाम
9 सूर्यभेदी प्राणायाम
10 चन्द्र भेदी प्राणायाम
11 सीत्कारी प्राणायाम
12 शीतली प्राणायाम
13 मूर्छा प्राणायाम

सहित सूर्य भेदश्च उज्जायी शीतली तथा ।।

1 भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्ट कुम्भका ।। विश्वगुरू कल्पतरू पृ0 563

14 प्लावनी प्राणायाम

15 उज्जायी प्राणायाम

1 गहरी श्वास प्राणायाम

सर्व प्रथम नाभि के पोछे का भाग सीधा करके किसी भी ध्यानात्मक आसन अर्थात् सुखायन या पद्मासन या वज्रासन आदि में सुविधानुसर बैठ जायें। फिर से दोनों नासिकाओं से गहरी श्वास भरें।श्वास जब अन्दर जाये तो पेट बाहर की ओर आये और और श्वास जब बाहर आये तो पेट अन्दर की ओर जाये। यह क्रम कम से कम 10 बार को। जब श्वास अन्दर जाये और बाहर आये तो यह मानसिक अवधारणा होनी चाहिए कि मेरे अन्दर प्राण वायु का सचार हो रहा है और मेरी स्वास्थ्य दायिनी अखण्ड शक्ति बढ रही है और जब श्वास बाहर जाये तो यह सोंचना चाहिए कि मेरे अन्दर के समस्तं विकार शरीर से बाहर निकल रहे है और मै रोग मुक्त हो रहा हूँ। फिर उसके बाद बायी नासिका को बन्द करके केवल दायी नासिका से ही 10 बार श्वास प्रश्वास लें तथा फिर दायी नासिका को बन्द करके बायी नासिका से 10 बार श्वास प्रश्वास करे । ऐसा करने से अन्दर की गन्दी वायु शरीर से बाहर निकल जाती है और शरीर में ऊर्जा का सचार होने लगता है।

1 कपाल भाति प्राणायाम

कपाल भाति रेचक अवस्था में

किसी भी सुखासन में बैठकर नाभि के पीछे का भाग सीधे करके पहले दायी नासिका से श्वास ले और बायी नासिका से निंकालें यह क्रम 10 बार लगातार करें। श्वास जब अन्दर जायें तो पेट बाहर की ओर आये और श्वास जब बाहर आये तो पेट अन्दर की ओर जाये। श्वा बहुत तेजी से लेना चाहिए और तेजी से निकालना चाहिए। इसके बाद यही क्रिया बायी नासिका से श्वास

कपाल भाति, पूरक अवस्था में

लेकर दायी नासिका से श्वास बाहर निकाले तेजी के साथ। बाद में दोनों नासिकाओं से 10 बार तेजी से श्वास ले और बाहर निकालें। इस क्रिया को करने से मस्तिष्क एकदम साफ हो जाता है। स्मरण शक्ति बढती है और ऑखों की रोशनी बढती है। एक बात और ध्यान रखनी चाहिए कि प्राणायाम करने से पहले जलनेति रबर नेति करके नाक को ठीक से साफ करके तब प्राणायाम करना चाहिए जिससे कि अन्दर की समस्त गन्दगी बाहर निकल जाय।

3 भस्त्रिका प्राणायाम

लोहार की धौंकनी जिस प्रकार से वेगपूर्वक वायु को अन्दर बाहर करती है। उसी प्रकार इस प्राणायाम में, बिना बन्ध, बिना कुम्भक के जल्दी पूरक व रेचक करते है।

क प्राणायाम की स्थिति में बैठ जाइये और हाथों के सामने की ओर सीधा कर लें। तत्पश्चात् गहरी श्वास भरें और हाथों की मुठ्ठी बाधते हुए हाथों को अन्दर की तरफ पूरी ताकत से बाहर निकाले। यह क्रम तेजी से लयबद्ध होकर 10 बार करें।

ख हाथों को ऊपर की ओर सीधा करें और गहरा पूरक करें तथा हाथों की मुठ्ठी बन्द करके हाथों को वापस कन्धे तक लायें तथा तेजी से रेचक करें। यह क्रिया भी लगभग 10 बार करें।

ग अब हाथो को कन्धे की सीध में 180 डिग्री में सीधा करें और गहरा पूरक करें तथा हाथों की मुठठी को बन्द करके हाथ वापस लायें और तेजी से रेचक करें। यह क्रम भी लयबद्ध होकर कम से कम 10 बार करें। प्रारम्भ में 10 बार करें बाद में धीरे-धीरे पचास-पचास बार तक बढाया जा सकता है।

लाभ जैसे लोहार की धौकनी से सारी गन्दगी जल जाती है उसी प्रकार भस्त्रिका प्राणायाम से शरीर के सम्पूर्ण विकार जल जाते है। कफ विकार जल जाते है। कफ विकार वालों के लिए यह प्राणायाम विशेष लाभदायक है।

महत्वपूर्ण तथ्य

1 उच्च रक्त चाप, चक्कर या दिल की किसी बीमारी में भस्त्रिका प्राणायाम पूर्णत वर्जित है।
2 भस्त्रिका प्राणायाम करने से पहले जलनेति, रबर नेति, तेल नेति अवश्य कर लेना चाहिए।

3 बल पूर्वक रेचक न करें अन्यथा फेफडों में थकान हो जाती है। हदय शून्य रहने लगता है।

4 भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी का अर्थ भौरा होता हे, भौरे के उडने में जिस प्रकार शब्द होता है, उसी तरह प्राणायाम में शब्द होता जाता है। इसलिए इसका नाम भ्रामरी प्राणायाम है।

विधि किसी भी ध्यानात्मक आसन में नाभि के पीछे का भाग सीधा करके बैठ जाइये। दोनों आँखें बन्द कर लें। अब दोनो नासिकाओं के साथ गहरा पूरक ओठ लगभग चिपकाकर तत्पश्चात भोरें की तरह अखण्ड गुञ्जार करते हुए लगातार लम्बा रेचक करें तथा ध्वनि करते समय मस्तिष्क में इसी प्रकार ध्वनि तरगो का अनुभव करना चाहिए । इसे कम से कम पाच बार और अधिक से अधिक बढते-बढते पन्द्रह तक ले जायें।

लाभ योगासाधक यदि क्रमश षटकर्म द्वारा शरीर शोधन करके योगासन व नाडी शोधन प्राणायाम करने के बाद इस प्राणायाम में बराबर शब्द सुनने का अभ्यास करे तो उसे कुछ दिनों में पहले झांगुर , फिर भौरा, फिर पक्षियों के चहचहाने जैसे शब्द सुनायी देने लगते हे। फिर क्रमश घुघरू, शख , घण्टा , ताल भेदी, मृदग नगाडे के सदृश शब्द सुनायी देते है और फिर इस प्रकार उन शब्दों को सुनते हुए 'ॐ' शब्द का श्रवण होने लगता है। यही नाद योग सिद्धि है जिसमें साधक सदैव परमानन्द में रहता है।रक्त चाप में सुधार होता हे, मानसिक तनाव, चिन्ता, क्रोध निराशा में कमी आती है, श्वास व गले के रोग में

कमी करने वाले को कभी पक्षाघात का रोग नहीं होता है और अगर हो गया है तो इसके करने से बहुत लाभ होता है।

5 गुञ्जायी प्राणायाम.

सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन में नाभि के पीछे का भाग सीधा करके बैठ जाइये। दोनों हाथों की तर्जनी अगुलियों से दोनों कानों के छिद्रों को अच्छी प्रकार से बन्द कर दे। अब गहरा पूरक करें तथा हल्का कुम्भक करें। तत्पश्चात् अँग्रेज के 'ओ' की आकृति के सदृश मुँह को बनावे और 'ओ' की आवाज नाभि स्थान से निकालते हुए कण्ठ स्थान से होते हुए गुञ्जायमान करते हुए जितना तेज सम्भव हो सके आवाज निकालते हुए ओठ बन्द करे। जब आवाज निकल रही हो तो मानसिक धारणा यह होनी चाहिए कि मेरे अन्दर के समम्त विकार मेरे मुँह से बाहर निकल रहे है। इस प्राणायाम को करने से गले सम्बन्धी रोग , थायराइड ग्रन्थि से होने वाले रोग और मोटापा को कम करने में विशेष लाभ होता है।

6 उज्जायी प्राणायाम

उज्जायी प्राणायाम

ऊपर अकित चित्र के अनुसार बेठ जाइये। मुख को थोडा सा नीचे कण्ठ की ओर झुकाकर दोनों नथुनों से पूरक कर, पूरक करते समय श्वास क्रिया गहरी, धीमी तथा श्वास में छोटे बच्चो के कोमल खर्राटे की भाति आवाज आनी चाहिए ।

इस समय ऐसा लगना चाहिए कि श्वास क्रिया नाक से नही बल्कि गले से हो रही है कुछ देर कुम्भक करने के बाद बायें नथुने से इसी प्रकार कण्ठ से हल्की आवास करते हुए रेचक करें। यह एक बार प्राणायाम हुआ। प्रारम्भ में पॉच बार करना चाहिए। धीरे-धीरे इसका अभ्यास एक घण्टे तक करना चाहिए। लेकिन लम्बे अभ्यास में कुम्भक नहीं करना चाहिए।

लाभ

1 अनिद्रा के रोगी यदि इसका अभ्यास शवासन में बिना कुम्भक के करें तो उन्हें नींद अच्छी आती है।

2 उच्च रक्त चाप के रोगी भी कष्ट के समय , अनिद्रा के रोगी की भाति , इसे करें तो रक्त चाप में कमी होती है।

3 दमा के रोगी भी शक्ति भर थोडा कुम्भक इस क्रिया से विशेष लाभ प्राप्त कर सकते है।

7 अनुलोम-विलोम प्राणायाम

अनुलोम-विलोम प्राणायाम अर्थात् उल्टा और सीधा प्राणायाम को नाडी शोधक प्राणायाम कहते है। सबसे महत्वपूर्ण यही प्राणायाम है क्योंकि इस प्राणायाम के विधिवत् अभ्यास से समस्त नाडियों से प्राणवायु का सचार बिना किसी बाधा के होने लगता है। इस प्राणायाम को करने से पहले गहरी श्वास प्राणायाम , भस्त्रिका , कपाल भाति, भ्रामरी , गुज्जायी आदि प्राणायाम करके ही इसे करने में वास्तविक और ज्यादा लाभ होता है यह मेरी व्यक्तिगत धारणा है क्योंकि उपरोक्त प्राणायामों के द्वारा पहले शरीर के अन्दर की समस्त गन्दी वायु एव गन्दगी निकल जाती है। ऐसा न करने से वही गन्दगी हमारे रकत में आक्सीजन के द्वारा मिल जायेगी और फायदे की जगह नुकसान होगा। यही कारण हे कि प्राणायाम के क्रम में इस प्राणायाम की उच्च अवस्था के अभ्यास के पूर्व योगाभ्यासी के लिए निम्न अवस्थाओं का क्रम से अभ्यास जरूरी है।

प्रथम अवस्था - प्राणायाम की स्थिति अर्थात पद्मासन , सिद्धासन स्वास्तिकासन अथवा किसी भी सुखासन में (केवल महत्वपूर्ण बात यह है कि नाभि के पीछे का भाग सीधा रहे) बैठकर बायें हाथ से घुटनों पर रखे। दाहिने हाथ के अँगूठे से दायी नाक को बन्द कर ल। तर्जनी अँगुली को निम्न चित्रानुसार भ्रू-मध्य अर्थात् दोनों भौहों के बीच रखें।

मध्य और उसके बगल वाली अनामिका अँगुलियों का आपस में चिपका लें जिसका उपयोग बायी नाक के छिद्र को बन्द करने में करेगें। अब बायी नासिका से पूरक करें। पूरक के तत्काल बाद उसी से रेचक करें। पूरक और रेचक दोनों में सास की गति बराबर रहेगी।कम से कम पॉच बार पूरक व पाच बार रेचक करें। अब बायी नासिका , बन्द कर दें। दाहिनी को खोल दें। पहले की तरह दाहिनी नासिका से पूरक एव रैचकसमान गति से पॉच-पाँच बार करें। यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि श्वास प्रश्वास की क्रिया बलपूर्वकन करें तथा साथ ही पूरक एव रेचक के समय किसी प्रकार की श्वास ध्वनि न होने दें।[1]

द्वितीय अवस्था इस अवस्था में दाहिने छिद्र को बन्द करके बायें से पूरक करें फिर बायें छिद्र को बन्द करके बायें से रेचक करें अर्थात पूरक बायें से और रेचक दायें से इस प्रकार इस क्रिया को पॉच बार दोहरायें। इसके बाद बायें छिद्र को बन्द करके दाहिने से पूरक व बायें से रोचक करें अर्थात् पूरक दायें से व रेचक बायें से रोचक करें अर्थात पूरक दायें से व रेचक बायें से इसे भी पॉच बार दोहरायें।

तृतीय अवस्था प्रथम अवस्था की भाति दायें अँगूठे से नाक के दाये छिद्र को बन्द करके और बायें छिद्र से पूरक करें। अब बाये छिद्र को बन्द करके दायें से रेचक करें। दायें से रेचक करने के बाद इसी तरफ से छिद्र से फिर पूरक करें और बायें से रेचक करें। यह एक बार हुआ अर्थात् जिस नाम से श्वास भरें, उससे श्वास न निकालकर दूसरी तरफ से निकाले। अब जिस छिद्र से निकालें उसी से फिर भरकर दूसरी आर से बाहर निकलें। इसी प्रकार इसे पॉच बार दोहरायें।

प्राणायम की स्थिति में पूरक एव रेचक की लम्बाई की गणना बाये हाथ की अँगुली के पोरों से करना चाहिए। जैसे चार की गिनती में पूरक तो चार की गिनती में ही रेचक अर्थात् पूरक और रेचक का अनुपात 1 1 का होगा। कुछ दिनों के पश्चात् पूरक एव रेचक की अवधि बढा सकते हे। उदाहरण के लिए पॉच की गिनती में रेचक 1 लेकिन अनुपात वहीं 1 1 का रहेगा। गिनती बढाने के लिए गणना की चाल से जल्दी नहीं करता। अच्छी प्रकार से अभ्यास हो जाने के बाद चौथी अवस्था का अभ्यास करें।

चतुर्थ अवस्था नाडी शोधक प्राणायाम की चौथी अवस्था में पूरक और रेचक का अनुपात 1 2 का रखा जाता है अर्थात् चार की गिनती में श्वास का भरना

---

1 प्राणायाम की सही विधि पृष्ठ 48

तो आठ की गिनती में श्वास का बाहर निकालना शेष विधि तीसरी अवस्था की भाति।

महत्वपूर्ण बात यह ध्यान रखना जरूरी है कि नाड़ी शोधक प्राणायाम की उच्च अवस्था का प्रारम्भ इसी चौथी अवस्था के बाद होता है। इसमें कुम्भक करना होता है। ऐसे योगाभ्यासी को जिन्हें कोई विशेष रोग हो उन्हें कुशल योग प्रशिक्षक के निर्देशक के बिना नहीं करना चाहिए अन्यथा हानि की सम्भावना रहती है।

8 सर्वाग प्राणायाम(पाँचवी अवस्था)

चौथी अवस्था के कुछ दिनों बाद प्राणायाम की स्थिति में बैठकर दाहिने नथुने को बन्द करें और बाय से पृरक करें। पूरक के बाद दोनों नथुनों को बन्द करे लें और कुछ देर श्वास को अन्दर रोकें फिर दाहिने नथुने से रेचक करें। पुन बायें नथुने को बन्दर रखते हुए दाहिन मे पूरक करें फिर दोनों नथुनों को बन्द करके श्वास रोककर कुम्भक करें। इसक बाद दाहिने नथुने को बन्द रखते हुए, बाये नथुने से रेचक करें। यह एक बार हुआ।

इस प्राणायाम में पूरक , कुम्भक व रेचक का अनुपात 1 2 2 रखें अर्थात यदि चार की गिनती में श्वास भरे तो आठ की गिनती में श्वास रोकें और आठ की गिनती में ही श्वास को बाहर निकल दें। इसे कम से कम ग्यारह बार और अधिक से अधिक पच्चीस बार करें। कुछ दिनों के बाद पूरक , कुम्भक और रेचक का अनुपात 1 2 2 से बढाकर 1 3 2 और फिर 1 3 2 से बढाकर 1 4 2 तक ले जाये।

छठी अवस्था कुम्भक एव शून्यक के साथ

पाचवी अवस्था के कुछ दिन अभ्यास के बाद छठी अवस्था का अभ्यास करना चाहिए। इसमें बायें नथुने से पूरक कीजिए , पूरक करने के बाद कुम्भक करें , फिर कुम्भक के बाद दाहिने नथुने से रेचक करें। रेचक करने के बाद शून्यक अर्थात् श्वास को बाहर रोकें। अब दाहिने नथुने से पूरक कीजिए। पूरक कर लेने के बाद कुम्भक करें। फिर बायें नथुने से रेचक करें। रेचक के बाद शून्यक करे। यह एक बार हुआ। एक बार में कम से कम पॉच बार और अधिक से अधिक ग्यारह बार से ज्यादा न करे। पूरक, कुम्भक रेचक एव शून्यक का अनुपात 1 4 2 1 से प्रारम्भ करें अर्थात चार की गिनती में पूरक तो सोलह की गिनती में कुम्भक, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। किसी रोग से पीडित रोगी भूलकर भी इस छठी अवस्था का अभ्यास न करें एव बिना षट्कर्म द्वारा शरीर को विकार रहित, किये कोई भी योगाभ्यासी पॉचवी व छठवीं अवस्थाओं का अभ्यास न करें।

9 सूर्यभेदी प्राणायाम

प्राणायाम की स्थिति अर्थात् नाभि के पीछे का भाग सीधा करके किसी भी धयानात्मक आसन में बैठ जाइये। बायी नासिका को बन्द कर लें और दाहिने के खुला रहने दें। अब मूलबन्ध लगाकर आरामदायक स्थिति तक कुम्भक कीजिए। तत्पश्चात् पहले मूलबन्ध फिर जालन्धर बन्ध खोलकर दायें नासिका बन्द कर लीजिए और बायी नासिका को खोल

दीजिए। उड्डियान बन्ध लगाते हुए बायी नासिका से श्वास बाहर निकाल दीजिए। एक यह बार हुआ। प्रारम्भ में कम से कम पॉच बार से शुरू करें और अधिक से अधिक दस बार तक ले जायें। पूरक, कुम्भक ओर रेचक का अनुपात 1 1 2 अर्थात् चार की गिनती में पूरक, चार की गिनती तक कुम्भक व आठ की गिनती में रेचक करें। फिर अनुपात 1.2 2 कुछ दिनों के उपगन्त 1 3 2 तत्पश्चात 1 4 2 कर दें। अर्थात चार की गिनती में पूरक सोलह की गिनती में कुम्भक, आठ की गिनती में रेचक , इसमें यह ध्यान रखना चाहिए। कि दस प्राणायाम में केवल सूर्य स्वर अर्थात् दायें स्वर से ही पूरक और चन्द्र स्वर अर्थात बायें स्वर से रेचक किया जाता है।

लाभ :

1 भोजन के समय एव भोजन के उपरान्त दाहिना स्वर चलने से पाचन सही और जल्दी होता है। इसलिए समझदार लोग दाहिने स्वर के चलने पर भोजन करते है। यदि उन्हें भूख है और दाहिना स्वर बन्द है अर्थात् बाया स्वर चल रहा है तो इस सूर्यभेदी प्राणायाम से अपना दाया स्वर चलाकर भोजन करते है।

2 वायु विकार और कफ से उत्पन्न होने वाले रोग रक्त, दोष, स्वप्न दोष, उदर कृमि आदि नष्ट होते है। जठराग्नि बढती है ओर पाचन क्रिया ठीक से होती है।

3 यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्राणायाम से शरीर में उष्णता तथा पित्त की वृद्धि होती है। इसलिए गर्मी के दिनों में तथा पित्त प्रधान प्रकृति वाले लोगो के लिए हानिकारक हो सकता है।

10 चन्द्रभेदी प्राणायाम

चन्द्रभेदी प्राणायाम में सूर्यभेदी प्राणायाम से बिल्कुल उल्टा अर्थात चन्द्र स्वर बायी ओर से पूरक और सूर्य स्वर दायी ओर से रेचक करते है अर्थात चन्द्र भेदी प्राणायाम में सूर्य स्वर से पूरक और चन्द्र स्वर से रेचक नहीं करते है। चन्द्रभेदी प्राणायाम करने से थकावट व उष्णता दूर हो जाती है। यह शरीर को शीतलता प्रदान करता है।

11 सीत्कारी प्राणायाम :-

सीत्कारी प्राणायाम भी चन्द्रभेदी प्राणायाम की तरह शीतलता प्रदान करने वाला प्राणायाम है। इसीलिए इसका नाम सीत्कारी प्राणायाम रखा गया है।

प्राणायाम की स्थिति में बेठकर जीभ को होठों को थोडा बाहर कर निकाल कर दातो से उसे हल्का सा दबा दीजिए। अब सी-सी की आवाज उत्पन्न करते हुए बाहर की वायु को जोर से जीभ और दात के मिलाने में रह जाने वाले बीच के स्थान अर्थात् दोनो ओर के किनारों से खीचें। तत्पश्चात यथा शक्ति कुम्भक करके दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे रेचक करें। अर्थात मुख से श्वास खीचें और नाक से बाहर निकालें। यह एक बार हुआ।

महत्वपूर्ण तथ्य

क प्रारम्भ में इसे केवल पॉच बार करना चाहिए ।

ख इसे सर्दियों में नही करना चाहिए कवल गर्मियों में ही करना चाहिए ।

ग इसमें यथाशक्ति कुम्भक आवश्यक नहीं है और आशिक कुम्भक में जालन्धर बन्ध भी लगा लें तो कोई हानि नहीं है।

घ इस प्राणायाम में पूरक करत समय मुख के सामने थोडी दूर पर हथेली लगा लें। हथेली का मुख की ओर रखें। ऐसा इसलिए करते है कि वायु के साथ उड रहे धूल के कण, छोटे-छोटे कीडे-मकोडे यथा सम्भव अन्दर जाने से रोका जा सके।

लाभ अजीर्ण, पित्त से उत्पन्न होने वाले रोग, रक्त पित्त , रक्त विकार, पेचिश अम्ल, पित्त प्लीहा तृष्णा आदि के रोगों में विशेष लाभदायक है। निरन्तर अभ्यास के बाद बालों का सफेद होना कम होने लगता है।

12 शीतली प्राणायाम

नीचे अकित चित्र के अनुसार प्राणायाम की स्थिति में बैठ जायें और
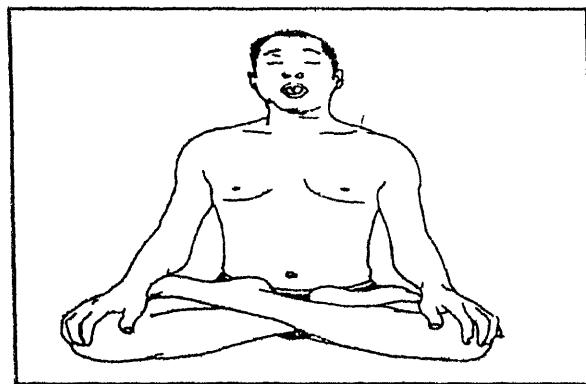
शीतली प्राणायाम

मुँह खोलकर कर ओठों को ' ओ ' की आकृति के समान बना लीजिए। अब जीभ को दोनों ओठों से बाहर पक्षी की चोच की तरह निकालकर जिहा के ही माध्यम से बाहर की वायु को धीरे-धीरे पूरक करें। यथाशक्ति कुम्भक करने के बाद दोनों

नासिकाओं से धीरे-धीरे रेचक करें। शीतली प्राणायाम के लाभ व सावधानियॉं सीत्कारी प्राणायाम की तरह है।

13 मूर्छा प्राणायाम

इस प्राणायाम के अभ्यास से मन में मूर्छा व चित्त में एकाग्रता आती हे। इसलिए इस प्राणायाम का नाम मूर्छा प्राणायाम है। निम्न चित्र के अनुसार -

मूर्छा प्राणायाम

नाभि के पीछे का भाग सीधा करके बैठ जाये।दोनों होथो के अँगूठे अपनी-अपनी ओर के कान पर तर्जनी, अँगुली से अपनी अपनी ओर से ऊपर वाले ओठ को तथा कनिष्ठका अँगुली से अपनी-अपनी ओर के नीचे के ओठ को बन्द कर लें। अब नासिकाओं से अँगुलियों का ढीला करके दोनों नाक से गहरा पूरक करें। जालन्धर बन्ध लगाकर यथाशक्ति कुम्भक करें। तत्पश्चात् जालनधर बन्ध बिना खोले धीरे-धीरे दोनों नासिकाओं से रेचक करना चाहिए। यह एक बार हुआ। चित्त की एकाग्रता से एिल यह प्राणायाम अत्यन्त उपयोगी है निरन्तर अभ्यास से साधक ध्यान और समाधि की ओर अग्रसर होता है तथा इसके अभ्यास से साधक को पच तत्वों के पॉंच रगों का ज्ञान भी होता है। इसको उच्च रक्त चाप, चक्कर या मस्तिष्क खिचाव से पीडित रोगी इसे भूलकर भी न करें।

14 प्लावनी प्राणायाम
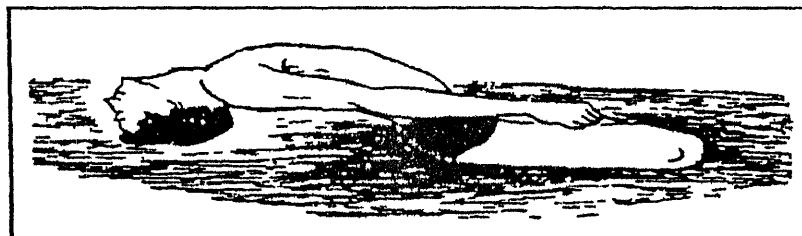
प्लावनी प्राणायाम

उपर्युक्त युक्त चित्र के अनुसार 'पद्मासन ' लगाकर फिर हाथों को छोडकर पल्थी जैसो स्थिति रखते हुए चित्त लेट जाइये। अब दोनों हाथ सिर के ऊपर

से लेकर बायें हाथ से दाहिनी भुजा को व बायें हाथ से बायी भुजा को पकडें। इस प्रकार से मत्स्यासन करके पूरक से पेट में भरपूर वायु भर ले और कुम्भक करें। कुम्भक करते हुए ऐसी कल्पना करें कि सारे शरीर की वायु पेट में एकत्र हो गयी है और शेष शरीर रूई की तरह हल्का हो रहा हे। यथा शक्ति कुम्भक के पश्चात दोनों पासिकाओं से धीरे-धीरे रेचक करें। यह एक बार हुआ। इसे भी पॉच बार से प्रारम्भ करें, धीरे-धीरे बढाएँ।

लाभ प्राण वायु पर पूर्ण अधिकार, पेट के सब प्रकार के रोग, अपान वायु की शुद्धि ,जठराग्नि की वृद्धि वीर्य एव रक्त की शुद्धि होती है। इसको करने से शरीर बहुत हल्का हो जाता है। शरीर का भारीपन समाप्त हो जाता है।

15 केवली प्राणायाम

केवली प्राणायाम एक प्रकार का सहज कुम्भक प्राणायाम है अर्थात जैसे सर्वाग प्राणायाम (पूरक, कुम्भक, रेचक एव शून्यक सहित) में कुम्भक के पूर्व पूरक एव पश्चात् रेचक किया जाता है। वैसा केवली प्राणायाम में नही करते बल्कि केवली प्राणायाम में श्वास को यथा शक्ति रोक लेते है और चक्कर , घबराहट , बेचैनी होने के पहले ही छोड देते है। इस प्राणायाम में यह आवश्यक नहीं है कि श्वास जाते समय रोकें या श्वास को निकालते समय रोकें, अर्थात प्राकृतिक स्थिति में श्वास लेते तथा छोडते समय कभी भी रोक सकते है।

लाभ मन की चचलता दूर करने के लिए , स्थिरता तथा स्मरण शक्ति बढाने के लिए यह प्राणायाम अत्यन्त लाभकारी हे।

अभी तक अलग-अलग प्राणायामों के करने के साथ ही उनके लाभों का वर्णन भी किया जाता है। परन्तु यहॉ पर कुछ सामान्य लाभ भी बताना आवश्यक है जो निम्न प्रकार से है।

1 प्राणायाम से फेफडों की शक्ति बढती है फलस्वरूप प्राणायाम अभ्यासी के फेफडों में व श्वास नली में कफ जमने का प्रश्न ही नही उठता यदि जमा होगा तो निकल जाता है और जब कफ ही नही रूकेगा तो जुकाम, खासी , दमा व टी0 वी0 जैसे रोग कभी नहीं हो सकते है।
2 प्राणायाम करने से रक्त शुद्ध होता है।इसीलिए प्राणायाम अभ्यासी को रक्त शोधक औषधियों को खाने की कभी जरूरत नही पडती क्योंकि रक्त शुद्ध होने से खुजली , सूजन , सुर्खी , कुष्ठ जलन आदि रोग नहीं होते है।
3 बाल्यावस्था में प्राणायाम करने से छाती विशाल होती है और पेट भी नहीं निकलने पाता है।

4 प्राणायाम करने से जठराग्नि तीव्र हाती है जिससे प्राणायाम अभ्यासी को अपच एव अजीर्ण के कप्ट नही होते। इसके नियमित अभ्यास से वही व्यक्ति जो साधारण सादा भोजन भी नहीं पचा पाता गरिष्ठ भोजन भी हजम करने की सामर्थ्य आ जाती है।

5 शरीर का बल बढता है साथ ही मानसिक एव आत्मिक बल भा बढता है। स्वच्छ शुद्ध वायु से प्राय एव सूर्यास्त के समय विधि विधान से प्राणायाम करने से मन में उत्साह इतना बढता है कि उसके बराबर कोई उत्साह वर्धक औषधि नहीं है।

6 शरीर के किसी भाग में बीमारी होने पर मन को प्रेरणा और प्रबल इच्छा द्वारा प्राणायाम की प्राण शक्ति को उस रूग्ण स्थान पर पहुॅचाने पर बीमारी शीघ्र दूर हो जाती है।

7 प्राणायाम से प्राणों का सयम होता है फलारवरूप मन और चित्त वश में आने लगते है। मन और चित्त के वश में होने से शरीर की समस्त इन्द्रिया एव अवयव भी वश में हो जाते है।इन्द्रियों एव मन के वश में आने पर प्राणायाम अभ्यासी को ध्यान में बैठने की प्रबल इच्छा होने लगती है।

महत्वपूर्ण तथ्य

1 प्राणायाम आसन करने के बाद अथवा ध्यान करने स पहले करना चाहिए।

2 प्राणायाम के समय शरीर अधिक से अधिक शिथिल करके रखना चाहिए।

3 शरीर पर तग व कसे हुए वस्त्र न होकर सूती ढीले वस्त्र पहनने चाहिए।

4 प्राणायाम अभ्यासी को प्राकृतिक चिकित्सा की भॉति लम्बे उपवास करना एव बहुत कम तथा रूखा भोजन नहीं करना चाहिए। यह हानिकारक होता है।

5 प्राणायाम से पहले स्नान करना श्रेप्ठ हे जो प्राणायाम के पूर्व किसी कारण स्नान नहीं कर सकते वे लोग कम से कम पन्द्रह मिनट से आधे घण्टे का अन्तर रखें।

6 प्रात पेट खुलकर साफ न हुआ हो तो वस्ति, गणेश क्रिया अथला लघु शखप्रक्षालन के द्वारा पेट साफ कर ले। कब्ज की दशा में प्राणायाम हानिकारक हो सकता हैं।

7 प्राणायाम के तुरन्त पहले पानी नहीं पीना चाहिए , प्यास हो तो आधा पाव से एक पाव तक पानी पिया जा सकता हे।

8 बुखार में प्राणायाम भूलकर भी न करे।

9 प्राणायाम की उच्च साधना करने वालो को प्राणायाम करने के बाद दूध पीना चाहिए या घी,मक्खन से बनी चीजें खायें तो उत्तम हे।

10 प्राणायाम अभ्यासी को श्वास लेने व छोडने में किसी भी प्रकार की ध्वनि नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए।

11 किसी भी प्रकार के कठिन रोगी को योग्य योग चिकित्सक से पूछे बिना प्राणायाम करना पूर्णत वर्जित है।

12 टट्टी व पेशाब की आदत को कभी न रोके अर्थात् प्राणायाम करत समय यदि इनकी हाजत की अनुभव हो तो पहले पट्टी पेशाब से निवृत्त होना अति आवश्यक है।

12 06 2003

तप पूत तथा प्रज्ञाचक्षु ऋषि महार्षियों ने सस्कृत वाड्गमय की उस विद्या को दर्शन सज्ञा प्रदान की जिसका विपय था 'परम तत्व ' अथवा परमार्थ। दृश दर्शने धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगाने मे निप्पन्न ' दर्शन शब्द का अर्थ होता है ' देखने का साधन ' अत दर्शन शब्द का अर्थ हुआ देखने का साधनभूत चक्षुरूप ज्ञानेन्द्रिय। लोक में चक्षु (दर्शन) नामक ज्ञानेन्द्रिय का विषय सम्पूर्ण दृश्यमान जगत है। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण दृश्यमान जगत का प्रत्यक्ष ज्ञान जिसके द्वारा हो उसे 'दर्शन कहेंगे। इसी तरह जिस शास्त्र का विषय है।' परम तत्व ' या 'परमार्थ ' अर्थात् जिस शास्त्र के द्वारा परम तत्व का दर्शन अथवा ज्ञान कराया जाये उसे भी दर्शन कहेंगें। अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इन्द्रियार्थसन्निकर्यजन्य ज्ञान को भी प्रत्यक्ष ज्ञान ही कहते है या पाचों प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान में दर्शनेन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान सर्वाधिक प्रामाणिक और प्रभावोत्पादक जान पडता है। सम्भवत इसलिए परमतत्व की प्रत्यक्ष अनुभूति कराने वाले शास्त्र का नाम दर्शन शास्त्र ही रखा गया है।

भारतीय दर्शन को दो भागो मे विभक्त किया गयाा 1 नास्तिक दर्शन 2 अस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शन उनको कहा गया हे। जो वेद की प्रामाणिकता को नहीं मानते । इसके अन्तर्ग चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन आते है। इनके विपरीत आस्तिक दर्शन वे है जो वेदों की प्रामाणिकता पर विश्वास रखते है। इनके अन्तर्गत न्याय आदि छ दर्शन आते हे जो इस प्रकार है।

1 न्याय दर्शन

2 वैशेषिक दर्शन

3 पूर्व मीसासा दर्शन

4. साख्य दर्शन

5 योग दर्शन

6 वेदान्त दर्शन (उत्तर मीसासा)

उक्त समस्त भारतीय दर्शनों का चरमलक्ष्य है प्राणियों को त्रिविध दु.खों से सदा के लिए छुटकारा दिलाना। दु खों की यह इस शाश्वतिक निवृत्ति को अलग-अलग

दर्शनों में मुक्ति मोक्ष, कैवल्प, अपवर्ग, नि श्रेयस , निर्वाण और परमपद इत्यादि पदों से अभिहित किया गया है।

उपर्युक्त षड्दर्शनों की परम्परा में योग दर्शन अन्यतम है। भारतीय दर्शनों में योग दर्शन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महाभारत में श्री शुक्रदेव जी ने उचित ही कहा है कि " न तु योगमृते प्राप्तु शक्या सा परमा गति।" तत्व साक्षात्कार या आत्म साक्षात्कार के लिए योग साधना की आवश्यकता प्राय सभी दर्शनों तथा भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार की है। वैदिक एव अवैदिक (जैन तथा बौद्ध) दर्शना में योग की उपादेयता निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। सहिता , आरण्यक ओर उपनिषद के योग की महनीयता का वर्णन उपलब्ध होता है।'

किन्तु योग दर्शन का व्यवस्थित रूप में विवेचन पजञ्जलि विरचित योग सूत्र में ही उपलब्ध होता है। इसीलिए योगदर्शन का दूसरा नाम पातञ्जल योग दर्शन भी है जिसमें पातञ्जल शब्द का अर्थ है। महर्षि पतञ्जलि से सम्बद्ध । यहा यह उल्लेखनीय है कि महर्षि पजञ्जलि ने योगदर्शन को सुव्यवस्थित दार्शनिक रूप अवश्य दिया है किन्तु ये योगदर्शन के आदि प्रवर्तक नहीं है। योगियाज्ञवल्क्य में हिरण्यगर्भ को योग दर्शन का प्रथम वक्ता या उपदेष्टा स्वीकार किया गया है। पतञ्जलि ने स्वय इस बात का सकेत प्रथम योग सूत्र ' अथयोगानुशासनम् ' में प्रयुक्त अनुशासन शब्द द्वारा किया है। ' अनुशासन ' और ' शास्त्रशब्द पर्यायवाची है। फिर भी बहुप्रचलित 'शास्त्र ' शब्द का प्रयोग न करके महर्षि पजञ्जलि ने अनुशासन शब्द को जो प्रयोग किया है उसका प्रयोजन यह है कि वे अनुशासन शब्द की इस व्यजना से 'शिष्टस्य शासनम् इत्यनुशासनम् ' अर्थात पहले से सिखाये गये विषय को सिखाने वाला शास्त्र अनुशासन है। यह प्रकट करना

चाहते है कि वे योग शास्त्र के आदिवक्ता नही है। तो प्रश्न उठता है कि योगशास्त्र का आदि वक्ता कौन है ?

योगियाज्ञावल्क्य स्मृति से ज्ञात होता है कि योगशास्त्र के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ है। योगसूत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय तक योग के अनेक सिद्धान्त विद्वतजनों के बीच प्रचलित थे। योग सबधी पूर्ववर्ती ग्रन्थो का यद्यपि पजज्जलि ने न तो कही उल्लेख किया है और न ही किसी प्राचीन योगाचार्य का कहीं पर नाम लिया है। फिर भी अधिकाश प्रतिपाद्य विषयों को तर्कों और प्रमाणों से सिद्ध करने का उनका प्रयास इस बात का प्रमाण है कि उन विषयों और सज्ञाओं का सामान्य बोध विद्वानों को पहले से रहा होगा । इन बातों से योगशास्त्र के आदि उपदेप्टा हिरण्यगर्भ नामक कोई ऋषि ठहरते है।

उपनिषद और महाभारत में स्पष्ट शब्दों में यह प्रतिपादित किया गया है कि यह हिरण्यगर्भ आदि विद्वान परमर्षि कपिल से अभिन्न थे

1 कपिलोऽग्रज इतिपुराणवचनात कपिलोहिरण्यगर्मो वा व्यपदिश्यते-श्वे0 उप0 शाकरभाष्य

2 " कपिलोनाम विष्णोरवतार विशेप प्रसिद्ध
स्वयम्भूर्हिरण्यगर्भस्तरयापि शाख्ययोगप्राप्तिवेर्द श्रूयते सएवेश्वर आदि
विद्वान कपिलो विष्णु॰ स्वयम्भूरिति भाव॰ ।" त0 वै0 1,25

3 विद्यासहायवन्तभादित्यस्थ समाहितम्।
कपिल प्राहुराचार्यो साख्यनिश्चितनिश्चिता ।।

---

2 क " यस्मादृत न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।
स धीना यागमिन्वति ।। " ऋक्सहिता प्रथम मण्डल सूक्त 18 मन्त्र 7

ख " योग याग तवस्तर वाजे वाजे हवामह ।
सखाय इन्द्रमूर्तय ।। " ऋक्सहिता 1 30 7 शुक्ल यजु0 1 14
साममव सहिता उत्तरार्चिक 1 2,11 1 पूर्वाचिक 1 2 7 9
अर्थवेदसहिता 20,26 1

ग " युक्तेन मनसा वय दवस्य सवितु सव ।" यजुर्वेदसहिता 11,2

घ " अध्यात्मयोगेधिगमेन दव मत्वा धीरा हर्पशाकौजहाति" काठकोपनिषद् 1,2,21

ड " योगप्रवृत्ति प्रथमा वदन्ति ।" श्वेता उप 2,13

च ' न तस्य रोगा न जरा न मृत्यू प्राप्तरय यागग्निमय शरीरम । " श्वेता उप 2,12

हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि सुस्तुत ।

सोउह योगरिर्तिब्रहान्। योगशास्त्रेपु शब्दित ।। महा0 11/339/68-69

उल्लेखनीय है कि इन्ही महर्षि कपिल न सर्वप्रथम साख्ययोग का उपदेश किया था। साख्य तथा योग एक ही दर्शन के सेद्धान्तिक तथा क्रियात्मक पहलू थे। दोनों पृथक दर्शन नहीं थे। गीता में साख्या ओर याग की एकता सुस्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित की गयी है -

'' साख्य योगौ पृथग्बाला प्रवदन्ति न पण्डिता ।

एकमप्यास्थित सम्युगुभयोर्विन्देते फलम् ।। श्रीमद्भगवद्गीता ।5।4।

यत्साख्यै प्राप्यने स्थान तद्योगैरपि गम्यते।

एक साख्य च योग च य पश्यपि स पश्यति। । श्रीमद्भगवद्गीता ।5।5।

श्रीमद्भागवतपुराण में महर्षि कपिल को साख्योपदेष्टा तथा सिद्धेश कहा गया है।

'' पचमों कपिलो नाम सिद्धेश कालविप्लुतम्।

प्रोवाचारसुरये साख्य तत्वग्रमविनिश्चयम्। '' श्रीमद्भागवतपुराण 1,3,11

सिद्धेश का, अर्थ है योगिश्रेष्ठ अत स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार भी महर्षि कपिल साख्य आर योग दोनो के प्रवर्तक थे। महाभारत में तो स्पष्ट कहा गया है-

'' कपिल परमर्षि च य प्राहुर्यतय सदा।

अग्नि स कपिलो नाम साख्ययोग प्रवर्तक । '' 11/3/65

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हे कि कपिल अथवा हिरण्यगर्भ वैदिक काल क ऋषि थे क्योंकि सहिताओं तक में जिस योग की प्रशसा की गयी है उसके आदि उपदेष्टा कपिल है। '' हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य पुरातन '' पक्ति भी इनसे पर्ववर्ती किसी अन्य योगशास्त्र व्याख्याता का स्पष्ट निषेध कहती है। कपिल तथा पजज्जलि के बीच कतिपय यागाचार्यो के केवल नाममात्र मिलते है, उनकी कोई कृति उपलब्ध नहीं होती।

---

3 ''ननुहिरण्यगर्भो यागस्य वक्ता नान्य पुरातन '' इति योगियाज्ञवल्क्यस्मृते कथ पतञ्जलेयोगशास्त्र वक्तृत्वमित्याशङक्य सूत्रकोरेणीक्तम् अनुशासनमिति शिष्टस्य शासनमनुशासनमित्यर्थ ।'' तत्व वेशारदी पृष्ठ 6

4 क महाभारत 11,349,65

ख मनुस्मृति 1,88-89 ग भामती 2,1,3

3 The conclusion would be then that the Patanjali's were written at some time in the fourth or fifth century of ourera" Introduction of Yoga system of Patanjali P XIV

4 योगसूत्र भाष्य सिद्धि पृष्ठ 12/13 लखक पा0 सुरश चन्द्र श्रावास्तव

पतञ्जलि का समय पाश्चात्य विद्वान जे एच बुडस महर्षि पजज्जलि का जीवनकाल 300 ई-400 ई0 के मध्य मानते है?, प्रो0 जैकोबी तथा प्रो0 कीथ भी योगसूत्रकार पजज्जलि को महाभाष्यकार पजज्जलि से भिन्न मानते हुए योगसूत्रकार पतञ्जलि की स्थिति तीसरी और चौथी शताब्दी में[2]

मानते है। अपने मत की पुष्टि मे उन्होनें कुछ तर्क दिये जिनको प्रो0 श्रीवास्तव ने अपने योगसूत्रभाष्य सिद्धि में उल्लिखित किया है। अत वे वहीं दृष्टव्य है।

दूसरी ओर डा0 एस0 एन दास गुप्त श्री ज्वाला प्रसाद, रिचर्ड गार्वे महोदय आदि विद्वान उपर्युक्त मतों का खण्डन करते हुये एक प्राचीन भारतीय परम्परा के आधार पर योगसूत्रकार और महाभाष्यकार पजज्जलि को एक ही व्यक्ति मानते है। ऐसा मान लेने पर योग सूत्रकार का काल निश्चित करना सुकर हो जाता है क्योंकि महाभाष्यकार पतञ्जलि शुड्ग वशीय राजा पुष्यमित्र के समसामयिक थे। दोनों पतञ्जलियों की एकता प्रतिपादित करने वाली जिस प्राचीन परम्परा का सहारा डॉ0 दास गुप्त इत्यादि ने लिया है। वह परम्परा यह है -छठी शताब्दी ई0 के वैयाकरण भर्तृहरि के वाक्यपदीय नामक ग्रन्थ के ब्रहाकाण्ड में अधोलिखित श्लोक आया हुआ है।

कायावाग्बुद्धि विषया येमला समुस्थित ।
चिकित्सा लक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषा विशुद्धय ।। 1।146।

जिसका अर्थ है कि शरीर, वाणी और बुद्धि विषयक जो मत है उनकी विशुद्धि चिकित्सा शास्त्र, व्याकरण शास्त्र और अध्यात्मक शास्त्र के द्वारा होती है। वाक्यपदीय के टीकाकर पुष्पराज की ऐसी धारणा हे कि उक्त श्लोक में पतञ्जलि की प्रशसा की गयी है। जिन्होनें इस त्रिविध मतों के शोधन के लिए 'चरक सहिता ' ' महाभाष्य ' और योग सूत्र' की रचना की है। पुष्पराज की इस धारणा का आधार उक्त श्लोक पर स्वय भर्तृहरि की ही अधोलिखित व्याख्या है।

'' यथैव हि शरीरे दोषशक्ति रत्रौपधादिषु च दोषप्रतीकारसामथर्य
दृष्ट्वा चिकित्साशास्त्रमारब्ध, रागदीश्च बुद्धेरूपप्लवानवगम्य
तदुपघातहेतु ज्ञानोपायभूतान्यध्यात्मशास्त्राणि उपनिबद्धानि,
तथेदमपि साधूना वच सस्काराणा ज्ञापनार्थमपभ्रशाना चोपधाताना
त्यागर्थ लक्षणमारब्धम्।''

इस व्याख्या में प्रत्येक शास्त्र के कर्ता के अलग-अलग उल्लेख न होने से यही धारणा बनती है कि भर्तृहरि एक ही व्यक्ति को इन तीनों शास्त्रों का कर्ता मानते थे।

योगसूत्रों पर ' राजमार्तण्डवृत्ति' की रचना करने वाले भोजराज (11बी शताब्दी ई0) ने इस वृत्ति के मगलाचरण में स्पप्ट शब्दों में यह प्रतिपादित किया है कि महाभाष्यकार पतज्जलि ही बैद्यक शास्त्र(चरक सहिता) ओर योगसूत्रों के भी रचयिता थे।

शब्दानामनुशासन विद्धता पातज्जले कुर्वत
वृत्तिराजमृगाड्कसज्ञकमपि व्यातन्वता वेद्यके।
वाक्येतोवपुषा मल फणभृता भर्त्रेव येनोद्धतस्।
तस्य श्री रणारड्गमल्लनृपयेतर्वाचो नयन्त्युज्ज्वला ।।

उक्त श्लोकों का अर्थ है कि जिम प्रकार से सर्पो के राजा (शेषनाग के अवतार पजज्लि) ने शब्दानुशासन (महाभाष्य), योगसूत्र तथा वैद्याकशास्त्र की रचना करते हुए वाणी, चित्त तथा शरीर के मलों के शोधन किया था उसी प्रकार जिस रणरड्गमल्ल राजा (भोज) ने व्याकरणशारत्र, पातज्ज्ल-योगशास्त्र तथा वैद्यकशास्त्र राजमृगाड्क नाम वृत्ति की रचना करते हुए उक्त तीनों प्रकार के मलों (दोषो) को दूर कर दिया है उनके उज्जवल वचन सर्वातिशायी है।

स्पष्ट है कि राजा भोज को महाभाप्यकार पतज्जलि तथा योगसूत्रकार पतज्जलि की अभिन्नता में कोई सन्देह नहीं है।

चरक सहिता के टीकाकार चक्रपाणिदत्त (11 वी शताब्दी ई0) पतज्जलि को इन तीनों ग्रन्थों के रचयिता रूप में प्रमाण करते हे -

पाजज्जलमहाभाष्यचरक प्रतिसस्कृतै ।
मनोवाक्कायदोषाणा हन्त्रेऽहिपतये नम ।।

वैयाकरणनागेश (16 वी शताब्दी ई0) अपने ग्रन्थ ' वैयाकरण सिद्धान्त-मज्जूषा ' में पतज्ज्लि को उक्त तीनों ग्रन्थों का रचयिता मानत है।

क '' तदुवक्त चरके पतञ्जलिना । सेन्द्रिय चेतन द्रव्य निरिन्द्रियमचतनम्।''

ख '' आप्तो नाम अनुभवेन वस्तुत्वस्य कात्स्न्र्येन निश्चयवान्

' रागदिवशादपि नान्यथावादी य स इति चरके पतज्जलि ''।
(वैययाकरणसिद्धान्तमज्जूषा पृ0 12)

ग योगसूत्रे पतञ्जल्युक्ते ' महाभाष्य पस्पशा उद्योत पृ0 58

रामभद्र दीक्षित (18 वी शताब्दी ई0) स्वरचित 'पतञ्जलिचरित ' में पजञ्जलि की वन्दना इस रूप म करते है -

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मल शरीरस्य च वेद्यकेन।
योऽपाकरोत्त प्रवर मुनीना पतञ्जलि प्राञ्जतिरानतोऽस्मि।।

प्राचीन शैली से पठन पाठन की परम्परा का अनुसरण करने वाली सस्थाओं में आज भी महाभाष्य का पाठ आरम्भ करने से पूर्व अधोलिखित मगलपाठ किया जाता है -

वाक्यकार वररूचि भाष्यकार पतञ्अलिम्।
पाणिनीं सूत्रकार च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम्।।
योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मल शरीरस्य च वेद्यकेन।
योऽपाकरोत प्रवर मुनीना पतञ्जलि प्राञ्जतिरानतोअस्मि।।

कहावत है कि जनश्रुति निराधार नही हुआ करती " न ह्यमूला जनश्रुति " इसलिए ठोस बाधक प्रमाणों के अभाव में उक्त परम्परा की प्रमाणिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

आधुनिक विद्वान डॉ0 एस0 एन दासगुप्ता तो जोरदार शब्दों में यह कहते है कि महाभाष्य के पर्यवेक्षण के पश्चात् उन्हें कोई भी ऐसा तथ्य या सकेत नहीं मिला जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि दोनों पतञ्जलि अभिन्न नही थे।

दोनों ग्रन्था के अन्त साक्ष्य से भी डॉ0 दासगुप्ता के उपर्युक्त निष्कर्ष की ही पुष्टि होती है। महाभाष्य 4।1।3 में , गुणसिद्धान्त, 1।2।64 में सत्कार्यवाद 2।2।5 में कालविषयक सिद्धान्त तथा 3।10-11 में बुद्धिपरिणाम के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले अश दर्शनीय हे।

दोनो ग्रन्थों के आरम्भ करने की शेली में भी अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है। महाभाष्य का आरम्भ ' अथ शब्दानुशासनम्' वाक्य 1।1।1 से होता है तो योगसूत्र का आरम्भ अथ शब्दानुशासनम् 1/1 सूत्र से किया जाता है। चॅकि ग्रन्थो का आरम्भ अथ शब्द से किया ही जाता है। इसतिए उक्त स्थलों में अथ शब्द का साम्य उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि अनुशासनम् शब्द का साम्य । ऐसा लगता है कि योगसूत्रों के व्याख्याता भाष्यकार व्यास भी दोनों की अभिन्नता के समर्थक है क्योंकि अथ योगानुशासनम् में अथ शब्द की व्यासकृत व्याख्या महाभाष्यकारकृत ' अथ' शब्द की व्याख्या के वजन पर ही की गयी प्रतीत होती है। महाभाष्यकार कहते है- " अथेत्यय शब्दोऽधिकारर्थ प्रयुज्यते। शब्दानुशासन शास्त्रमीधकृत्त वेदितव्यम्।" महाभाष्कार कहते हैं - " अथेत्ययमधिकारार्थ योगानुशासन शास्त्रमधिकृत वेदितव्यम्।" योगभाष्य पृ0 6

महाभाष्यकार पतञ्जलि को शेपनाग का अवतार माना जाता है। इस सबध में किवदन्ती प्रसिद्ध है कि एक बार वे अपने शिष्यों के बीच पाणिनीय

सूत्रों पर प्रवचन कर रहे थे। स्वय पर्दे के पीछे बैठकर प्रवचन कर रहे थे और शिष्यों को आदेश दे रखा था कि वे पर्दे के पीछे नहीं देखगें। उत्सुकता और चपलता के वशीभूत एक छात्र ने पर्दा उठा दिया। आचार्य एक हजार मुखों से प्रवचन कर रहे थे। पर्दा उठने से सारे शिष्य भस्म हो गये । एक शिष्य जो लघुशका हेतु बिना आज्ञा चला गया था वही बचा रहा गया। आज्ञा के बिना ही जाने के कारण उसे दैत्य होने का शाप मिला। अन्त में उसके ऊपर दयालु होकर आचार्य ने उससे कहा कि तुम अमुक बरगद के पेड पर रहोगें। उधर से गुजरने वालों से तुम प्रश्न करोगे – ' पचे निष्ठााया कि रूपम्।'' जो भी सही उत्तर देगा उसे पाणिनीय सूत्रो का ज्ञान करा कर तुम शाप मुक्त हो जाओगें।'' वह शिष्य वैसा ही करता रहा किन्तु हर व्यक्ति का उत्तर होता था- 'पक्तम्' । अन्त में किसी व्यक्ति ने उसके प्रश्न का उत्तर 'पक्वम्' दिया । तब आचार्य के आदेशानुसार उसे बटपत्र पर लिख लिख कर पाणिनीय सूत्रों का ज्ञान कराकर वह शिष्य शाप-मुक्त हुआ।

योगसूत्रकार पतञ्जलि को भी प्राय सभी आचार्यो ने स्थल स्थल पर शेषावतार, फणिपति, अनन्त आदि कहा हे। मल्लिनाथ (13वीं शताब्दी ई0) ने भी अपने प्रसिद्ध श्लोक वाणी काणभुजी मजीगणदवाशासीच्च वैयासिकीम्। अन्तस्तन्त्रमरस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत्।'' में यागशास्त्र को पन्नगवीगुम्फ कहा है। पजज्लि नाम के व्यक्ति तो अनेक हो सकते है किन्तु शेषवतार रूप में प्रसिद्ध पतञ्जलि के अनेक होने की सम्भावना कम ही बनती है। इस प्रकार दोनों पतञ्जलियों के सबध में शेषावतार से सबधित उक्त धारणा भी दोनों की अभिन्नता की ही परिचायक है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कहने की स्थिति में आ जाते है कि दोनों ही पतञ्जलि –महाभाष्यकार पतञ्जलि तथा योगसूत्रकार पतञ्जलि एक तथा अभिन्न थे । महाभाष्य के पुष्ट अन्त साक्ष्यों के आधार पर इतिहासकार इस सबध में एकमत है। कि महाभाष्यकार का समय द्वितीय शताब्दी ई0 पूर्व था। महाभाष्य में पतञ्जलि लिखते है।

' इह पुष्यमित्र याजयाम ', 'पुष्यमित्र यजामहे, इन उल्लेखों से इतिहासकार इस मत के है कि पतञ्जलि पुष्यमित्र शुग के पुरोहित थे। पुष्यमित्र शुग ने अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की उसके द्वारा सैन्य निरीक्षण के समय सेना के समक्ष हत्या कर के मौर्य साम्राज्य पर अधिकार किया था। पुष्यमित्र शुग का राज्यकाम द्वितोय शताब्दी ई0 पू0 स्वीकार किया जाता है। इसलिए उनके पुरोहित पतञ्जलि का स्थितिकाल भी द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 होना चाहिए। अपने इस मत

की पुष्टि में महाभाष्यकार के अधोलिखित प्रयोगों का भी सहारा इतिहासकार लेते हैं। महाभाष्य में पतञ्जलि कहते है -

अरूणद्यवन साकेतम्। अरूणद्यवन माध्यमिकाम्।'

इतिहासकारों का कहना है कि यवनों का यह साकेत तथा मध्यदेश पर आक्रमण भी पुष्यमित्र शुग के ही जीवन काल में हुआ था।

इस प्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि महाभाष्यकार द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 में हुए थे और उनके साथ अभिन्नता के आधार पर योगसूत्रकार पतञ्जलि का भी सिद्ध होता है।

पतञ्जलि का स्थान महाभाष्य में कश्मीर के प्रति पतञ्जलि का विशेष झुकाव परिलक्षित होता है।

4 " काश्मीरान् गमिष्यामो देवदत्त। तत्र सक्तून पास्याम। "

5 " अभिजानासि देवदत्त। यत् काश्मीरेषु वत्स्याम।"

6 " समेता पुष्यकर्माणि पार्श्वे हिमवत शुभे।"

इस झुकाव को देखते हुए प्रो0 सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव इन्हें न केवल काश्मीर निवासी मानते है अपितु कुछ विद्वानों द्वारा प्रतिपादित इनके गोर्नदीय (गोण्डावासी) होने का खण्डन भी करते है। अपने मत के समर्थन में उनका कहना है कि - " पतञ्जलि ने कई स्थानों पर गोनर्दीय आचार्य का खण्डन भी किया है। ये मत कात्यायन के ही प्रतीत होते है। पाणिनीयसूत्र 1।1।5 पर वर्तिक है - सति त्वन्यस्मिन्।' इसका खण्डन करते हुए पतञ्जलि कहते है- " गोनर्दीयस्त्वाह सत्यमेतत् सति तु अन्यस्मिन् इति। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कात्यायन ही गोनदीय थे न कि पतञ्जलि । इस मत को मानने वाले अन्य विद्वान हरिदीक्षित अर्वाचीन विद्वान सुब्रहाण्य शास्त्री और पण्डित दामोदर प्रसाद शर्मा शास्त्री वैद्य है।

योगसूत्रभाष्यकार व्यास व्यास ने पातञ्जल योगसूत्रों पर जिस भाष्य की रचना की वह योगसूत्रों से सम्बद्ध होने के कारण योगभाष्य, व्यासकृत होने के कारण व्यासभाष्य, पतञ्जलि के योगसूत्रों से सम्बद्ध होने के कारण पातञ्जल भाष्य तथा (योगदर्शन में) तत्वविचार की दृष्टि से साख्यशास्त्र का प्रकृष्ट रूप से निर्वचन करने के कारण साख्य प्रवचनभाष्य नामों से प्रसिद्धि है। पातञ्जलयोगदर्शन के सम्यक् ज्ञान के लिए व्यासभाष्य अपरिहार्य है इसलिए इस महत्वपूर्ण गन्थ का परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित ही नहीं अनिवार्य जान पडता है।

---

1 योगसूत्रभाष्यसिद्धि पृ0 22

पातञ्जल योगदर्शन के मूर्धन्य विद्वान तथा योगसूत्रभाष्य के वरिष्ठ व्याख्याता इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव का मन्तव्य है कि –

" योगशास्त्र के इतिहास में पतञ्जलि के पश्चात जिस कृति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है, वे है व्यास । अध्येताओं की दृष्टि में योगसूत्रों की ही भाति योगभाष्य भी अतीव महत्वपूर्ण एव प्रमाणिक कृति है। योगदर्शन का शास्त्रीय तथा व्यावहारिक -उभयविध स्वरूपनिरूपण योगभाष्य के आधार पर ही किया जाता है।"[2119]

वाचस्पति मिश्र तथा विज्ञान भिक्षु आदि योग परम्परा के सभी आचार्य इस भाष्य के रचयिता के परम प्रशसक है विज्ञान भिक्षु कहते है

सर्ववेदार्थसारोऽत्र वेदव्यासेन भाषित ।
योगभाष्यमिषेणातो मुमुक्षुरामिद गति ।
गगाद्या सरितो यद्वदब्धेर शेषु सस्थिता ।
साख्याद्यदर्शनान्येवमस्यैवाशेषु सस्थिता ।।

भाष्य की पुस्तिकाओं में कही भी व्यास का नाम नहीं मिलता है तथापि वाचस्पति मिश्र अपनी टीका तत्व वेशारदी के आरम्भ में इस भाष्य को वेदव्यास भाषित कहते है। योग वार्तिक के उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि विज्ञान भिक्ष भी इस भाष्य को ' सर्ववेदार्थसार तथा 'वेदव्यासनेभाषित ' और 'रत्नाकर प्रवादाना भाष्य व्यासभिनिर्मितम् कहते है । इन सब उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन या अर्वाचीन सभी आचार्य व्यास मुनि नामक व्यक्ति को इस भाष्य का रचयिता मानते है। किन्तु यह व्यास कौन है- महाभारतकार परासर पुत्र कृष्णद्वैपायन वेदव्यास? अथवा वेदान्तसूत्रों के रचयिता वादरायण व्यास या इन दोनों से भिन्न कोई अन्य व्याय ? इस प्रश्न को उठाकर साधक प्रमाणों के उपस्थापनापूर्वक प्रो0 श्रीवास्व इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि – " बहुत सम्भावना यही है कि कृष्ण द्वैपायन तथा वादरायण दोनों से ही भिन्न किसी अन्य व्यास ने ही योगभाष्य की रचना की है। उनको वेदव्यास कहना ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना है।' योगभाष्य का रचनाकाल भी पर्याप्त विवादग्रस्त है किन्तु प्रो0 श्रीवास्तव इसका रचना काल दूसरी शताब्दी ईस्वी निर्धारित करते है।

व्यास कृत यह योग भाष्य पातञ्जल महाभाष्य, साबरभाष्य अथवा शाकरभाष्य के समान प्रौड तथा उच्चस्तरीय तो नहीं है किन्तु इतना निकृष्ट भी नही है कि इसे तृतीय श्रेणी का माना जाय । यह भाष्य विषय का सागोपाग निरूपण तो

---

1 योगसूत्रभाष्यसिद्धि पृ0 22

कर्ता ही है, सूत्रों का अर्थ स्पष्ट करता है और प्रसिद्ध प्रमाणों द्वारा सूत्र के अर्थ की पुष्टि करता हे। भाष्य की शेली सुदृढ सक्षम तथा सारग्राहिणी है। विषयों का विवेचन सोपपत्ति प्रस्तुत किया गया है।

पातञ्जल योग दर्शन की परिवर्ती रचनायें।

3 **तत्व वैशारदी टीका** - इसके रचयिता वाचस्पति मिश्र है। इसे व्यास भाष्य पर प्रथम विश्वसनीय टीका होने का गौरव प्राप्त है। वाचस्पति मिश्र मिथिला के निवासी थे जैसा कि वे स्वय लिखते है - ' तस्मिन् महीये कीर्तव श्रीमगृगेऽकारि मयानिबन्ध ।' उनकी इस उक्ति से यह भी स्पष्ट है कि वे मृग नामक किसी यशस्वी राजा के आश्रित विद्वान थे। सभी दर्शनों पर प्रौड टीकाए लिखने के कारण इन्हें 'द्वादशदर्शनकानानपचानन' तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र की उपाधि मिली हुई थी। उनकी तत्व वैशारदी टीका व्यास भाष्य के रहस्यों का उद्घाटन करने वाला अद्वितीय व्याख्या है। इनका समय नवीं शताब्दी ईस्वी माना जाता है।

4 **राजमार्तण्डवृत्ति** - योगसूत्रों पर राजमार्तण्ड नामक वृत्ति के लेखक भोजराज (11बी शताब्दी ई०) का नाम योगशास्त्र के इतिहास में बडा महत्वपूर्ण है। विद्वानों के बीच उनकी इस कृति का बडा सम्मान है। स्पष्टता के साथ इसमें न तो अनावश्यक विस्तार है ओर न ही दुरूह विषयों को छोड देने की दुष्प्रवृत्ति।

3 **योगवार्तिक** इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य विज्ञानभिक्षु (16वी शताब्दी ई0) का पूर्वार्ध है। यह वार्तिक योगभाष्य के ऊपर लिखी गयी एक विशाल व्याख्या है। योगसूत्र भाष्य के रहस्यों को पूरी तरह स समझने तथा योग के महात्म्य के सही आकलन के लिए इस वार्तिक का अध्ययन अपरिहार्य है।

5 **अन्य कृतियॉ** योगसूत्रों पर भावागणेश (17 वी शताब्दी ई0) की वृत्ति, प्रसिद्ध वैयाकरण नागोजीभट्ट (17 वीं शताब्दी ई0) की ' छाया ' नामक व्याख्या , रामानन्द यति (18 वी शताब्दी ई0) क ' मणिप्रभा ' और नारायण तीर्थ की (18 वीं शताब्दी ई0) की 'सूत्रार्थबोधिनी ' तथा 'योगदर्शन ' नामक व्याख्यायें भी प्रसिद्ध तथा उपयोगी है। अर्वाचीन सस्कृत टीकाओं में हरिहहरानन्द आरण्य कीं'भास्वती' टीका भी विश्वसनीय तथा उपादेय है। आचार्य शकर द्वारा लिखी गयी 'विवरण ' नामक व्याख्या भी योगसूत्रों तथा व्यासभाष्य का अच्छा विवेचन प्ररतुत करती है। महामहोपाध्याय डॉ0 गगानाथ झा द्वारा लिखित अग्रेजी भी उपयोगी है।

---

1 योगसूत्रभाष्यसिद्धि, पृष्ठ 30

प्रत्याहार

प्राणायाम के द्वारा जब चित्तनिर्मल हो जाता हे तब साधक का अग्रिम सोपान में प्रवेश होता है प्रत्याहार-प्रत्याक्षर का अर्थ होता है पीछे हटना, विमुख होना, किससे विमुख होना-विषयों से अर्थात इन्द्रियों का विषयों के प्रति अनुराग न होना योग दर्शनकार पतञ्जलि जी कहते हैं- अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर इन्द्रियों का जो चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाता है वह प्रत्याहार है।[7] अर्थात् विष्यों से चित्त का असम्प्रयोग अथवा विच्छेद हाने के समय चित्त और इन्द्रिया एक रूप हो जाती है। चित्त का विषय से असम्प्रयोग होने का अर्थ है कि इन्द्रिया अपने भोजन (विषय) को ग्रहण करना बन्द कर दे। वैसे भी प्रत्याहार का सन्धि विच्छेद करके देखें तो प्रत्याहार के दो शब्द बनते हैं। वे शब्द है प्रति और आहर अर्थात् भोजन का अन्त। इन्द्रियों इन्द्रियों का भोजन है रूप (नेत्रों का), रस (जिह्मा का) शब्द (कानो का) और गन्ध (नासिका का) स्पर्श (त्वचा का) इन्द्रिया ये भोजन निरन्तर ग्रहण करती रहती है। वास्तव में इन्द्रियों का यन्त्र बनकर मन ही उन विषयों के साथ अपने का एक करता है। इसे चित्त का स्वरूपानुकार कहते हैं। जब मन विषय के साथ होता है, तो उसे विषय का ज्ञान नहीं रहता है। इस स्थिति को मन की बर्हिमुख स्थिति कहते है। प्रत्याहार वह क्रिया है जिसमें मन बहिर्मुखी स्थिति को छोडकर अन्तर्मुखी हो जाता है या यों कहिए कि मन का विष्यों से सबध टूट जाता है।

अर्थात प्रत्याहार वह क्रिया है जिसमें किसी भी इन्द्रिय के विषय का सामने रखकर उस का राग द्वेष से रहित होकर अर्थात् साक्षी भाव से ध्यान करने से धीरे-धीरे मन उस वस्तु या अनुभव को छोडकर अन्तर्मुखी हो जाता है यों कहिए मन से बाह्म वस्तु के अस्तित्व का ज्ञान लुप्त हो जाता है। निष्कर्ष यह निकला कि राग द्वेष रहित होकर सयोग में असयोग की प्राप्ति होती है।

वस्तुत साधना के मार्ग में इन्द्रिया बडी साधक हे जो अनेकों प्रकार के विषयों के सस्कार अन्त करण में पडे रहते हैं जिससे प्रेरित इन्द्रिया विषयों की ओर प्रवृत्त होती है। और मन की चचलता तो सभी को प्रत्यक्ष है बस जहा भी विषयासक्त

---

121 स्वविष्या सम्प्रयोगे चित्त स्वरूपानुकार 'प्रत्याहार'।

8 वशे हि यम्यन्द्रियाणितस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। गीता (2-71) (2-61)

इन्द्रिय के साथ मन सलग्न हुआ योगी अपने पथ से विचलित हो जाता है एव विष्यानुरागी इन्द्रिया मानव को बन्धन में डाल देती है। अत इन्द्रियों की इस अराजकता का नियमन योग सिद्धि हेतु अनिवाय है। इसी तथ्य को लक्ष्य कर कृष्ण अर्जुन से कहते हे कि जिस की इन्द्रिया वशीभूत होती है उसकी बुद्धि स्थिर होती है। एव बिना समाहित बुद्धि के सिद्धि कहा होती है।[8]

इसी सदर्भ में यह भी जान लेना आवश्यक है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है लेकिन करणों अर्थात् इन्द्रिया एव मन के सयोग से ही ज्ञान की प्रतीति होती है।[9] अत यदि इन्द्रिया को विषयों से हटाकर रखने का प्रयास किया जाय तो अवश्य ही साधक कुछ प्रगति पथ पर अग्रसर होगा। लेकिन अनुभव में ऐसा आया है कि इस प्रकोर के हठपूर्वक इन्द्रिय निग्रह से विपयों से भले ही निवृत्ति हो जाती है लेकिन मन के विषयों के सस्कोर ज्यों के त्यों बीज रूप में पडे रहते है। एव पुन फि, कभी-कभी अनुकूरा परिस्थिति को पाकर पनप उठते हो उठती है क्योंकि घाम सूक्ष्य बीज रूप में तब भी विद्यमान थी जो अनुकूल वातावरण पाकर पुन पल्लवित हो उठी। ठीक उसी भाति जब तक अनत करण में विष्यों की वासना के सस्कार विद्यमान होंगे तब तक केवल इन्द्रिय निग्रह से पूर्ण लाभ नहीं हो पाता है। इसीलिए कृष्ण जी ने गीता में कहा है कि अर्जुन तू इस दुर्जेय काम को जीत। (रागरहित होकर)[10]

रागरहित का लक्षण क्या है। इस सबध में महर्षि पतञ्जलि कहते है कि देखे सुने हुये लौकिक एव पारलौकिक विष्यों में मन की तृष्णा रहित अवस्था का नाम वैराग्य है।[11] आत्म अनुसधान में प्रयत्नशील योगी का मन जब यम नियम आसन प्राणायाम आदि क्रियाओं से निर्मल हो जाता है तब उसकी बुद्धि भी विषयों से ऊपर उठ जाती है एव बुद्धि के ऊपर उठ जाने से इन्द्रियों क्ज़ यह व्यापार भी शान्त हो जाता है एव इस अवस्था के प्राप्त हो जाने पर बुद्धि विष्यानुराग को त्याग कर

---

9 आत्मा ज्ञै करणेर्योगात् ज्ञान तस्य प्रवर्त्तते।। गीता, विश्वगुरू, कल्पतरू, पृष्ठ 569

10 जहि शत्रु महाबाहो काम रूप दुरासदम्। (गीता 3-44)

11 दृष्टानु श्रविकविषयवितृष्णस्यवशीकारसज्ञा वैराग्यम् योग0 (1-15)

12 तत परमावश्यतन्द्रियाणाम्।। पतञ्जलि साधनपाठ 55

13 यत्र मनोयाति तत्र तत्र समाधय।। ध्यान क्या, क्यों और कैसे। पृष्ठ 75, डॉ0 ओम प्रकार आनद

14 देश बन्धश्चित्तस्य धारणा (विभूतिवाद - 2-1)

15 ध्यान कब? क्यो? कैसे ? पृष्ठ 78 डॉ0 ओम प्रकाश आनन्द

16 योगसाधन पृष्ठ 104 देवकी नन्दन विभव
चतुर्थ सस्करण 2001

R कठोपनिषद 1/3

आत्मानुसधान में लग जाती है। यही अवस्थान प्रत्याहार कहलाती है। इसको एक उदाहरण द्वारा औ। अच्छी तरह समझ सकते है। सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में नाभि के पीछे का भाग सीधा करके आखे बन्द करके बैठ जाये। आखे बद करते ही इन्द्रियों का बाह्य जगत से सबध टूट गया। अब कर्मेन्द्रिय पर ध्यान कीजिए। जो भी शब्द कान में आते जायें, साक्षी भाव से सुनते जाइये, सहज भाव से, द्रष्टा भाव से, समता भाव से शब्द मात्र सुनते रहिए उसके अर्थ और ज्ञान का विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी यदि विश्लेपण हाने लगे, तो उसे भी राग द्वेष से रहित होकर देखते रहिए। इस प्रकार के साक्षी भाव से धीरे-धीरे मन शब्द में लय होने लगेगा और अन्त में मन स्वय शब्द रूप हो जायेगा। किन्तु इसका पता हमें चलेगा नहीं क्योंकि इस अवस्था में मन को अपने अस्तित्व का ज्ञान रहता नहीं है। मन शब्द को न अलग से पहचानेगा और न ही ग्रहण करेगा। इस प्रकार के नियमित अभ्यास से धीरे-धीरे मन की चचलता क्षीण होकर वह आज्ञाकारी सेवक के समान कार्य करने लगेगा। फिर उसको जहा लगाना चाहें लगा सकते हैं।

मन को जहॉ जगाना चाहे, मन वहा लगे, यही एकाग्रता है। यही हर व्यक्ति चाहता है। इसीलिए महर्षि पतञ्जलि ने प्रत्याहार के सबध में कहा है कि प्रत्याहार से इन्द्रियों पूर्ण वश में हो जाती है।[12] अब चिन्तन करें कि इन्द्रिया स्वय में क्या है? बिना मन के सयोग के इन्द्रिया जड हे। वह स्वय कार्य करने में समर्थ हो नहीं सकती। इसलिए अब प्रत्याहार से मन वश में आता है या यों कहिए कि मन बाह्य जगत की चचलता समाप्त करके अन्तर्जगत में चला जाता है। फलस्वरूप मन का सबध विष्यों से करने वाली इन्द्रिया अपने कर्म से कुछ काल के लिए विश्राम ले लेती हैं। विश्राम के कारण इन्द्रिया थकान एव तनाव से मुक्त हो जाती है। इस प्रकार प्रत्याहार के लिए यह भी कहा जाता है कि मन जिन पाच ज्ञानेन्द्रियों से ससार का आस्वाद करता हे पाच ज्ञानेन्द्रियों के किसी भी विषय को लेकर उस पर साक्षी भाव से ध्यान करने से वह एकाग्र हो जाता है।[13]

चाहे मन को वश में करना हो, चाहे एकाग्रता बढानी हो, चाहे चित्त को निर्मल करना हो, चाहे प्रज्ञा बुद्धि का जागरण करना हो, चाहे अन्दर की आख खोलना है, चाहे पतिकूल परिस्थितियों में सतुलन बनाये रखने की कला सीखनी हो या इच्छाओं पर विजय प्राप्त करनी हो। इन सबके लिए प्रत्याहार का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात् प्रत्याहार सिद्ध हो जाने पर योगी की इन्द्रिया सब प्रकार से साधक के वशीभृत हो जाती है। एव पुन इन्द्रियों के विजय केलिए अन्य किसी भी उपाय की आवश्यकता नहीं रहती है। इस प्रकार साधना पथ का पथिक साधन क उच्च मण्डप से अधोगति में डालने वाली इन्द्रियों के सबल विषयाकर्षणों से सुरक्षित होकर योग के अग्रिम महत्वपूर्ण सोपान धारणा के लिए सक्षम हो जाता है।

धारणा

भौतिक ससार में सदा सुख एव शान्ति से रहने के लिए ध्यान योग की अन्तिम उपलब्धि समाधि की सिद्धि अनिवार्य है। चूकि समाधि ध्यान का फल है और ध्यान धारणा परिपक्व अवस्था ही है अर्थात समाधि सिद्धि के लिए धारणा की साधना को सिद्ध करना जरूरी है। किन्तु जैसा कि इसी प्रबन्ध के द्वितीय अभ्यास में हम देख चुके हैं कि महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त का किसी देश (स्थान) में ठहरना धारणा है।[14] चित्त के विचलित होने में इन्द्रिया महत्वपूर्ण भाग लेती है। लेकिन जब प्राणायाम द्वारा मन की निर्मलता एव प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त हो जाती है तब साधक जिस समय जहा अपने चित्त को स्थिर करना चाहे कर सकता है। जैसे शरीर के बाहर अपने किसी ईष्ट देव सूर्य चन्द्रमा अथवा किसी वस्तु में चित्त लगा सकते हैं इसके अतिरिक्त शरीर के अन्दर नाभि चक्र, हृदय कमल, आज्ञा चक्र आदि किसी स्थान में भी चित्त को एकाग्र किया जा सकता है। यही अवस्था धारणा कहलाती है। दूसरे शब्दों में जब प्रत्याहार की अवस्था अभ्यासी मन को जब कोई विषय या स्थान निश्चित कर दिया जाता है और मन से मन को उस विषय पर ही चिन्तन या श्रवण अथवा दर्शन करने को कहता है जब दिये हुये विषय को वह ग्रहण करना सीख जाता है तो उसे धारणा कहते हैं। यदि धारणा के अभ्यास काल में बीज बीच में मन किसी विचार धारा या श्रवण अथवा दश्रन में चला जाय और जब स्मरण आवे कि मन धारणा से हट गया तो प्यार से मन को पुन धारणा के निर्धारित विषय पर लगा दें।

उदाहरण के लिए जब मन सहज अवस्था में आने जाने वाले श्वास के साथ लगा देते हैं तो बीच में यह मन धारणा के विषय श्वास प्रश्वास को छोडकर चला जाता है तब इसके जाने का क्षण तो हम जान नहीं पाते किन्तु जब यह लौटता है या यों कहिये कि हमें याद आती है कि हम धारणा से हट गये उस समय मन में किसी प्रकार का नकारात्मक चितन जैसे मन बार-बार भटक जाता है। धारणा तो बडी कठिन है, कहा तक मन को बार-बार धारणा में लगायें आदि वाक्यों को पोषण न देकर पुन प्यार से निर्धारित धारणा को विपय में लगा दें। ऐसा करते-करते मन धारणा पर टिकने लगता है अथवा निर्धारित धारणा को ग्रहण करना सीख जाता है। इसे धारणा की सिद्धि कहते हैं।

वैसे भी धारणा का शाब्दि अर्थ है 'धारण करना' जैसे मॉ गर्भ के बच्चे को धारणा करती है। प्राचीन काल में राजा लोग सिर पर मुकुट धारण किये करते थे। उसी तरह मन को अपनी गोद या गर्भ में निर्धारित विषय को धारण करने की योग्यता उत्पन्न करते हैं। जिसे योग की भाषा में, मन का 'देश बन्द' हो जाना कहते

है चूकि चिन्त को उसी विषय में रहना पडता है इसलिए निश्चित विषय ही मन का प्रदेश बन जाता है। इस प्रकार चिन्त को किसी देश (स्थान) या धारणा (विषय) अथवा वैचारिक दर्शन में बाधना पतञ्जलि के अनुसार धारणा है।[15]

धारणा का अर्थ विकसित मानसिक शक्ति भी है। इसलिए मानसिक शक्ति विकास हेतु धारणा का अभ्यास किया जाता है। धारणा का एक अन्य पर्याय सयम भी है। सयम का अर्थ वस्तु विशेष का ध्यान रखना है। धारणा में मन का विचरण स्थान सीमित और निश्चित रहता हे। उपरोक्त प्रत्याहार एव धारणा के सम्बन्ध में चितन करने से निष्कर्ष यह निकला कि यह दोनो क्रियायें को एकाग्र करने के उपाय हैं।

चिन्त और मन में क्या अन्तर हे ? माइण्ड के अतिरिक्त एक और मस्तिष्क है, जिसे सुषुप्त मस्तिष्क कहते है। जब मस्तिष्क में बैठा मन सो जाता है, तब भी सुपुत्र मस्तिष्क काम करता रहता है। जो कुछ हम करते हैं, देखते है, वह सब इस सुपुत्र मस्तिष्क पटल पर सिनेमा की फिल्म की तरह अकित होता रहता है। इस तरह जन्म-जन्म के कार्यो के अनुभव इस पर अकित रहते हें। यह माना हुआ वैज्ञानिक तथ्य है कि मानसिक प्रक्रिया जिससे हमें ज्ञान प्राप्त होता है, वह जागृत अवस्था तक ही सीमित नही है, वह सुसुप्त अवस्था में भी काम करती है और यदि हम सुसुप्त मस्तिष्कि से पूरा काम ले सकें तो हमारा ज्ञान भण्डार असीमित हो जाता है जब हम किसी समस्या का समाधान जागृत अवरथा में नहीं कर पाते है तो सुसुप्त मस्तिष्क इसका समाधान निकाल कर हमारे सामने रख देता है। यह सुसप्त मन हमारा बडा आज्ञाकारी अनुचर है। यदि हम उससे काम ले सकें तो वह हमारे बडे जटिल प्रश्न भी सुलझा सकता है। हमारे सामने कोई बडी जटिल समस्या है, हम सोते समय अपने सुसुप्त मन से कहें कि देखों यह अचूक पश्न हे, इसका उत्तर मै प्राप्त उठने तक चाहता हूॅ। यदि ऑख खुल जाये तो कोई शक्ति कठिन परिस्थितियों के सुलझाने के लिये मार्ग इगित करती हुई दिखलाई देगी। हमें भी कई़ी बार इसका अनुभव हुआ है। उठने के समय से पूर्व ही आखे खुल गई और ऐसा मालूम हुआ कि कोई आन्तरिक शक्ति आने वाले खतरे की ओर सकेत कर रही है और उससे बचने का मार्ग भी दिखला रही है। यदि मन को आदेश देने पर भी उत्तर न मिले, तो फिर सोते समय अपने आदेश को दृढ इच्छा शक्ति के साथ दोहराना चाहिए, आशा है दूसरे दिन उसका उत्तर मिल जायेगा। यदि जल्दी उठना हैतो मन में द्रढता से उसका निश्चय कर के सो जाये। ठीक समय पर नींद खुल जायेगी। अभ्यास करने पर घडी की तरह ठीक समय पर कोई जगा देगा।

हमारा जीवन परिस्थितियों का एक समूल है। हमारे विचार ही हमारे जीवन की परिस्थितिया बनाते है। हमारी दुनिया का जन्म ही हमारे विचारों में होता है हर एक

व्यक्ति अपने मस्तिष्क की उपज से अपनी एक नई दुनिया का निर्माण स्वय करता है और एक नई दुनिया लेकर चलता है। स्वर्ग-नरक, सुख-दुख, भला-बुरा, हित-अहित सबका आधार हमारे विचार हैं। यदि मनुष्य बचपन में बधा हुआ है तो अपने विचारो के कारण, और विचार ही उसे इस बधन से मुक्त करेंगे इसलिए विचारों का नियत्रण और परिशोधन हमारे जीवन का मुख्य कार्य है।[16]

विचारो का उदगम- स्थान हमारा मस्तिप्क हे, जहा मन निवास करता है। हमारी इन्द्रियों और उसके विषयों का समागम बिना मन के हो नहीं सकता। मन जब इन्द्रियों के विषयों को इन्द्रियोंसे जोडता है, तभी इन्द्रिय काम करती है। इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और गब्द है, जिनसे हमें इन्द्रिय जगत का ज्ञान होता है। जब तक मन उन्हें सयुक्त नहीं करता, वे पृथक रहते है तथा ज्ञान शून्य होते हैं। परन्तु मन भी स्वतत्र नहीं है। वह ज्ञातव्य विषय को बुद्धि के सामने निर्णय के लिए रखता है। इसके निर्णय पर ही उसका स्वरूप प्रकट होता है। अच्छे-बुरे, हित-अहित, के निर्णय में बुद्धि न्यायाधीश का काम करती है और उसका फैसला हो जाने पर ही मन उस फैसले को इन्द्रियों तक पहुँचाता है, जिससे वह सक्रिय होती है। हमारे सब कार्यो का आधार यही मानसिक क्रिया है। मन की आपेक्षा बुद्धि को श्रेष्ठ कहा गया है। परन्तु यदि मन ठीक तरह से काम न करे, तो बुद्धि रूपी न्यायाधीश का फैसला गलत हो जाता है। रथ में जुडे हुए दस घोडे इन्द्रिया हैं, मन लगामहै और सारथी बुद्धि है। बुद्धिरूपी सारथी ही इन्द्रियों के कार्यो को नियत्रित करता है परन्तु मन रूपरी लगाम के माध्यम से वह ऐसा करने में समर्थ होता है।[R]

मन की एकाग्रता से ही इन्द्रियों की चचलता दूर हो सकती है' और हम मानसिक शक्तियों का भली प्रकार से उपयोग कर सकते है। मन की एकाग्रता के लिए यह आवश्यक कि आपका लक्ष्य स्पष्ट हो। जब तक आपके मानसिक पटल पर आपका इण्टर इस लिए इण्ट लक्ष्य का मानसिक पटल पर स्पष्ट हो जाना ही धारणा है ओर उस लक्ष्य की ओर अपनी मानसिक शक्तियों को केन्द्रित करना ध्यान है' जैसे कश्मीर के किसी सौन्दर्य पूर्ण प्राकृतिक दृश्य का ध्यान करते हैं, परन्तु उसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वह दृश्य अपने हृदय-पटल पर पूर्ण स्पष्टता से अकित कर लें। उसका केन्द्रीभूत चिन्तन ही ध्यान की प्रक्रिया है। जब यह प्रक्रिया सतत प्रवाहित होने लगती है और उस लक्ष्य अतिरिक्त सभी अन्य विषयों को, यही समाधि है, जिसमें साधक और साध्य की एक रूपता आ जाती है।

मन जितना ही एकाग्र होगा उतनी ही धारणा शक्ति बढेगी। हमारा मन जितना अधिक चचल और अस्थिर होता है हमारी क्षमता उतनी ही कम होती है क्षमता बढाने के लिए मन की चचलता और अस्थिरता को दूर करना आवश्यक है। यम, नियम,

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि सभी मन कि अस्थिरता दूर कर उसे एकाग्र करने में सहायक होते हैं' धारणा, ध्यान और समाधि में पहला क्रम मन कि एकाग्रता है।

यदि मन का किसी विषय में एकाग्र करना चाहतें है, तो सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि उस विषय में तीव्र रूचि पैदा करना पडत्रेगा' जिन वस्तुओं में हमारी अधिक रूचि होती है उन पर हमारा मन अधिक एकाग्र होता है। मन का स्वभाव ही यह है कि एक वस्तु कि ओर आकर्षित होने पर भी शीघ्र ही उसे छोडकर वह दूसरी आरे भागने लगता है फिर भी अभ्यास द्वारा हम मन कोउस वस्तु से अधिक समय तक एकाग्र कर सकतेहैं। यह अभ्यास बढते-बढतेइस स्थिति तक पहुॅच जाता है कि हम घटों किसी एक वस्तु में ही मन को स्थिर कर सकतेहै जो समाधि की पूर्व भूमिका होती है।

इसका अभ्यास करने से पूर्व एक शान्तिपूर्ण स्थान से सुखपूर्वक बैठना चाहिए। शारीरिक या मानसिक तनाव हो, तो मस्तिष्क को ढीला छोड दें निर्भय हो कर बैठें, मन से आशकाए निकाल दे। अपने ईष्ट विष्ज्ञय पर मन को एकाग्र करने की कोशिश करना चाहिए' परन्तु तरह तरह के विचार मस्तिप्क पर हमला आरम्भ कर देंगें' मन बहुत दूर-दूर नक कि सैर करेगा। कभी-कभी बहुत गन्दे स्थान तक भी पहुॅच जायेगा। प्रथम बार एक घटे कि बैठक में शायद मन पचास बार उचटकर भागे। परन्तु अभ्यास से इसका क्रम कम होता जायेगा ज्यों-ज्यों अभ्यास बढेगा त्यों त्यों स्थिरता आने लगेगी। मन को इस विषय में आनन्द आने लगेगा। मस्तिष्क से परस्पर विरोधी विचार खाली होते जायेंगी। मस्तिष्क जब बुरे विचारों से खाली हो जाये, तो उसमे सुविचार आकर भरने लग जाते हैं' परन्तु जब सुविचार से भी जब मस्तिष्क खाली होने लगता है तब उसमें केवल एक तत्व ही रह जाता है। यह निर्विचार समाधि की स्थिति है। परन्तु मस्तिष्क में अजीब-अजीब विचारोंकी जो नुमाइश लगी हुई है उन्हें निकाल कर फेंक कर सुविचारोंको स्थापित करना आवश्यक है। उसमें मस्तिष्क को केन्द्रित कर देना सुविचार समाधि है।[17]

मानसिक एकाग्रता की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ अवश्य होती है। कभी-कभी मन बुरी आदतों में एकाग्र हो जाता है वह दूसरी चीजें नहीं देखता। जैसे शतरज के खिलाडी का मन कभी-कभी इतना एकाग्र हो जाता है कि उसकी सब इन्द्रिया उसी आरे लग जाती है। पहले तो अपनी रूचियों को परिष्कृत करके अच्छे लक्ष्य में अपनी इस एकाग्र शक्ति को लगाना चाहिए और फिर उसे अधिकाधिक शक्तिशाली बनाना चाहिए। वह जिस ओर भाग रहा है, उसे उसकी नि सारता बताकर पुन अमिष्ठ स्थान पर लगाना चाहिए। यदि फिर भी मन दौडता हो तो उसे दौडने

दें। और उसके पीछे-पीछे चलें। एक स्थिति ऐसी आयेगी कि उसका आकर्षण धीरे धीरे उसमें कम होता जायेगा और वह शान्त होकर लौट आयेगा।

श्री कृष्ण ने गीता में मन, को दोनो भृकुटियों केबीच आज्ञा चक्र में दृष्टि लगाकर एकाग्र करने के लिए कहा है। थोडे ही अभ्यास से एक ज्योति प्रकट हो जायेगी। इसमें मन को एकाग्र करके लगा दें। जैसे-जैसे एकाग्रता बढती जायेगी, ज्योति अधिक जाज्वल्यमान होती जायेगी, जिससे धीरे-धीरे आध्यात्मिक तत्व स्पष्ट जायेंगे।

धारणा के प्रकार - सवेदना धारणा, नाद अनुसधान, रूप धारणा, अन्त मौन धारणा, अजपाजाप धारण, बिन्दु धारणा, बितराग धारणा, पचेद्रिय धारणा, जय धारणा, सर्कीतन धारणा, उपासना धारणा, शब्द गुण-धारणा, सकारात्मक चिन्तन धारणा धारणा के प्रकार है।

धारणा के अभ्यास

1 किसी भी सुखासन में नाभि के पीछे का भाग सीधा बैठ जाइये, आखे बन्द कर ले, अपने से एक फुट की दूरी पर रखी घडी की टिक-टिक पर मन लगा दें। यदि मन घडी की टिक-टिक से भाग जाता है तो याद आने पर उसे प्यार से पुन टिक-टिक एकाग्र करें। नित्य अभ्यास से धीरे-धीरे मन घडी की टिक-टिक पर लम्बे समय तक ठहरने लगेगा।

2 रात्रि में खुले आसमान के नीचे लेटकर चन्द्रमा पर मन को लगायें। जब जब मन भागने लगे तो उसे प्यार से चन्द्रमा के विम्ब पर ले आयें।

3 लेटे-लेटे आकाश में चमकते हुए असख्य तारों में से किसी एक तारे को चुन लें और मन के भागने पर प्यार से पुन उसी पर ले आयें।

4 अपने सामने एक जलती हुई मोमबत्ती रखें और उसकी लौ को मन पर एकाग्र करें' जब ऐसा करते थक जायें, तब आखे बन्द कर लें' और लौ का मानस दर्शन करें' प्रारम्भ में इस अभ्यास को एक मिनट करना पर्याप्त है बाद में धीरे-धीरे दस मिनट तक बढाये।

5 आधुनिक युग में टेपरिकार्ड के इयरफोन के माध्यम से आख बन्द करके बासुरी, वायलिन, शख या कोई मधु ध्वनि को सुने।

6 ध्यान के किसी सुविधाजनक आसन में बैठकर कान में उगली लगा कर ऊँ ध्वनि का उच्चारण करें एव उसे सुने। धीरे-धीरे ऊँ ध्वनि के सुनने का समय बढायें।

---

17 योग साधन पृष्ट 108

7 किसी विषय के विभिन्न पहलुओं पर विचार करें। मन को इसी विषय में केन्द्रित कर दें। मन दूसरी बातों की ओर न भागे। मस्तिष्क उस विषय में कुछ नये अन्वेषण करने में समर्थ होगा।

ध्यान

युगो से मानव की पाच समस्याए बनी है- शरीर में रोग, इन्द्रियों में कमजोरी व थकावट मन में चिन्ताए बुद्धि में भय एव निकट सबधियों के मरण इत्यादि का वियोग। इसीलिए उसकी पाच ही मौलिक मागे कही जा सकती है- शरीर में रोग की सभावना रहित अखण्ड स्वास्थ्य, इन्द्रियों में थकावट रहित अखण्ड शक्ति मन में चिन्ता रहित अखण्ड आनन्द, बुद्धि में भय रहित अखण्ड ज्ञान एव अहम् में द्वैत रहित अथवा वियोग रहित अखण्ड प्रेम। इन पाचों समस्याओं के कारण है- शरीर मे मल, इन्द्रियों में अम्ल, मन में आसक्ति, बुद्धि में अहकार एव अहम में मिथ्या अपनत्व। इसमें उत्तर में मुझे कहना है कि अखण्ड स्वास्थ्य सतुलित आहार द्वारा ही हो सकता है। अखण्ड शक्ति युक्ति युक्त उपवास द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। अखण्ड सुख अथवा अखण्ड आनन्द विधिवत् ध्यान द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

ससार में ऐसा कोई भी व्यवहारिक या पारमार्थिक कार्य नहीं है जो बिना चित्त की एकाग्रता के निष्पन्न हो सके। चित्त की एकाग्रता की पराकाष्ठा में योग की सिद्धि होती है।

शुद्ध स्वरूपमात्र में अवस्थितिपुरूप पुरूष का होना या ब्रह्मस्वरूप में स्थित हो जाना यह पुरूष काकैवल्य अर्थात मोक्ष कहा जाता है यह योग का पूर्ण लक्षण है और योग का अन्तिम फल भी यही है।

जब तक मन का इन्द्रियों के साथ सयोग नही होता, तब तक हमारा कोई भी कार्य पूरा नहीं होता। हमारे सामने से अनेक दृश्य और चीजें निकल जाती है, परन्तु यदि हमारा मन कहीं और हो तो वे हमें दिखाई नहीं देते। यदि हमारा मन कहीं और हो तो हमको भोजन का पता भी नही चलता कि हम क्या खा गये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध हमारी इन्द्रियों को तभी ग्राह्म होते है, जब हमारे मन का उनके साथ सयोग होता है। इसलिए हमारी सारी उपलब्धियों के लिए मन का बडा महत्व है। परन्तु योग साधना काल में उसका नियमन करना भी नितान्त आवश्यक है। मन से भी बडे महत्व का पदार्थ है- चित्त। हमारे जन्म जन्मान्तरों के कर्म सस्कार इसी चित्त में ही सचित रहते है और वे ही सस्कार हमारे नये जीवन के आरम्भक हुआ करते है। पतञ्जलि ने चित्त की प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति नामक

पाच वृत्तिया बतायी है जिनका प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है।

हमें ससार में जो कुछ भी अनुभूति होती हे अथवा जो कुछ काम करते है उसके आधार में या मूल में चित्त वृत्तिया ही है। इसलिए बिना चित्त वृत्तियों का निरोध हुए हम अपने लक्ष्य को नही पहुच सकते।

श्रीकृष्ण और महर्षि पतञ्जलि दोनों ने ही चित्त की वृत्तियों का निरोध और मन का नियमन करने की आवश्यकता को स्वीकार करतेहुए उसके लिए जो मार्ग बतलाया है वह एक ही है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है- हे कुन्ती पुत्र अर्जुन, अभ्यास अर्थात् आन्म स्थिति के लिए बारम्बार यत्न करने से और वैराग्य से वृत्ति निरोध या चचल मन वश में होता है।[9] महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में कहा है कि चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य दो ही उपाय है।[2] इन दोनों की व्याख्या इस शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में की जा चुकी है। अत वही द्रष्टव्य है।

धारणा की परिपक्व स्थिति ही ध्यान है। जब मन किसी ध्येय वस्तु को ग्रहण कर, उसमें सतत प्रवाहित होने लगता है, वही स्थिति ध्यान है। जिस ध्येय वस्तु को लक्ष्य बनाकर चित्त को लगाया जाय, उस ध्येय वस्तु मात्र में एक ही तरह चित्त की वृत्ति का लगातार चलना, उसके बीच और किसी प्रकार की दूसरी वस्तु का व्यवधान न होना ही ध्यान है, अर्थात एक ही विचार चलता रहे और दूसरे विषयों की ओर मन न भागे, तो उसे ध्यान कहा जाता है। इसकेलिए मन की एकाग्रता का परिपक्व होना नितान्त आवश्यक है। नदी के पानी के प्रवाह की तरह विचारो के प्रवाह की एकतानता जब प्राप्त हो जाती है, तब उसे मनुष्य ध्यान वाली स्थिति कहा जाता है।[3]

प्रत्याहार के अभ्यास से मन अन्तर्मुखी हो जाता है। उसकी चचलता समाप्त हो जाती है और धारणा के अभ्यास से मन मे एकाग्रता आने लगती है। जिसका जितना मन एकाग्र होगा उसकी बुद्धि उतनी ही सूक्ष्य होगी और सूक्ष्म बुद्धिवाला ही बडे-बडे आविष्कार या बडा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष अर्थात उत्थान और [123] पतन का मुख्य कारण है। एक ही मन के दो भेद हैं। 1 शुद्ध मन 2 अशुद्ध मन। कामी मन अशुद्ध और काम रहित मन शुद्ध है। युद्ध मन तो मोक्ष देने वाला है किन्तु विपरीत मन बन्धनकारी होता है।[1] जैसा कि हम प्रस्तुत

---

1 अभ्यासेन तु कोन्तेय वैराग्येण च गृह्येत। (गीता)

2 अभ्यास वैराग्याभ्यातन्निरोध (योग 1-12)

3 तत्र प्रत्येक तानता ध्यानम् (योगसूत्र 3/2)

1 मनो हि द्विविध प्रोक्त शुद्धञ्चाशुद्धमव च।
आशुद्ध काल सकल्प शुद्ध काम विवर्जितम्।।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में देख चुके है पतञ्जलि के अनुसार चित्त की पाच अवस्थाए होती है- 1 मूढ 2 क्षिप्त, 3 विक्षिप्त, 4 एकाग्र, 5 निरूद्ध।

1 क्षिप्तावस्था में रजोगुण प्रधान होता है चचलता तथा ससार के कार्यो में प्रवृत्ति होती है। यह स्थिति साधारण ससारी मनुष्यों की सी होती है।

2 मूढावस्था में तमोगुण प्रधान होता है। आलस्य निद्रा प्रमाद आदि होते है। यह स्थिति नीच प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की है।

3 विक्षिप्तावस्था में सतोगुण प्रधान होकर सात्विक वृत्तियों उदित होती है किन्तु सात्विक वृत्तिया राजसी वृत्तियों से चलायमान होती रहती है।

4 एकाग्र अवस्था अभ्यास और वैराग्य द्वारा जब सर्वार्थता का निरोध होता है, तब तामस तथा राजस के दबने से सत्व के प्रकार में वस्तु का यथार्थ ज्ञान कराने वाली एकाग्रता उदित होती है।

5 निरूद्ध अवस्था- पर वैराग्य आसक्ति की निवृत्ति होने पर सभी वृत्तियों का निरोध रूप है। यह स्थिति ऊँचे योगियों की होती है।

ध्यान का प्रयत्न आरम्भ करने पर चार प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं यथा 1 लय अर्थात निद्रा और 2 विक्षेप, अर्थात मन का ध्यानस्थ केन्द्र से बार-बार इधर-उधर भागना 3 कषाय 4 रसास्वाद।

1 लय साधक का शरीर जिस अनुपात में युक्तियुक्त उपवास द्वारा विकारो से रहित तथा सतुलित आहार द्वारा स्वस्थ हो जाता है, उसी अनुपात में ध्यान करते समय निद्रा का प्रहार नहीं होता। इससे बचने केलिए साधक को उतनी नींद भी आवश्यक ले लेनी चाहिए, जितने से उसके शरीर को वाञ्छित स्फूर्ति और शक्ति की प्राप्ति हो जाए, फिर भी यदि निद्रा का प्रहार हो तो ध्यान करने से पहले श्वसन द्वारा निष्क्रियता का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान के प्रारम्भ में ओऽम ध्वनि या अपने इष्ट के नाम का सकीर्तन अथवा स्वर सहित किसी भजन का गायन भी सहायक रहता है। इस प्रकार पुन ध्यान करते समय नींद का प्रहार नहीं होता।

प्रारम्भ में ध्यान एव लय के अन्त को स्प्ष्ट समझने में कठिनाई हो सकती है क्योंकि ध्यान और नींद की अवस्थाए लगभग समान होती है परन्तु सच यह है कि दोनों में बहुत अन्तर होता है। निद्रा जाग्रत अवस्था से विपरीत अवस्था है, जो ससार के समस्त प्राणियों को शारीरिक शक्ति की प्राप्ति के लिए समान रूप से प्राप्त है और जागृत अवस्था की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक स्फूर्ति की प्राप्ति निद्रा से ही अपने अन्दर स्थित चेतना के केन्द्र के विषय में सभी प्राणियों को समान रूप से अज्ञान बना रहा है। परन्तु ध्यान, जाग्रत अवस्था से महान ऊची

अवस्था है, जो केवल मनुष्य योनि में ही प्राप्त कीजा सकती है, अन्य योनियों में नहीं। अपनी चेतना के केन्द्र उसके उदगम स्रोत व उसकी शक्तियों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है फिर इन केन्द्रों के विषय में कोई सशय का अवसन नही उठता। अतएव ध्यान में जब नींद आ जाती है, तब उससे जाग्रत होने पर किसी प्रकार की नव चेतना अथवा ज्ञान की अनुभूति नहीं होती, परन्तु यदि ध्यान में नींद नहीं आती और ध्यान की वास्तविक अवस्था प्राप्त है तो उससे व्युत्थान होने पर नवचेतना एव ज्ञान के प्रकाश की अनुभूति होती है। साधक, इस प्रकार नींद और ध्यान के अन्तर को स्पष्ट समझ सकता है।

2 विक्षेप मन को निर्धारित धारणा में लगाने पर उसका बार-बार भाग जाना विक्षेप कहलाता है। सामान्य भाषा में लोग कहतेहैं कि जब भी हम ध्यान करने बैठते हैं, हमारा मन भागता ही रहता है। हठयोगियों ने मन के विक्षेप को दूर करने के लिए योगासनों का अभ्यास करते समय मनोयोग से अभ्यास करना एव गिनती के साथ ईष्ट के नाम का मानसिक जप करने को कहा है।

मन को लय से मुक्त करने के बाद भी जब भी साधक ध्यान करना प्रारम्भ करता है उसी समय अनेक प्रकार के भीड उसके सामने आने लगती है। वैसे तो विचारो की भीड को क्षीड करने के लिए प्रत्याहार का अभ्यास स्वय में पर्याप्त सक्षम है। साधक को विचारो की भीड से अधीर नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा हमारे अचेतन मन के ऊपर पहले की वासनाओं, इच्छाओं और राग द्वेष जनित भावनाओं या सस्कारो की पर्तो की सतहों के जमे रहने के कारण ही है। जो ध्यान योग की साधना प्रारम्भ करते ही चेतना की सतह पर उभर कर निकलना चाहते है, और हमारे मन को शुद्ध एव निर्मल बनाना चाहते हैं, किन्तु भ्रम वश हम उन निकलते हुए विचारो को साक्षी भाव से न देखकर नकारात्मक चिन्तान करने लगते हैं जिससे वे विचार और दृढ हो जाते हैं। स्वप्न में भी तो यही होता है किन्तु वहा पर प्राकृतिक नियम के अनुसार हम स्वप्नों को उन दृश्यों अथवा विचारों को साक्षी भाव से देखने को मजबूर हैं। यही तो कारण है कि प्रात जब हम उठते है नो स्फूर्ति से भरे होते हैं। ध्यान करते समय यदि साक्षी भाव का अभ्यास हो जाय, तो न केवल शरीर को स्फूर्ति मिलती है बल्कि आन्तरिक ज्ञान चक्षु भी खुल जाता है। फलस्वरूप व्यवहार जगत, जड जगत एव ईश्वरीय जगत के सत एव असत की पहिचान हो जाती है और जीवन सुख, शान्ति एव आनन्द से भर जाता है।

3 कषाय लय और विक्षेप को दूर करके जब मन अन्तर्मुखी हो जाता है तब भी वह गहन ध्यान की स्थिति में प्रवेश नहीं करना चाहता। छिपी

हुई बलवती वासनाओं तथा उत्कृष्ट राग के प्रभाव के बस में होकर यह पदार्थो में आसक्त हो जाता है। तब यह दु ख में डूब जाता है। इस समय मन में किसी एक विचार बिन्दु पर एकाग्र होने की क्षमता तो रहतीहै किन्तु यह समाधि की स्थिति नहीं है। यही कषाय है। यह मनोराज्य है। इस स्थिति में मन हवाई किले बनाता रहता है। पत्नी, पुत्र, धन के बारे में मन यदि सोचता है तो साधना में मन इसे बाह्य राग कहते हैं और यदि भूत के बारे में चिन्तन करता है, तथा भविष्य के लिए योजना बनाता है तो इसे अन्तर राग कहते हैं। जो उपाय विक्षेप को दूर कर सकते हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बाह्य विषयाकार वृत्ति विक्षेप हे किन्तु जो वृत्ति अन्दर से राग के सस्कारों के प्रभाव से उत्पन्न होती हे उसे कपाय कहते है। साधक प्राय कषाय को समाधि समझने की भूल कर बैठते हैं।

4 रसास्वाद - विक्षेप के दूर होते ही सविकल्प समाधि का आनन्द प्रगट होने लगता है। यह रसास्वाद है। निर्विकल्प समाधि का परमानन्द प्राप्त करने में यह जैसा रसास्वाद एक बाधा है इस रसास्वाद का आनन्द उसी प्रकार का है जेसा कि कुली को अपने सिर का बोझा उतारने के बाद अथवा किसी गुप्त खजाने पर पहरा देने वाले सॉप को मार डालने पर मिलता है। परन्तु वास्तविक आनन्द तो तब ही प्राप्त होता है जब वह खजाने को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जब साधक निर्विकल्प-समाधि के परमानन्द का अनुभव करने लगता है तब अपनी साधना के चरम बिन्दु पर पहुच जाता है। साप को मारना विक्षेप को दूर करने के समान है। इसके अतिरिक्त अन्य बाधायें जैसे असभ्यक विचार अधीरता, आलस्य, भाग, प्रवृत्ति तथा अपवित्र• विचार, जिन्हें सभ्यक तथा विवेकपूर्ण विचारों के द्वारा दूर करना चाहिए। इसमें नियमित स्वाध्याय, सत्सग, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार तथा सात्वक सुपाच्य एव सतुलित भाजन आदि भी सहायक होते हैं।

ध्यान चितन मनन में सावधानी - जिस प्रकार दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब तब तक स्पष्ट नही देखा जा सकता जब तक कि दर्पण साफ न हो। इसी प्रकार जब तक बुद्धि का रतर साफ न हो, तक तक आत्मा का स्वरूप नहीं देखा जा सकता। जैसे अपनी छाया को दखकर कोई व्यक्ति उस छाया को अपने से भिन्न नहीं समझता है उसमें अपनी एकता देखता है, उसी प्रकार साधक ससार में प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति में ईश्वर का प्रतिबिम्ब देखता है। उसमें अपनी एकता देखकर निरर्थक द्वैत जनित वादों में नही उलझता। चिडिया शीशे में अपनी ही छाया से लडकर अपनी

चोंच को घायल कर लेती है। साधक सदैव अपने प्रभु के रूप या नाम के स्मरण में निमग्न रहता है जैसे की नमक की डली पानी में घुलकर एकमेव हो जाती है, पत्थर की तरह अपना अलग अस्तित्व नहीं बनाये रखती है।

जिस प्रकार कपड़ा पानी में जाते ही अपने रेशे-रेश में पानी आकर्षित कर लेता है और पानी से बाहर आने के बाद भी यद्यपि वह सूख जाता है, परन्तु पानी के रंग का प्रभाव उस पर से नहीं छूटता, वह क्रमश: उसी रंग में रंग जाता है, जिस रंग का कि पानी होता है। कालान्तर में रंग इतना पक्का हो जाता है, कि छूटने का प्रश्न ही नहीं उठता। उसी प्रकार जिस चिन्तर में व्यक्ति डूबा रहता है, कालान्तर में उसकी चित्त वृत्ति भी उसी रंग की हो जाती है। तद्नुकूल परमाणुओं के आकर्षण से वैसी ही परिस्थितियों का निर्माण हो जाता है। अतएव साधक को अपनी चिन्तन एवं मनन की धाराओं में अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है।

ध्यान के साधन- ध्यान के साधनों को अपनाने के विषय में निम्न चार बातें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :-

1. ध्यान कब करें अर्थात कितने समय में करें। 2. ध्यान कहां करें अर्थात! किस स्थान पर करें। 3. ध्यान कैसे करें अर्थात किस विधि से करें। 4. ध्यान कितना करें अर्थात कितने समय तक करें।

ध्यान कब करें :- ध्यान का सबसे उपयुक्त समय प्रात: काल ही होता है। शय्या त्याग करने के बाद शौच, मुख प्रक्षालन आदि नित्य क्रियाओं से निवृत्त होने के अनन्तर ध्यान का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए। स्नान में असुविधा होने पर वह बाद में किया जा सकता है। इस समय शरीर मल मूत्रादि विसर्जन हो जाने के कारण अन्य समय की अपेक्षा प्राय: हल्का होता है। मन: स्थिति ध्यान के लिए अनुकूल होता है। ध्यान में बाहरी वातावरण की भी पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। अतएव यदि इसका अभ्यास सूर्योदय से पहले कर लिया जाय तो और भी उत्तर रहता है। अभ्यास में आगे बढ़ जाने पर तो फिर चाहे जब अभ्यास किया जा सकता है। परन्तु प्रारम्भ में समय का ध्यान रखने से अभ्यास में पर्याप्त सहायता मिलती है और साधना में वांञ्छित प्रगति होती है।

2. ध्यान कहां करें :- ध्यान करने से पहले स्थान का भी विशेष महत्व होता है। अत्यन्त भीड़-भाड़ के स्थानों में प्रारम्भ में बाधा उपस्थित होती है। क्योंकि उस स्थान के वातावरण में उसी प्रकार के परमाणु व्याप्त रहते हैं। अतएव स्थान ऐसा चुनना चाहिए जो अपेक्षाकृत शान्त हो, अधिक भीड़ भाड़ न रहती हो और वहाँ पर अधिकांश में आध्यात्मिक चर्चा होती हो। किसी देवालय में उपयुक्त एकान्त स्थान, अथवा नदी का किनारा या अन्य कोई प्राकृतिक सील या किसी पार्क

का स्थान, जहा बहुत तेज हवा न हो ठीक रहता है। अपने घर में ध्यान के अभ्यास के लिए एक कमरा बनाया जा सकता है, जो खुला और हवादार हो। वहा ध्यान और सत्सग के अतिरिक्त कोई दूसरा कार्य न होता हो। कुछ समय बाद ऐसे स्थान में जाते ही सहज ध्यान होने लगता है। इस कमरे में ध्यान में सहायता करने वाले सन्तों, अवतारों और देवतासओं के चित्र भी लगा देने चाहिए। ऐसा अलग स्थान सम्भव न हो पाने की स्थिति में घर का कोई भी एकान्त और शान्त स्थल चुना जा सकता है। वातावरण में धूल और धुआ न हो। कोई सुगन्धित धूप या अगरबत्ती जला सकते है।

3 ध्यान कैसे करें - यह ध्यान का सबसे प्रमुख, अग है। इसके लिए यह आसन दिशा, मुद्रा रीढ का महत्व और ध्यान का प्रारम्भ में पाच तथ्य समझना आवश्यक हे जो निम्न प्रकार हे।

अ आसन सबसे पहले बैठने के लिए उपयुक्त आसन का चुनाव करना चाहिए। सम्भव हो तो जमीन से थोडा ऊपर बैठने के लिए अपने नाप का कोई पटटा या चौकी या तख्त हो तो अच्छा रहता है, अन्यथा जमीन पर ही, कुशासन और उसके ऊपर कोई सूती, रेशमी या ऊनी वस्त्र बिछा लेना चाहिए जिसके छपर कुछ, सुविधापूर्वक बैठ सकें। कुशासन के अभाव में कोई चटाई, चादर, दरी या कम्बल का भी प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु वह शुद्ध होना चाहिए। यथा सम्भव उसको ध्यान के अतिरिक्त अन्य किसी काम में नहीं लाना चाहिए।

स दिशा बैठने के समय मुख पूर्व पश्चिम अथवा उत्तर की ओर होना चाहिए। सबसे उत्तम पूर्व या उत्तर की ओर रहता है। दक्षिण की ओर मुख कर के नहीं बैठना चाहिए। यदि किसी देवालय या कमरे में भगवान का चित्र या प्रतिमा हो तो दिशा का विचार न करके उस चित्र या प्रतिमा के सम्मुख भी बेठा जा सकता है।

स मुद्रा तत्पश्चात् किसी भी अनुकूल मुद्रा अथवा आसन, वज्रासन, सिद्धासन, पद्मासन, स्वास्तिकासन अथवा सुखपासन में बैठना चाहिए जिससे कि स्थिरता से या बिना हिले-डुले सुविधापूर्वक निश्चित समय तक बैठ सके और शरीर के किसी भी अग पर अनुचित दबाव, तनाव अथवा आधार न लगे। नत्र अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहे। न कसकर बन्द किये जाय न प्रयत्नपूर्वक खुले रखे जायें। स्वाभाविक रूप से जैसे अधमुदे रहे तो रहने दिये जाये।

(द) रीढ का महत्व

सबसे प्रमुख महत्व रीढ की हड्डी का है क्योंकि इसी के बीच सुषुम्ना स्थित है। जो गुदा स्थान (मूलाधार) से प्रारम्भ होकर मस्तिष्क (सहसार) तक जाती है। इसका ध्यान से सर्वाधित सम्बन्ध हे।

इसकी गति स्वाभाविक रूप से सीधी एव सम होनी चाहिए अर्थात न तो अस्वभाविक रूप से तनी हुयी ओर न किसी ओर की मुडी या झुकी हुयी। इसकी स्वाभाविक स्थिति फन मारकर खडे हुए सर्प के समान होती हे अतएव ध्यान के लिए बैठते समय रीढ को स्वाभाविक रूप से सम करके गर्दन को सीधा तनाव रहित रखना चाहिए।

(य) **ध्यान का आरम्भ**

इसके बाद अपने इण्ट के नाम या रूप के सहारे मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने का प्रयास करना चाहिए। प्रारम्भ में ऐसा करना सहज नहीं होता हैं तो नींद आने लगेगी जिसे लय कहते है अथवा मन इधर-उधर भागने लगेगा, जिसे विक्षेप कहते है। निरन्तर अभ्यास से ये परेशानिया धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है आर वृत्ति, नाम या रूप में स्थिर होने लगगी। इसी स्थिर अवस्था को एकाग्रता कहते है। ध्यान की यह एक प्रारम्भिक अवस्था है। इसमें अभी त्रिपुटी और अहकार बना हुआ है अर्थात ध्यान, ध्याता (ध्यान करने वाला) ओर ध्येय का भान रहता है।

अभ्यास के आगे बढने के साथ-साथ जेसे-जैसे वह परिपक्व होने लगता है अर्थात वृत्तिया एकाग्र हो जाने पर जबकि न लय होता है और न विक्षेप तब वह बिन्दु भी हट जाता है, जिस पर कि वृत्तिया एकाग्र थी। उस समय त्रिपुटी समाप्त हो जाती है और अहकार का विलय हा जाता है। उस समय ध्याता ध्यान और ध्येय तीनों हट जाते हैं तथा जीवात्मा की परमात्मा की ओर सन्तुखता होने लगती है। इस समय की समग्र चेतना युक्त अवस्था का वर्णन करना वाणी के लिए सम्भव नहीं है। इस अवस्था को प्राप्त करके, बुद्धि के ऊपर जो अहकार एव सस्कारों के आवरण एकत्र हैं उनका क्रमश क्षीण होना प्रारम्भ हो जाता हे। ये आवरण जितने जितने क्षीण होने लगते है उतने ही अनुपात में परमात्मा की सच्चिदानन्द शक्तियों का सचार जीवात्मा में होने लगता है जैसे आग के पास बेठने से गरमी का और बर्फ के पास बैठने से ठडक का स्वाभाविक ही सचार समीप बैठने वाले के अन्दर होने लगता है। परन्तु आग या बर्फ के बीच में यदि कोई पर्दा या आवरण हो तो समीप रहते हुए भी उसकी गरमी या ठडक का प्रभाव नहीं पड सकता जब तक कि वह आवरण न हटे। इसी प्रकार परमात्मा के समीप रहते हुए भी यदि अहम् का आवरण नहीहटता है, तो परमात्मा की शक्तियों का प्रभाव एव उनका प्राकट्य जीवात्मा में नहीं हो पाता। अतएव, इस आवरण को हटाने के लिए ही ध्यान केअभ्यास का उत्तरोत्तर

बढाते रहना चाहिए ताकि परमात्मा की शक्तियों का निर्विघ्न प्रवाह इच्छा अनुसार प्राप्त होता रहे।

इस अहकार केविलय की अवस्था प्रेम केअतिरेक में भी प्राप्त हो जाती है जिससे बुद्धि में अपूर्व प्रकाश का अनुभव होकर सहज ही द्वेत भावना मिट जाती है तब सर्व? एक ही सत्ता तथा सब में प्रभु के दर्शन होने लगते है। अहकार क विलय होने पर साधक को अपने अभिनासी आत्म स्वरूप का बोध हो जाता है जिससे अपनी देह सम्बन्धी भ्रान्ति मिट जाती है तथा सर्वत्र उस प्रभु की लीला के दर्शन होने लगते है जिससे भय का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, क्योंकि साधन को स्पष्ट बोध हो जाता है मै विनाशी शरीर बल्कि आत्मा हूँ, जो कि न कभी उत्पन्न होती है और न कभी समाप्त। यह तो शरीर ही है जो पैदा होता है, बढता है और समाप्त होता है। आत्मा प्रत्येक दशा में एक सी रहती है जैसे वस्त्र बदलने से शरीर नहीं बदलता है, बल्कि वही रहता है, उसी प्रकार शरीर बदल जाने से भी आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं आता।

धीरे-धीरे उक्त अवस्था प्राप्त करने के बाद, कर्मो के प्रति साधक की ये मान्यता भी उत्तरोततर क्षीण होने लगती है कि उक्त कर्मो का कर्ता वह है। इसके विपरीत यह भावना दृढ होने लगती है कि उसके द्वारा उक्त कर्म कराये जा रहे है अर्थात वह तो निमित्त मात्र है फिर उसके 'करने के स्थान पर', उसके द्वारा कर्म होने लगते है तथा साधक को स्पष्ट भान होने लगता हे कि किसी सत्ता द्वारा उसे निरन्तर कर्म करने को प्रेरित किया जा रहा हे और उसका कर्म कराने हेतु प्रयोग किया जा रहा है। इस अवस्था के परिपक्व होने पर उसका कर्म करने में भी अहकार का विलय होता चला जाता हे, जिससे उसका कर्तृत्व भी मिट जाता है। चूकि कर्तृत्व ही कर्म बन्धन का कारण होता है अतएव उसके कर्म बन्धन भी क्रमश समाप्त होने लगते हैं। इस प्रकार साधक का आवागमन के चक्कर से भी छुटकारा होने का माग्र प्रशस्त होने लगता है।

इस अवस्था को प्राप्त कर साधक के शरीर मं अथाह शक्ति व स्फूर्ति का सचार होता है, जिससे उसे स्प्ष्ट होता हे कि शक्ति का केन्द्र भगवान है न कि भोजन। मन में अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती हे, जिससे स्पष्ट बोध होता है कि आनन्द का केन्द्र ईश्वर है न कि भौतिक सुख। बुद्धि के अखण्ड ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे यह पता चलता है कि ज्ञान का केन्द्र ईश्वर है न कि 'पुस्तकें। ऐसा होने पर स्वभावत ही ईश्वर के प्रति साधक का विश्वास और अनुराग दृण होता चला जाता है और अखण्ड प्रेम की उपलब्धि होने लगती है जो कि मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है व मनाव व्यक्तित्व के विकास की चरण सीमा है।

(4) ध्यान कितना करें

वैसे तो यह प्रश्न ही गलत हे, क्योंकि ध्यान की प्रगाढ स्थिति में, अहकार का विलय होने के पश्चात समय के हिसाब रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु अभ्यास के प्रारम्भ में साधक का 15 मिनट मे 30 मिनट तक का प्रयास करना उचित रहसता है ईश्वर का ध्यान कैस किया जाये, यह अधिक महतवपूर्ण होगा कि हम क्या जाने कि ईश्वर क्या हे। इस सृष्टि म अनन्त तरह की शक्तिया पायी जाती है और ईश्वरीय तत्व इन समस्त शक्तियों का आधार है। ऐसे इस ईश्वरीय तत्व के भण्डार को जीवात्मा कहते हें और यह सारे शरीर में विराजमान है। जीवात्मा के क्षेत्र में, ईश्वरीय तत्व, जो कि ओर कुछ नहीं बल्कि ब्रह्म हे, निर्गुण-निराकार है और हमारे जन्म-जन्मान्तर के सस्कारों से ढका हे, जीवात्मा जो ईश्वरीय तत्व का भण्डार है, उसे यदि तुलनात्मक दृष्टि से सूर्य मान लिया जाय तो ईश्वरीय तत्व तत्व इस सूर्य की किरणों के समान होगा ओर सस्कार जिनसे यह सूर्य ढका हुआ है, बादल के समान होंगे। बाहर की दुनिया में अपना प्रभाव दिखाने के लिए यह ईश्वरीय तत्व सस्कारों से छनकर उसी तरह आते हे जेसे बाहर की दुनिया में सूर्य की रोशनी भी केवल बादलों से छनकर जमीन तक पहुँचती है। ईश्वरीय तत्व का जितना प्रभाव हमारे मन, बुद्धि, शरीर और वातावरण के अलग-अलग पहलुओं में हम सुख का भोग करने योग्य हो जाते हें दूसरे शब्दों में, बाहर के अलग-अलग दुखों का कारण तो केवल बाहर की दुनिया में ईश्वरीय तत्व के प्रभाव की कमी है। अस्तित्व को केवल आनन्द का है, दु ख का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है।

ध्यान में साधक अपने अस्तित्व को भूल जाता है उसे केवल इतना ज्ञान रहता है कि मै धारणा के साथ तदाकार हो गया हूँ। धारणा का तदाकार ही ध्यान है। यह स्मरण रखना चाहिए कि निर्धारित धारणा के अनुसार ही ध्यान योग्य के साधक में गुणों का प्रस्फुटन होता है जैसे चन्द्रमा के ध्यान से शरीर में शीतलता बढती है। सूर्य के ध्यान से शरीर में गर्मी बढती हे। इसी प्रकार जब साधक परमपिता परमेश्वर का नाम या रूप का ध्यान करता हे ता उसके अन्दर वेसे ही गुण उत्पन्न होने लगते है। चूकि ईश्वर सद चिद आनन्द है इसलिए उस योग साधक का चित्त, सात्विक गुणों वाला हो जाता है। और उसका जीवन आनन्द से भरने लगता है या भर जाता है।

ध्यान के प्रकार –

प्रत्येक धारणा सिद्ध हो जाने पर ध्यान बन जाता है अर्थात जितने प्रकार की धारणायें हो सकती है उतने ही प्रकार के ध्यान हो सकते हैं। किन्तु यहाँ पर जिस ध्यान की बात की जा रही है वह बाह्म जगत से सबधित नहीं है। उसका सबध तो अन्त जगत को आनन्दित बनाने वाले ईश्वरीय ध्यान मे है। वैसे तो ईश्वरीय ध्यान

की अनेकों विधिया है कि उन समस्त विधियों पर गहराई से चिन्तन करने पर उन्हें दो भाग में बाट सकते है।

1 स्थूल स्थान अर्थात सगुण ध्यान या साकार ध्यान।

2 ूक्ष्य ध्यान अर्थात निगुण ध्यान या निराकार ध्यान।

1 **स्थूल ध्यान** स्थूल ध्यान में साधक द्विारा अपने ईष्ट जैसे भगवान कृष्ण, राम, शिव, गायत्री, दुर्गा या सदगुरू जैसे स्वामी दयानन्द जी, स्वामी, विवेकानन्द, कबीरदास जी आदि अथवा अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक आदि के साकार रूप का आधार लिया जाता है।

साकार ध्यान की विधि – सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन में बैठते है। तत्पश्चात् प्रत्याहार के द्वारा मन को अन्तर्मुखी कर के धारणा द्वारा मन की एकाग्रता बढाते है। अब अपने मामने रखे हुए इप्ट के चित्र अथवा मूर्ति को एकटक देखते रहे। इस समय नेत्रों के हावभाव को ऐसा रखते है जैसे नींद आ रही हो अर्थात आखें को न तो बन्द ही रखते है और न पूरा खुला रखते है। कहने का तात्पर्य यह है कि आखें इतनी खोले कि मात्र इष्ट का रूप ही दिखाई पडे। कुछ देर देखने के बाद आखे बन्द कर लें और उस चित्र या मूर्ति को अन्दर की आखों से देखें। जब तक वह रूप या चित्र दिखे, देखते रहे। जब न दिखे तो पुन आधी आखे खोलकर उस मूर्ति या चित्र को एकटक देखें। कुछ देर के बाद पुन आखे बन्द करके पूर्ववेत अन्दर ही आखों को देखें। यह क्रम तब तक दोहराते रहें, जब तक यथावत् चित्र या मूर्ति चित्त में न समा जाय। यह स्मरण रहना चाहिए कि ध्यान में जिसका ध्यान करते है उसके गुण प्रस्फुटित होने लगते हे। साधकों का तो अनुभव है कि उनकेसकटकाल में उसका इष्ट उनकी तत्काल सहायता करता है। सिद्ध साधकों को तो यहा तक अनुभव है कि उनका इष्ट उन्हें हर क्षण, हर पल, उनका मार्ग दर्शन करता है।

सूक्ष्म ध्यान या निराकार ध्यान की विधि कहीं भी एकात में थोडा सा अधेरे में उस आसन में बेठ जायें जिसमें बिना किसी प्रयास के काफी समय तक बैठ सकें। अब अपने इष्ट देव का नाम लेकर एक बार मन में सोच लें और मन को आजाद छोड दें। ईश्वर केकिसी नाम या रूप में ध्यान लगायें। यदि बेठने में मन न लगे तो कुछ समय के अन्रत पर ऐसा बार-बार भी कर सकते हे। लेकिन यह जरूरी नहीं है। मन को आजाद छोडते ही हो सकता है कि अष्टाग के विचार आने लगे। इसे बुरा नहीं समझा चाहिए। न बाधा समझना चाहिए। क्योंकि बाधा को बाधा मानने से बाधा होती है और

बाधा न मानने से बाधा नहीं होती। हमें एक बार में कम से कम बीस पच्चीस मिनट बैठना है। यदि बीच में आख खुल जाय तो समय देख लें। यदि समय कम हुआ है तो आख बन्द कर लें। यदि ध्यान के समय किसी बाधा वश नेत्र खोलने पडें तो इसे भी बुरा नहीं मानना चाहिए। बल्कि पुन आख बन्द कर फिर बैठ जाना चाहिए। लेकिन कभी यह प्रयास नहीं करना चाहिए कि आवाज कानों में न आये' प्रयास का अर्थ है कि मन स्वतन्त्र अवस्था में नहीं है। यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि किसी तरह कोई प्रयास होगा तो ईश्वरीय क्षेत्र का सुख नहीं उभरेगा। दुसरे शब्दों में ईश्वर का ध्यान कभी भी ठीक नहीं चलेगा। कभी भी नगी जमीन पर बैठकर ध्यान नहीं करना चाहिए। किसी भी बिजली के कुचालक पर बैठ कर ध्यान करें। यदि किसी के पैरों में गठिया का रोग है तो वह कुसी या सोफा पर बैठकर भी ध्यान कर सकते हैं। लेकिन पैर नगी जमीन पर नहीं होने चाहिए। ध्यान के बोद थोडी देर शवासन अवश्य करना चाहिए।

साक्षी ध्यान किसी भी सुखासन में नाभि के पीछे का भाग सीधा करके बैठ जायें। यदि किसी कष्ट के कारण प्रारम्भ में सीधे बैठने में कठिनाई हो तो श्वासन की स्थिति में टेटकर भी ध्यान कर सकते हैं। ध्यान कुर्सी पर बैठकर भी किया जा सकता है। किन्तु ध्यान रहे कि शरीर का सीधा सबध पृथ्वी से न हो। अब आखे बन्द कर लें। आख बन्द करते ही मन या मस्तिष्क में जो भी जैसे भी विचार आ रहे हों, उन्हें चुपचाप साक्षी भाव से देखते रहे। अर्थात विचार कैसे भी हो, अच्छे या बुरे, प्रतिकूल या अनुकूल, कष्टकारी या कल्याणकारी सभी को साक्षी भाव से देखतेरहे। केवल देखते रहें। आने जाने वाले विचारों को न रोकना है, न पकडना है, न भागना है। बस एक मात्र साक्षी भाव से दृष्टाभाव से सहज भाव से देखना है। कुछ ही देर में विचारों की ऑधी स्वत शान्त हो जायेगी। इस शान्त स्थिति को कुछ देर तक साक्षी भाव से देखते रहें। इसे विचार दर्शन कहते हैं।

अपने अपने मन को पेट पर लगायें और यह देखें कि जब श्वास अन्दर जा रहा है तो पेट बाहर आ रहा है। पेट अन्दर जा रहा है और श्वास बाहर आ रहा है। इस प्राकृतिक एव शाश्वत क्रिया को पूर्ववत साक्षी भाव से द्रष्टाभाव से सहज भाव से देखते रहें। जब तक सहज भाव से मन देखना चाहे, उसे देखने दीजिए। इसे श्वास प्रश्वास दर्शन कहते हैं।

अब मन की मात्र पेट के अन्दर बाहर होने वाली क्रिया को देखने में लगा दीजिए। पेट अन्दर जा रहा है, पेट बाहर आ रहा है। पेट कें इस अन्दर बाहर होने की इस क्रिया को भी साक्षी भाव से देखें, द्रष्टा भाव से सहज

भाव से देखते रहें। यह ध्यान रखें कि नाभि का एक भी स्पन्दर बिना जानकारी के न हो। इसे पेट का स्पन्दर दर्शन कहते है।

इस बीच यदि मन किसी अन्य विचारों में चला जाय तो उसे ध्यान का टूटना या ध्यान में बाधा न मानें। क्योंकि बाधा को बाधा मानना ही बाधा है। इस स्थिति में यदि नींद आ जाये तो नींद को भी न रोकें। राकने से नींद अधिक आती है और तनाव भी पैदा करती हे। वैसे ही जैसे विचारों को रोकने से साक्षी भाव से, द्रष्टा भाव से, सहज भाव से, समता भाव से, तटस्था भाव से, अनित्य भाव से, देखने पर स्वत शान्त हो जाते हैं। उनके सस्कार कमजोर हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हे। फलस्वरूप धीरे-धीरे मन निर्मल हो जाता है। स्वच्छ हो जाता हे। सत्यम्-शिम् का अनुकरण करने लगता है। आत्मा का प्रकाश सीधे मन को प्राप्त होने लगता है। अर्थात 'आत्म साक्षात्कार' की साधना प्रारम्भ हो जाती हे। आनन्द का अनुभव होने लगता है।

यदि साक्षी ध्यान करते समय बाह्य बाधा भी आ जाय तो उसेस भी बाधा न माने जैसे ध्यान करते समय दूध वाला आ गया और घर में कोई दूसरा सदस्य नहीं हे तो ध्यान स उठकर दूध ले लें ओर पुन ध्यान आसन में बैठ जाये। इसी प्रकार से बाहर की आवाज सुनाई पडे तो उसे भी बाधा न मानें। साक्षी भाव से सुनें। कुछ देर में मन स्वत शान्त हा जायेगा।

कोई काम, कोई योजना, किसी समस्या का हल ध्यान करते समय आ रहा हो तो तुरन्त लिख लें। इसीलिए ध्यान करते समय पेन कागज लेकर बैठना चाहिए।

इस प्रकार प्रतिदिन साक्षी ध्यान से कम से कम पाच मिनट मे बीस मिनट तक के अभ्यास से तनाव, निराशाय, भय, उत्तेजनायें, अवसाद (डिप्रेशन) की भावनायें भी धीरे-धीरे स्वत ही नष्ट होती चली जाती है और इन भावनाओं के कारण उत्पन्न कष्ट जेसे जोडों के दर्द, अनिद्रा, रक्त चाप स्मरण शक्ति की कमजोरी, चिडचिडापन, क्रोध आदि शारीरिक एव मानसिक विकार शीघ्र दूर हो जाते हैं जो मात्र औषधियों से नहीं जाते। स्वस्थ अवस्था में भी साक्षी ध्यान को करने से सम्पूर्ण दिन तनाव रहित एव शान्ति से गुजरता है। रात में यह साक्षी ध्यान करके सोने से स्वप्न रहित नींद आती है। जिससे प्रात ब्रह्म बेला में स्वत ही नींद खुल जाती है।

इस प्रकार ध्यान से शरीर के स्नयुओं को लाभ होता है। रोगों का शमन होता है तथा मानसिक शक्तियों को बल मिलता है। इसका प्रभाव सूक्ष्म स्नायुओं तक पहुचता है। ध्यान के बाद अपने में एक प्रफुल्लता, मानसिक

शान्ति और नव जीवन का अनुभव होने लगता है। साधक को अपनी साधना का सफलता केलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह भय, क्रोध, उत्तेजना अनावश्यक सकल्प को प्रभावित नहीं कर सकेगी। साधक अपनी मानसिक वृत्तियों को बाहरी वस्तुओं से खींचकर भीतर ले जाने में समर्थ होंगे तथा अन्दर जो ब्रह्माण्ड है, उसमें लगा सकते हें। इसी अवस्था सको अन्तर्मुख भी कहते हैं। यदि इन्द्रियों के बाह्य गमन सेस उसके मानस में भय, क्रोध आदि वृत्तिया जाग्रत होती है तो उनका प्रभाव तत्काल उसके ध्यान पर पडता है। उस समय ध्यान जन्म उत्पन्न ज्योति भी धूमिल होकर लुप्त हो जाती है। इन वृत्तियों का निरोध ओर उनको शुद्ध सात्विक रखना ही योग है।

समाधि

प्रत्येक मानव जीवन में सुख का आकाक्षी है, अर्थात वह दुख कभी नहीं चाहता, परन्तु सुख अभीष्ट होते हुए भी या तो आता ही नहीं या आकार भाग जाता है। यह एक उसके सामने गम्भीर समस्या है जिसके निवारण हेतु लाखों बुद्धिजीवियों ने अपनी आहुति कर दी किन्तु आशिक सफलता के अतिरिक्त उन्हें इस सभोतिक जगत में स्थायी सुख की उपलब्धि नहीं मिल सकी। फलस्वरूप भौतिकवाद से हटकर कुछ लोगों ने प्रकृति का अवलोकन किया और प्रकृति मा की गोद में रहकर प्राकृतिक नियमों के अनुसार चले तो उन्हें भौतिकवाद की अपेक्षा अधिक सुख मिला। उनमें से कुछ असतोषी प्रकृतिवादियों ने स्थायी सुख प्राप्त करने की खोज जारी रखी। फलस्वरूप अध्यात्म विज्ञान उनके हाथ लगा। इस अध्यात्म विज्ञान की क्रियापक्ष का नाम दिया गया। 'समाधि' जिसके अभ्यास से तमोगणी भी सतोगुणी हो जाते हैं।

वास्तव में समाधि का सामान्य अर्थ है चित्त का समाहित हो जाना। योग साधना में समाधि सिद्धि का फल है 'ज्ञान'। जिससे व्यवहार जगत, जड जगत एव ईश्वरीय जगत के पूर्ण सत्य का ज्ञान हो जाता है और वह साधक मान, अपमान, हर्ष-विवाद, लाभ-हानि, अनुकूलता प्रतिकूलता, सयोग-वियोग, जन्म-मृत्यु, यश अपयश दोनों ही की प्राप्ति में सम बना रहता है, तटस्थ रहता है। ऋषि पतञ्जलि ने समाधि के बारे में कहा है कि "जब अपने आपको भूलकर लक्षित लक्ष्य ही हमारे दर्शन का विषय रह जाता है, तो उसे समाधि कहते हैं।[1] समाधि काल में साधक ओर साध्य, विचारक और विचार देव और भक्त, कर्ता और कार्य दोनों एक हो जाते हें, उनका अन्त समाप्त हो जाता है। जो कुछ प्राप्त करने का है वह सब प्राप्त हो जाता है। कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। ध्यान से हमारे विचारों का सतत प्रवाह अपने लक्ष्य की ओर बहने लगता है, परन्तु लक्ष्य की ओर बहने लगता है, परन्तु लक्ष्य की ओर एकाग्रता होने पर भी हम अपनी स्थिति नही भूलते। अहम् का भान रहता है। जब हम अपने अस्तित्व को भूलकर लक्षित तथ्य में एकाकार हो जाते हैं, तो वह स्थिति समाधि की होती हे। यह समाधि चित्त की ऐसी सूक्ष्य

अवस्था है, जो पदार्थ के तत्वों को विश्लेषण करके पदार्थ के सूक्ष्य स्वरूप का साक्षात्कार करा देती है जिसके पीछे पदार्थ की वास्तविकता के विषय में पुन सन्देह, सशय, विपयर्य, विकल्प आदि अज्ञान या मिथ्याज्ञान के प्रवेश केलिए अवकाश ही नहीं रहता। इसी का दूसरे शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि वह ध्यान ही समाधि कहलाता है जब उसमें केवल शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि वह ध्यान ही समाधि कहलाता है जब उसमें केवल ध्येय मात्र भासता है ओर उसका (ध्यान का) स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है या यों कहिए कि जब मत ध्येय पदार्थ में पूर्णत लीन हो जाता है तो उसे समाधि कहते हैं। वास्तव में समाधि की अवस्था में मन ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय। के साथ एक रूप हो जाता है। फिर न ध्यान रहता है आर न ध्याता (ध्यान करने वाला) अर्थात समाधि में त्रिपुटी का क्षय हो जाता है। त्रिपुटी का अर्थ है धारणा, ध्यान में बदल जाये और ध्यान, समाधि में बदल जाय। अर्थात मन ध्येय के अनुसार हो जाता हे चूकि ध्यान का निमित्त मात्र बनने तक निमग्न बना रहता है। फलस्वरूप जब उसका मुख खुलता है तो वह बिना प्रयत्न के ईश्वर के शब्द बोलता है ओर जब उसका भौतिक जगत में पुरूषार्थ का कदम उठता है तो आश्चर्यमयी रचनात्मक कार्य करता है। उसके द्वारा उसके आसपास के वातावरण में सुख एव शान्ति की वृद्धि होती है। रजोगुण एव तमोगुण नष्ट होने लगता है। सतोगुण अवस्था है। धारणा ध्यान की परिपक्व अवस्था है और धारणा प्रत्याहार के माध्यम से पकता है।

आत्मा परमात्मा का ही अश है। जो गुण परमात्मा के ही गुणों का जीवन में प्रस्फुटन होने लगता हे। समाधि वह अवस्था है जहा आनन्द ही आनन्द है। जिसके बाद वह साधक जब भौतिक जगत में लौटता है तो उसके जीवन में चिन्ता, भय, तनाव, निराशा, अकर्मण्यता, विस्मृति, मानसिक विकार जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, परदोष दर्शन समाप्तस हो जाते हैं। वह पूर्ण कर्म योगी बन जाता है। फिर भी वह अपने को अकर्ता ही मानता है और उसके जीवन में सत्य, अहिसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, स्वाध्याय, सतोष, तपस्या, ईश्वर प्राणिधान, स्वाभाविक गुण बन जाते हैं।

समाधि सिद्धि का अनेक मार्ग है। अप्टाग योगी को चित्त वृत्ति 'निरोध द्वारा समाधि' भक्ति योगी को भगवत प्रेम द्वारा भाव समाधि,[1] वेदान्ती को मिथ्यात्व बुद्धि और अन्वय की करीति से सच्चिदानन्द के चिन्तन द्वारा 'भेद समाधि' प्राप्त होती हे। इस प्रकार मे ममाधिस्त योगियों को केवल उसका

---

1 तदेवार्थमात्रानिर्भासस्वरूपशून्यमिव समाधि । (यो सू 3-3)

शरीर हिलाकर या शख आदि ध्वनि बजाकर उसकी समाधि से उसे सामान्य चेतना में ला सकते है किन्तु हठयोगी के साथ यह यह व्यवहार नहीं सफल होता क्योंकि हठ योग का साधक सारे शरीर से प्राण को खींचकर ऊपर सिर के भाग सहस्रात चक्र ले जाता हे तब वह समाधि में प्रवेश करता है। हठयोगी समाधि में वर्षो तक पृथ्वी के नीचे दबे रहते हैं।

यदि ध्यान योग का अभ्यासी अपने मन को किसी एक वस्तु पर अथवा मूर्ति पर दस सेकेण्ड (ढाई श्वास-प्रश्वास) तक स्थिरता से एकाग्र कर यह धारणा होती है। ऐसी दस धारणाओं (पच्चीस श्वास-प्रश्वास) को ध्यान कहत हैं। दस ध्यान (दो सौ पचा श्वास प्रश्वास) से समाधि बनती है।

ईश्वरीय ज्ञान जब समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह चेतना खोकर ध्येय के साथ एकाकार हो जाता है। ईश्वरीय समाधि के फलस्वरूप रहस्यमयी ज्ञान की एक झलक मात्र से समस्त भौतिक जगत कीसत्ता का अन्त हो जाता हे और ससार स्मरण या सकीर्तन आदि आत्मा को बिल्कुल छोड देता है। जिससे उसके शरीर इन्द्रियों, मन एव बुद्धि को गहरा विश्राम मिल जाता है और ससार से पुन पूर्ववत वैसी ही शक्ति से भर जाता है। जैसे जब वह स्वप्न रहित प्रगाढ निद्रा के बाद अनुभव करते हैं किन्तु निद्रा की अवस्था में जितने विश्राम का अनुभव होता है उतने विश्राम का अनुभव समाधि में कुछ मिनटों में मिल जाता है। इसलिए योगी अल्प ही सोता हैया यों कहिए कि सामान्य व्यक्तियों की तरह वह सोने में समय नष्ट न करके समाधि के द्वारा अपने को तरोताजा किये रहता है।

समाधि दो प्रकार की होती है - सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि। सविकल्प समाधि उच्च श्रेणी की समाधि नही है। सविकल्प समाधि के सस्कारों का पूर्ण क्षय नहीं होता हे। इस सविकल्प समाधि में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का पूर्ण एकत्व नहीं होता, पृथकत्व बना रहता है। इसमें मन के लिए एक आश्रम बना रहता है, परन्तु निर्विकल्प समाधि में यह त्रिविध स्वरूप नष्ट होकर केवल एकत्व अर्थात अद्वैत तत्व ही रह जाता है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय का अन्तर मिट जाता है। इसमें आत्मा का पूर्णानन्द प्राप्त हो जाता है।

समाधि के दो और भेद हे, जड समाधि और चैतन्य समाधि और चैतन्य अर्थात् ज्ञान पूर्वक समाधि। जड समाधि में कोई चैतन्य नही रहता, वह एक गहरी नींद के समान है। इसमें सस्कार और इच्छाओं का नाश नहीं होता। साधक को इसमें अन्त प्रज्ञा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। हठयोग में खेचरी मुद्रा से यह प्राप्त होता है। योगी प्राण को देह के किसी स्थान में विशेष में बाध देता है और शव की तरह उसका शरीर काम करना छोड देता है। यह विशेष में

बाध देता है और शव कीतरह उसका शरीर काम करना छोड देता है। यह निम्न श्रेणी की समाधि है। परन्तु सबसे श्रेष्ठ श्रेणी की चैतन्य समाधि है। इसमें दिव्य ज्ञान की स्थिति होती है और सब इन्द्रिया के दिव्य विषय प्रकट होने लगते हैं। चेतना व्यवस्था की चार स्थितिया हैं -

1 जाग्रत 2 स्वप्न 3 सुषुप्ति अथवा गहरी निद्रा की अवस्था और 4 तुरीया अवस्था अर्थात अपरिमेय जाग्रत अवस्था/ यह चैतन्य समाधि की स्थित है।

इससे आगे जब आत्मा की पृथक स्थिति नही रहती और वह ब्रह्म में समाहित हो जाती है तब उसे 'तुरीयातीत' स्थिति कहते हे। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए उतावलापर नही करना चाहिए और वह यदि शीघ्र प्राप्त न हो, तो निराशा भी नहीं होना चाहिए। क्रम से बढते जाने पर अनायास सफलता मिल सकती है। उसके दृढ निश्चय होना नितान्त आवश्यक है।

सविकल्प और निर्विकल्प समाधि के अतिरिक्त महर्षि पतञ्जलि ने समाधि के दो और मुख्य भेद किये है - सम्प्रज्ञात समाधि ओर असम्प्रज्ञात समाधि। पुन सम्प्रज्ञात समाधि के चार अवान्तर भेद बतलाये गये हैं। 1 वितर्कानुगतसम्प्रज्ञात समाधि 2 विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि 3 आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि और 4 अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि।[1] इनके अतिरिक्त वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के दो और भेद हैं - सवितर्क सम्प्रज्ञात और निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि। इसी प्रकार विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के भी दो भेद है - सविचार सम्प्रज्ञात समाधि औ निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि। इस प्रकार से सब मिलाकर सम्प्रज्ञात समाधि के आठ भेद हैं। असम्प्रज्ञात समाधि दो है - भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय समाधि। इस तरह से मिलाकर महर्षि पतञ्जलि ने समाधि की दस भूमिया प्रतिपादित की हैं। योगी को इन समाधि भूमियों को क्रमश पार करते हुए अन्तिम ब्राह्मी स्थिति को पार करना होता है। यही योग का अन्तिम लक्ष्य या ध्येय है। अब इस समाधि के प्रकारों का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है -

प्रारम्भिक अवस्था में जब साधक का चित्त अत्यन्त निर्मल हो जाता है तथा ध्येय के अतिरिक्त बाह्य वृत्तिया शान्त हो जाती हे। उस समय साधक इन्द्रियों के स्थूल या सूक्ष्म विषयों को या अन्त करण और इन्द्रियों को अथवा बुद्धिस्थ पुरूप को जिसको भी ध्येय बनाकर अपने चित्त को उसमें भगातना है उस समय चित्त उस ध्येय वस्तु में स्थित होकर तदाकार हो जाता है। इस समय साधक को ध्येय वस्तु के स्वरूप का भली प्रकार ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान सशय रहित होता है। इस अवस्था को सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है।

---

1 "वतर्क विचारानन्दास्मितानुगयात् सम्प्रज्ञात" योग (1-17)

मन और इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य पदार्थ दो प्रकार के होते है - 1 स्थूल और 2 सूक्ष्म। इनमे से किसी एक स्थूल पदार्थ को लक्ष्य बनाकर उसके स्वरूप को जानने के लिए जब योगी अपने चित्त को उसमें लगाता है तथा प्रारम्भ में वस्तु के अनुभव के साथ उसके नाम और रूप के विकल्प का मिश्रण भी साथ में होता रहता है अर्थात उसके स्वरूप के साथ उसके नाम और प्रतीति की भी चित्त में स्फुरण रहती है उसे सविकल्प या सवितर्क समाधि कहा जाता है।

अभ्यास करते-करते जब साधक के चित्त में ध्येय वस्तु के नाम की स्मृति लुप्त हो जाती है और उसको विषय करने वाली चित्त वृत्ति का भी स्मरण नहीं रहता तब अपने स्वरूप का भी ध्यान न रहने के कारण चित्त के स्वरूप के अभाव की स्थिति हो जाती है एव उस समय सब प्रकार के विकल्पों का अभाव हो जाने के कारण केवल ध्येय पदार्थ के साथ तदाकार हुआ चित्त ध्येय को प्रकाशित करता है इस अवस्था का नाम निर्वितर्क समाधि भी कहते हैं।

जिस प्रकार स्थूल पदार्थो की समाधि की जाती है उसी प्रकार सूक्ष्म पदार्थो की समाधि की दो अवस्थाए होती हैं अर्थात जब सूक्ष्य ध्येय पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिए उसमें चित्त को स्थिर किया जाता है तब पहले उसके नाम रूप और ज्ञान के विकल्पों से मिला हुआ अनुभव होता है वह स्थिति सविचार समाधि कहलाती है एव जब नाम और ज्ञान का भी विस्मरण होकर केवल ध्येय पदार्थ का ही अनुभव होता है, वह स्थिति निर्विचार समाधि का निर्विकल्प समाधि कहलाती है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि जब तक योगी को सूक्ष्म बीजरूप से किसी न किसी ध्येय पदार्थ का विषय करने वाली चित्तवृत्ति का अस्तित्व सा रहता है तब ये सम्पूर्ण वृत्तियों का पूर्णतया निरोध न होने के कारण ये अवस्थाए सबीज समाधि कहलाती है। एव इनसे पुरूष को कैवल्य अर्थात मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

किन्तु निर्विचार समाधि के सतत् अभ्यास से जब योगी के चित्त की स्थिति सर्वथा परिपक्व हो सजाती है ओर उसकी समाधि स्थिति में किसी प्रकार को किचितमात्र भी दोष नहीं रहता उसी समय योगी की बुद्धि ऋृतम्भरा। प्रज्ञा कहलाती है एव उसे वस्तु के सत्य रूप को ग्रहण करने में कोई भ्रम नहीं रहता। इस प्रकार ऋृतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो जाने से साधक को वस्तु के स्वरूप का अग प्रत्यगों साहित पूर्व ज्ञान हो जाता है।

मनुष्य जिस किसी भी वस्तु का अनुभव करता है, जो कुछ भी किया करता है, उन सभी के सस्कार अन्त करण में एकत्र हुए रहते हैं। उन्हीं को योगशास्त्र में कर्माशय कहा गया है। इन्हीं के कारण मनुष्य का बार-बार जन्म-मरण होता है और जब तक कर्मो का पूर्णतया नाश नहीं होता तब जीवन आवागमन से मुक्त नहीं हो पाता लेकिन यथार्थ बुद्धि अर्थात ऋृतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हाने पर मनुष्य को प्रकृति के

यथार्थ रूप का भान हो जाता है और वह अपने आपको प्रकृति से पूर्णतया पृथक जान लेता है जिससे प्रकृति के कार्यो से स्वत वैराग्य हो जाता है एव इससे पूर्व इकटठे हुये सब प्रकार के सस्कार क्षीण हो जाते हैं। सस्कारों का अभाव हो जाता है तथा सस्कारों में आशक्ति न रहने से उसका पूर्णतया निरोध हो जाता है ओर सस्कारों की उत्पत्ति ही नहीं होती अर्थात सस्कारों की उत्पत्ति ही समाप्त हो जाती है। समाधि सकी यह अवस्था निर्बीज समाधि कहलाती ह। इस अवस्था को प्राप्त कर योगी मुक्त हो जाता है। तब उस दृष्टा कल निज स्वरूप में स्थिति हो जाती है।[1]

समाधि सिद्धि की विधि - किसी ध्यानात्मक आसन में बैठकर पहले कुछ दिन प्रत्याहार के द्वारा मन को अन्तर्मुखी करने का अभ्यास करना चाहिए। तत्पश्चात अपने ब्रह्मनिष्ठ गुरू केमार्गदर्शन में अपने चित्त के अनुसार धारणा का चुनाव करवाकर उसे पुष्ट बनावें क्योंकि धारणा ही ध्यान हो जाता है और फिर ध्यान ही धारणा के अनुसार समाधि में बदल जाता है।

ध्यान में सहायक श्वसन एव योग निद्रा -

योग निद्रा योग की ऐसी क्रिया है जिससे कोई भीस मानव, जो शारीरिक एव मानसिक थकान से पीडित हो अथवा जिसका सतुलन बिगड गया हो। अल्प समय में ही अपनी शारीरिक एव मानसिक थकान को मिटा सकता है तथा नियमित अभ्यास से भावनात्मक सतुलन प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार योग निद्रा सेमन को एकाग्र करने का अभ्यास भी किया जा सकता है। कुछ लोग इसलिए योग निद्रा को ध्यान कीएक पूर्व क्रिया भी कहते हैं।

यदि एक स्वस्थ व्यक्ति को भी कुछ नींद न लेने दे, तो उसके दिमाग को असतुलित होते देर न लगेगी बीमान व्यक्ति का मस्तिष्क स्वस्थ व्यक्ति के अनुपात में यदि और जलदो असतुलित हो जाय तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए अर्थात स्वस्थ एव अस्वस्थ दोनों ही के लिए भोजन की तरह अच्छी नींद का आना भी आवश्यक है। लेकिन जिस प्रकार भोजन गडबडी से कोई भी मनुष्य स्वस्थ नहीं हो सकता उसी प्रकार यदि अच्छी नींद लेने की सही जानकारी नही हैतो अनिद्रा, रक्तचाप, कम्पन, घबराहट आदि स्नायु सबधी रोगो से बहुत दिनो तक नही बचा जा सकता। सही बात तो यह है कि ससार के सभी मनुष्य नींद लेते हैं परन्तु इसकी सही कला का ज्ञान बहुत कम लोगों को है। फलस्वरूप नींद से जितना आराम मिलना चाहिए, नहीं मिल पाता और लोग जीवन की चिताओं तथा तनावों को बोझ लिए बिस्त पर लेट जाते है। इस प्रकार वह सोचते-सोचते थक जाते हैं तो अर्थ चेतना की अवस्था में ही सो

---

1 तदाद्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्।। योग सूत्र (1/3)

जाते हैं। इस अवस्था में उन्हें स्वय भी पता नहीं लगता कि वह सोच रहा है कि सो रहा है। फलस्वरूप अर्थ नींद में मन की उलझनों को विविध दृश्यों तथा रूपों मं स्वप्न के रूप में देखता है। इस अवस्था में जबकि उसका शरीर कुछ भी नही कर रहा है, फिर भी मानसिक तनावों के कारण उसकी थकाल दूर नहीं हो पाती जिसस वह सुबह बिस्तर से उठने में सुस्ती, कमजोरी, दर्द और थकान का अनुभव करता है। लेकिन यदि कोई भी मनुष्य सोने से पहले योग निद्रा का अभ्यास करले और तब सोये तो सुबह जागने पर मनुष्य न केवल शारीरिक एव मानसिक थकान से मुक्ति का उसे अनुभव होगा बल्कि कुछ दिनों के पश्चात अपने भावनात्मक तनावों से भी छुटकारे का अनुभव करेगा। वैज्ञानिकों ने योग निद्रा पर बहुत प्रयोग किये हैं। जिसके आधार पर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि एक घण्टे की योग निद्रा का अभ्यास रात्रि चार घण्टे की नींद के बराबर होती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को बीस-तीस मिनट तक नियमित अभ्यास करना चाहिए।

ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिए योग निद्रा सका अभ्यास बहुत सहायक होता है क्योंकि योग निद्रा में विचारों को केन्द्रित करके उन्हें मनचाही दिशा में मोडा जा सकता है। योगन्रिद न तो सोने की क्रिया है और न जागने की क्रिया है बल्कि सोने और जागने के बीच की अवस्था है। आधुनिक मनोचिकित्सकों ने भी सिद्ध कर दिया है कि इस बीच की अवस्था मे जो भी निर्देश चाहें वह स्वय ले अथवा कोई उसे दूसरा दे उसका प्रत्यक्ष प्रभाव उसके तन मन पर आ जाता है। इसीलिए योग निद्रा में दिया निर्देशन अथवा दोहराया सकल्प अवश्य पूरा ह्नोता है।

योग निद्रा के अभ्यास से असाध्य कष्ट जैसे हृदय रोग, रक्तचाप, मधुमेह, दमा आदि के रोगियों को भी जल्दी लाभ पहुचाया जा सकता है। योग निद्रा का अभ्यास करने वालो के लिए सबसे पहले श्वसन अवश्य करना चाहिए।

श्वासन की विधि जमीन या तख्त पर कम्बल या दरी बिछाकर पीठ के बल लेट जाइऐ। बाहों को शरीर से कुछ दूर रहिखये, हथेली का मुह आसमान की ओर करके मुट्‌टी आधी खुली आधी बन्द रहना चाहिए। पैरों को आराम की स्थिति में आपस में थोडा दूर-दूर रखना चाहिए। अब आखें बन्द करके पूरे शरीर को ढीला छोड दीजिए शरीर का कोई भी अग हिलना नही चाहिए। मन को का श्वास-प्रश्वास की क्रिया को देखने में लगा देना चाहिए। कुछ देर ऐसा करने के बाद मन को नाभि के स्पन्दन को देखने में लगा देना चाहिए। इस प्रकार कुछ मिनटों तक पहले अपने श्वास के प्रति फिर नाभि के स्पन्दन के प्रति जागरूक रहने से शारीरिक तनाव से अपने को मुक्त कर लें। श्वासन के पश्चात् अब योग निद्रा का अभ्यास करना चाहिए।

योग निद्रा का अभ्यास

पैरों से सिर तक हर अग का निम्न क्रम से चितन करना चाहिए। चिन्तर में स्वय ही स्वय को विश्वास एव मधुरता के साथ धीरे-धीरे आदेश देते हैं और आदेश का पालन हो रहा है यह अनुभव करें। तो अब योग निद्रा शुरू करें।
''मै बाया पैर नहीं हूँ। बायें पैर से भिन्न बायें पैर का साक्षी हूँ।''

यह आदेश देकर कुछ रूकें औ आदेश का पाल सम्पूर्ण बायें पैर को धीरे-धीरे हल्का होने के रूप में अनुभव करें। धीरे-धीरे जब सम्पूर्ण पैर हल्का हो जाये अर्थात् मन से बायें पैर का अस्तित्व ही समझ में न आये तब आगे बढें।

''मै दाया पेर नहीं हूँ। दायें पैर से भिन्न दायें पैरे का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष बायें पैर की तरह अनुभव करें।)
''मै बाया हाथ नहीं हूँ। बायें से भिन्न दायें बायें हाथ का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै पीठ नहीं हूँ। पीठ से भिन्न पीठ का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै छाती नहीं हूँ। छाती से भिन्न छाती का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै गर्दन नहीं हूँ। गर्दन से भिन्न गर्दन का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै बाया कान नहीं हूँ। बायें कान से भिन्न बाये कान का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै दाहिना कान नहीं हूँ। दाहिने कान से भिन्न दायें दाहिने कान का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै बायीं आँख नहीं हूँ। बायी ऑख से भिन्न बायीं ऑख का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै दाहिनी ऑख नहीं हूँ। दाहिनी ऑख से भिन्न दाहिनी ऑख का साक्षी हूँ।'
यह आदेश (शेष ऊपर की नरह)
''मै बायी नाक नहीं हूँ। बायीं नाक से भिन्न बायीं नाक का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेष ऊपर की तरह)
''मै दायी नाक नहीं हूँ। दायी नाक से भिन्न दायी नाक का साक्षी हूँ।''
यह आदेश (शेप ऊपर की तरह)

अब कुछ रूक कर धीरे से मन को श्वास के आने जाने के साथ लगा देना चाहिए। फिर कहें ''मै श्वास नरहीं हूँ। श्वास से भिन्न श्वास का साक्षी हूँ।'' इस

विध से जब अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर में चले जाते हैं तब स्वय का भान नहीं रहता है।

योग निद्रा तोडने की विधि -

जैसे योगनिद्रा की तैयारी की गयी हे उसी प्रकार स योग निद्रा तोडने की विधि भी अपनायीस जाती है। अचानक योग निद्रा तोडने से अथवा विधि के साथ न तोडने से लाभ कम हो सकता है। अत योग निद्रा निम्न क्रम से तोडें-

1 सबसे पहले आसपास के वातावरण का स्मरण करना चाहिए।

2 फिर अपने आस पास की वस्तुओं का स्मरण करें।

3 उसके बाद अपना नाम याद करना चाहिए।

4 अपने को धीरे से श्वास के साथ लगायें, उसके अन्दर-बाहर जाने की प्रक्रिया को देखें, आठ-दस श्वास देखने के बाद मन को नाभि पर भगायें, उसके ऊपर, नीचे आने-जाने की क्रिया को देखें।

5 अब धीरे से अपने बाये पैरे को हल्के से अपने ही स्थान पर हिलाए। फिर अपना दाहिना पैर देखिए, हल्के से हिलायें। अपना बाया हाथ हल्के से हिलाए दाहिना हाथ, फिर पीठ, फिर गर्दन तथा बाद में अपने सम्पूर्ण शरीर को एक साथ हिलायें।

6 अन्त में अपने दोनों हाथों की हथेलियों को आपस में रगड कर आखो पर सेंक करना चाहिए। अब धीरे-धीरे आखे खोलना चाहिए और उठकर बैठ जायें। यही योग निद्रा है।

पंचम अध्याय

निष्कर्ष

निष्कर्ष

आज के वैज्ञानिक तथा सघर्ष बहुल युग में प्रशिक्षित तथा निर्विकार मस्तिष्क की महती आवश्यकता है। पातञ्जलि योगदर्शन एक स्वस्थ मस्तिष्क के सृजन हेतु एक विद्या प्रदान करता है। अत इस दर्शन का आज के युग में इस दर्शन का महत्व स्पष्ट है। आज याग ने विश्व को जितना चकाचौंध कर रखा है उतना शायद ही ज्ञान की किसी अन्य विद्या ने किया है। बात वास्तव में यह है कि दीर्घ ओर स्वस्थ जीवन हर समझदार व्यक्ति का अभीप्ट होता है। स्वस्थ जीवन की कुञ्जी प्रदान करने के कारण योग हर व्यक्ति का चाहे वह भोगी हो या फिर योगी - प्रिय बन गया हैं कहावत है Healthy mind in a healthy body ओर योग स्वस्थ शरीर में सही अर्थो में स्वस्थ मस्तिष्क का सृजन कर्ता हैं इसीलिए उसकी इतनी महिमा है। आयुर्वेद में समस्त चिकित्सा शास्त्र का उददेश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा अस्वस्थ अर्थात रोगग्रस्त शरीर को रोग मुक्त करना है। रोगग्रस्त शरीर को स्वस्थ करने के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने बहुत ख्याति अर्जित की है। औषधि युक्त चिकित्सा पद्धतियों में एलोपैथ, आयुर्वेद, यूनानी होमियोपैथ आदि प्रमुख है। जो कि दवाओं का सहारा लेकर शरीर को रोग मुक्त करते है। वही पर प्राकृतिक चिकित्सा योग द्वारा चिकित्सा, चुम्बकीय चिकित्सा आदि शरीर के रागो के मूल कारण भूत विकार को शरीर से बाहर निकालकर शमनात्मक एव दमनात्मक पद्धति के स्थान पर निष्कासनात्मक पद्धति को अपना कर शरीर को स्वस्थ रखने की बात करते है।

पूर्ण स्वस्थ वही हैजो कि शारीरिक रूप से, मानसिक रूप से आत्मिक रूप से, भावनात्मक रूप से एव सामाजिक रूप से स्वस्थ हो तभी कहा जायेगा कि वह पूर्ण स्वस्थ है।

महर्षि पतञ्जलि ने इन समस्त प्रकार के स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त करने के लिए योगसूत्र में साधन पाद के अन्तर्गत 29वें सूत्र में अष्टाग योग का निरूपण किया हे वह आठ अग, गम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि आदि है। जिसमें यम का पाल करने से व्यक्ति सामाजिक रूप से स्वस्थ रहता है। नियम का पालन करने से शरीर की आन्तरिक एव वाह्य शुद्धि करके विकार मुक्त रहता है। आसन करने से शरीर सुडौल गठीला मजबूत रहता है प्राणायाम से दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है। प्रत्याहार धारणा एव ध्यान, समाधि आदि अन्तरग साधन हे। जिनके पालन से मनुष्य मानसिक और आत्मिक रूप से स्वस्थ रहता हे।

वस्तुत योगसूत्र की रचना के पीछे महर्पि पतञ्जलि का उददेश्य था- मनुष्य को उसके चतुर्थ पुरूषार्थ 'मोक्ष' की प्राप्ति कराना। मोक्ष के सैद्धान्तिक पक्ष का पूर्ण विवेचन तो साख्य (जो योग से भिन्न नहीं हे) मे ही मिल जाता है किन्तु वह विवेकख्याति या मुक्ति अथवा कैवल्य साधक को किस प्रकार प्राप्त हो इस सम्बन्ध में साख्य सर्वथा मौन है जबकि योग का प्रधान लक्ष्य यही है कि वह साधक को कैवल्य तक पहुचने का मार्ग बताये। उसकी यही विशेपता उसे साख्य से अलग ओर ऊपर कर देती हे।

कैवल्य के साधको की महर्षि पतञ्जलि ने तीन कोटिया निर्धारित की है - प्रथम कोटि तो उन योगियों की है जिनको पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण धारणा ध्यान और समाधि (जो कि अष्टाग योग के अन्तरग उपाय है और जिनसे हर कोटि के साधक को गुजरना पडता है) सहज ही सिद्ध हो जाते हैं और फलस्वरूप वे सम्प्रज्ञात अथवा असम्प्रज्ञात योग को सिद्ध करते हुये 'मुक्त' अथवा 'केवली' हो जाते है। दूसरे कोटि के योगी वे है जो तप स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान रूप 'क्रियायोग' के सहारे आत्म शुद्धि करते हुये धारणा, ध्यान और समाधि की सिद्धिकर कैवल्य लाभ

करते है। तृतीय कोटि के साधक वे है जो महर्षि पतञ्जलि द्वारा साधनपाद में उपदिष्ट यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का क्रम से विधिवत पालन किये बिना समाधि के अन्तरग धारणा, ध्यान और समाधि तक नही पहुच सकते। इन साधकों की ही सख्या अधिकतम हे। जो विविध प्रकार के शारीरिक और मानसिक विकारों से ग्रसित है। स्पष्ट है कि इन्ही के लिए साधन में निर्दिष्ट अष्टाग योग की सर्वाधिक महत्ता है। अष्टाग योग के विधिवत पाल से ये साधक भले ही इस जन्म में माक्ष लाभ के अधिकारी न बन सके (क्योंकि मोक्ष तो अनेक जन्मो की सतत साधना का परिणाम है) लेकिन स्वस्थ शरीर और निर्विकार मस्तिष्क का लाभ करते हुये ये साधक एक स्वस्थ और हर प्रकार से सुखी, रोगविहीन जीवन यापन तो कर ही सकते है और देहपात के अनन्तर, दो चार जन्मों की साधना के पश्चात द्वितीय और प्रथम कोटि के साधकों की श्रेणी में पहुचकर अन्तत मोक्ष लाभ कर सकते हैं।

महर्षि पतञ्जलि का उददेश्य व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में स्थित करके कैवल्य की प्राप्ति कराना था। परन्तु मेरा उद्देश्य इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से आज के कुत्सित वातावरण में जहॉ भौतिकता अप्राकृतिक जीवन विलासिता पूर्ण साधनों का सग्रह करने की होड लगी है नये-नये रोग हो रहे हैं मानसिक तनाव बढता जा रहा है, ऐसी परिस्थिति में महर्षि पतञ्जलि ने जो साधन बताये है उन साधनों का अर्थात साधन पाद के अन्तर्गत वर्णित अष्टाग योग का पालन करके मानव को एक स्वस्थ जीवन प्रदान करना है। दूसरे शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए साधन पाद को एक चिकित्सापद्धति के रूप में प्रस्तुत करना ही मेरा उददेश्य है।

---

1 चितेरप्रतिसक्रमायास्तदाकारापन्तो स्व बुद्धिसवेदनम्। या सू 4/21

2 दृष्ट दृश्योपरक्त चित्त सर्वार्थम्। य। सू 4/22

3 तदसख्येय वासनाभिश्चित्रमपि पदार्थ सहत्यकारित्वात्। यो सृ 4/23

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 वैद्यकीय सुभाषित साहित्यम् - डा0 परशुराम लक्ष्मण वैद्य
तृतीय सस्करण वि0सम्वत 2040

2 प्राकृतिक आयुर्विज्ञान आरोग्य सेवा प्रकाशन

3 पतञ्जलि योगसूत्र - आचार्य रजनीश भाग एक, तीसरा सस्करण 2001

4 योगसमन्वय - महर्षि अरविन्द, 1969
(श्री अरविन्द साहित्य खण्ड 3)

5 सरल योग चिकित्सा विधि भाग 4 - डा0 ओमप्रकाश आनन्द, प्रथम सस्करण

6 महर्षि सन्देश भाग 1 - आध्यात्मिक पुनरूथान आन्दोलन
प्रथम सस्करण 1979

7 महर्षि सन्देश भाग 2 - आध्यात्मिक पुनरूथान आन्दोलन
प्रथम सस्करण 1979

8 वैक और बाजार - महेश योगी - तृती सस्करण

9 भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण - प्रो0 सगत लाल पाण्डेय, द्वितीय सस्करण 1984

10 विश्व गुरू कल्पतरू - श्री विश्वगुरू जी महाराज महामण्लेश्वर,
अष्टम सस्करण 1994

11 भारतीय दर्शन की रूपरेखा - एम हिरियन्ना, पाचवा सस्करण 1985

12 पातञ्जल योगदर्शनम - महर्षि व्यास देव तथा राजर्षि भोजदेव,
द्वितीय सस्करण सम्वत 2018

13 पातञ्जल योग दर्शनम् - आचार्य उदय वीर शास्त्री, प्रथम सस्करण 1978

14 कर्मयोग - स्वामी विवेकानन्द, 21वा सस्करण

15 राजयोग - स्वामी विवेकानन्द, 13वा सस्करण

16 भक्तियोग स्वामी विवेकानन्द

17 प्रेमयाग - स्वामी विवकानन्द

18 विवेकानन्द साहित्य भाग 4 - अद्वैत आश्रम प्रकाशन विभाग कलकत्ता

19 विवेकानन्द साहित्य भाग 7 अद्वैत आश्रम प्रकाशन विभाग कलकत्ता

20 योगसूत्र भाष्यसिद्धि प्रो० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, प्रथम सरकरण

21 YOGA MEDITATION AND GURU - PURUSOTTAMA BILIMORIA 1993

22 YOGA SWAMI PRAKASH MUNIJI - 2000

23 LIGHT ON YOGA - BKS AYANGAR

24 LIGH ON PRAYANAYAN - BKS AYANGAR

25 प्राणायाम की सही विधि - डा० ओम प्रकाश आनन्द, प्रथम सस्करण 2001

26 योग द्वारा कायाकल्प - डा० ओम प्रकाश आनन्द,पथम सस्करण 2001

27 भारतीय दर्शन - श्री आर यादव

28 साख्य कारिका - ब्रजमोहन चतुर्वेदी

29 भारतीय दर्शन सरल परिचय - देवी प्रसाद चटटोपाध्याय

30 दर्शन स्वरूप और समस्याए - देवराज

31 भारतीय दर्शन भाग एक व दो - डा0 राधाकृष्णन

32 भारतीय दर्शन का सुगम परिचय - डा0 शिव शकर

33 भारतीय दर्शन डा0 ममता मिश्रा

34 भारतीय दशन रूपाली श्रीवास्तव

35 साख्य योग दर्शन रूपाली श्रीवास्तव

36 भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन चन्द्रधर शर्मा

37 भारतीय दर्शन की रूपरेखा - हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा

38 साख्य तत्व कोमुदी आचार्य वाचस्पति मिश्र- चतुर्थ मस्करण 1969

39 योगदर्शन - महर्षि पतञ्जलि सम्पादक श्री राम आचार्य तीसरा सस्करण 1969

40 साख्यकारिका ईश्वर कृष्ण ह0कृ0चोक, काशी

41 साख्यसिद्धान्त आचार्य उदयवीर शास्त्री दिल्ली 1991

42 साख्य दर्शन का भाष्य - "

43 योग दर्शन का भाष्य - "

44 तत्व प्रदीपिका - चित्सुखाचार्य, द्वितीय सस्करण 1937

45 भारतीय दर्शन - चटर्जी एव दत्त, पुस्तक भण्डार, पटना

46 साख्य सूत्र भाष्य - जीवानन्द - कलकत्ता

47 योगासन - डा0 पी डी शर्मा

48 योग साधन - देवकीनन्दन विभव - चतुर्थ सस्करण 2002

49 योगासन और प्राणायाम - चन्द्रमाहन